पद्मपुराणान्तर्गत-पातालखण्डस्थित-

श्रीवृन्दावन-माहात्म्यम् ।

भाषानुवाद-समेतम् ।

कलकत्ता

३८।१ कोलूटोलास्ट्रीट, बङ्गवासी ष्टीम-मेशिन प्रेसमें

श्रीकेवलराम चट्टोपाध्याय द्वारा

मुद्रित और प्रकाशित ।

सम्वत् १९५२ ।

दाम ॥) आठ आना ।

पद्मपुराणान्तर्गत-पातालखण्डस्थित-

श्रीवृन्दावन-माहात्म्यम्

भाषानुवाद-समेतम् ।

कलकत्ता।

३४।१ कोलुटोलाष्ट्रीट, बङ्गवासी ष्टीम-मेशिन |वर्में

श्रीकेवलराम चट्टोपाध्याय द्वारा

मुद्रित और प्रकाशित ।

सम्वत् १९५२ ।

दाम ॥) आठ आना ।

ओं नमः श्रीकृष्णाय।

श्रीवृन्दावन-माहात्म्यम्।

प्रथमोऽध्यायः।

ऋषय ऊचुः। सम्यक् श्रुतो महाभाग त्वत्तो रामाश्वमेधकः। इदानीं वद माहात्म्यं श्रीकृष्णस्य महात्मनः॥ १॥ सूत उवाच। शृण्वन्तु मुनिशार्दूलाः श्रीकृष्णचरितामृतम्। शिवा पप्रच्छ भूतेशं यत् तद्वः कीर्त्तयाम्यहम्॥ २॥ एकदा पार्व्वती देवी शिवं संस्निग्धमानसा। प्रणयेन नमस्कृत्य प्रोवाच वचनन्त्विदम्॥ ३॥ श्रीपार्व्वत्युवाच। अनन्तकोटिब्रह्माण्डतद्बाह्या-भ्यन्तरस्थितेः। विष्णोः स्थानं परं तेषां प्रधानं वरमुत्तमम्॥ ४॥

ऋषि लोग बोले, हे महाभाग! आपसे रामाश्वमेधकी कथा तो हम लोगोंने भली भांति सुनी। अब महात्मा श्रीकृष्णके माहात्म्यको कहिये॥१॥ सूत बोले, हे मुनिवरो! श्रीकृष्णके चरितामृतको सुनो। जो पार्व्वतीने महादेवजीसे पूछा था, सो मैं तुम लोगोंसे कहता हूं॥ २॥ एक वार देवी पार्व्वती, जिनका हृदय स्निग्ध है, प्रीतिसे महादेवको नमस्कार करके यह वचन बोलीं॥ ३॥ पार्व्वती कहने लगीं, हे सम्भुप्रभो! विष्णु भगवान् अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके बाहर भीतर स्थित

यस्मात् परं नास्ति कृष्णस्य प्रियं स्थानं मनोरमम्। तत् सर्व्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो॥ ५॥ ईश्वर उवाच। गुह्याद्गुह्यतमं पुण्यं परमानन्दकारकम्। अत्यद्भुतं रहःस्थानमानन्दं सद्गुणं परम्॥ ६॥ दुर्लभानाञ्च परमं दुर्लभं मोहनं परम्। सर्व्वशक्तिमयं देवि सर्व्वस्थानेषु गोपितम्॥ ७॥ सात्वतां स्थानमूर्द्धन्यं विष्णोरत्यन्तदुर्लभम्। नित्यं वृन्दावनं नाम ब्रह्माण्डोपरिसंस्थितम्॥ ८॥ पूर्णब्रह्मसुखैश्वर्य्यं नित्यमानन्दमव्ययम्। वैकुण्ठादि तदंशांशं स्वयं वृन्दावनं भुवि॥ ९॥ गोलोकैश्वर्य्यं यत् किञ्चिद् गोकुले तत् प्रतिष्ठितम्। वैकुण्ठवैभवं यद्वै द्वारिकायां प्रतिष्ठितम्॥ १०॥ यद्ब्रह्मपरमैश्वर्य्यं नित्यं वृन्दावनाश्रयम्।

हैं, उनके स्थानोंमें गुह्य, प्रधान, श्रेष्ठ, उत्तम जो है, जिस स्थानसे बढ़के कोई स्थान कृष्णके लिये मनोरम और प्रिय नहीं है, मैं उसीका सब वर्णन सुनना चाहती हूं, कहिये ॥ ४। ५॥ महादेव बोले, गोप्यसे भी गोप्यतर, पवित्र, परमानन्दका करनेवाला, अति अद्भुत, परम, श्रेष्ठ, आनन्दरूप, दुर्लभोंमें परम दुर्लभ, परम मोहन, सर्व्वशक्तिमय, सब स्थानोंमें गुप्त, भक्तोंके स्थानोंमें शीर्षस्थ, विष्णुका अति प्रिय; हे देवि! नित्य वृन्दावन नामक स्थान संपूर्ण ब्रह्माण्डसे भी ऊपर स्थित है। ६—८॥ स्वयं वृन्दावन जो भूमिपर है, तो पूर्णब्रह्मके सुखका ऐश्वर्य, नित्य, अव्यय आनन्द और वैकुण्ठ—उसके अंशांश हैं। ९। गोलोकका जो कुछ ऐश्वर्य है, सो वृन्दावनमें और वैकुण्ठका जो वैभव है, सो द्वारिकामें प्रतिष्ठित है॥ १०॥ जो अविनाशी ब्रह्मका ऐश्वर्य है, सो वृन्दावनके आसरे है। उसमें विशेष करके

कृष्णाधाम परं तेषां वनमध्ये विशेषतः ॥ ११ ॥ तस्मात् त्रैलोक्य-मध्ये तु पृथ्वी धन्येति विश्रुता । यस्मान्माथुरकं नाम विष्णो-रेकान्तवल्लभम् ॥ १२ ॥ स्वस्थानमधिकं नामधेयं माथुरमण्डलम् । निगूढं विविधं स्थानं पुर्य्यभ्यन्तरसंस्थितम् ॥ १३ ॥ सहस्रपत्र-कमलाकारं माथुरमण्डलम् । विष्णुचक्रपरिभ्रामाद्धाम वैष्णव-मद्भुतम् ॥ १४ ॥ कर्णिकापर्णविस्तारं रहस्यद्रुमसीरितम् । प्रधान-द्वादशारण्यं माहात्म्यं कथितं क्रमात् ॥ १५ ॥ भद्र-श्री-लोह-भाण्डीर-महाताल-खदीरकाः । वकुलं कुमुदं काम्यं मधु वृन्दावनं तथा ॥ १६ ॥ द्वादशैतावती संख्या कालिन्द्याः सप्त पश्चिमे । पूर्व्वं पञ्चवनं प्रोक्तं तत्रास्ति गुह्यमुत्तमम् ॥ १७ ॥ महारण्यं गोकुलाख्यं

वनके बीच कृष्णका धाम है ॥ ११ ॥ त्रैलोक्यमें यह पृथ्वी धन्य गई है । क्योंकि मथुरामण्डल विष्णुका एकान्त प्रिय है ॥ १२ ॥ मथुरामण्डल नामवाला विष्णुका निज स्थान है । उसके भीतर बहुत सी पुरी स्थित हैं । उसके विविध स्थान अधिक गोपनीय हैं ॥ १३ ॥ मथुरामण्डल सहस्र पत्तोंसे युक्त कमलकी भांति है । उस अद्भुत वैष्णवधामके ऊपर विष्णुका चक्र घूमता रहता है ॥ १४ ॥ रहस्यरूपी पेड़मेंसे उत्पन्न उस कमलमें बीजकोष और पत्र हैं । उनमें बारह वन मुख्य हैं । उनका माहात्म्य क्रमसे कहा जाता है ॥ १५ ॥ भद्रवन, श्रीवन, लोहवन, भाण्डीरवन, महावन, तालवन, खदीरकवन, वकुलवन, कुमुदवन, काम्यवन, मधुवन और वृन्दावन ॥ १६ ॥ इस भांति वनोंकी बारह संज्ञा हैं । इनमें सात यमुनाके पश्चिममें हैं और पांच पूर्वमें उत्तम और गूढ़ कहे गये हैं ॥ १७ ॥ गोकुल, मधुवन, वृन्दावन

... वृन्दावनं तथा । अन्यच्चोपवनं प्रोक्तं कृष्णक्रीड़ास्थलं शुभम् ॥१८॥ कदम्बखण्डनं नन्दवनं नन्दीश्वरं तथा । नन्दनन्दनखण्डञ्च पलाशाशोककेतकी ॥ १९ ॥ सुगन्धमानसं कैलासं पावन-स्थलम् । सुखप्रसाधनं वत्सहरणं शेषशायिकम् ॥ २० ॥ श्याम-पूर्वं दधिग्रामञ्चक्रभानुपुरं तथा । सङ्केतं द्विपदञ्चैव बालक्रीड़न-भूषणम् ॥ २१ ॥ कामद्रुमं सुललितमुत्सुकञ्चापि काननम् । नानाविधरसक्रीड़ा-नानालीलारसस्थलम् ॥ २२ ॥ नानाविस्तार-विस्तीर्णं रत्नस्यद्रुममीरितम् । सहस्रपत्रकमलं गोकुलाख्यं महत् पदम् ॥ २३ ॥ कर्णिका तन्महद्धाम गोविन्दस्थानमुत्तमम् । तदो-परि स्वर्णपीठे मणिमण्डपमण्डितम् ॥ २४ ॥ कर्णिकायां क्रमाद् दिक्षु विदिक्षु दलमीरितम् । यद्दलं दक्षिणे प्रोक्तं परं गुह्यतमो-

---

नामक महावन और अन्य उपवन कृष्णकी लीला केलिके स्थान कहे गये हैं ॥ १८ ॥ कदम्बखण्ड, नन्दवन, नन्दीश्वरवन, नन्दनन्दनखण्ड, पलाश, अशोक और केतकीके उपवन । सुगन्धमानस, कैलास, पवित्र ... स्थान, सुखप्रसाधन, वत्सहरण, शेषशायिक ॥ १९ । २० ॥ श्यामपूर्व दधिग्राम और चक्रभानुपुर हैं । वहां कृष्णकी बाललीलाके ... भूषणयुक्त दोनों पदोंके सङ्केत हैं ॥ २१ ॥ सुललित कामद्रुम और उत्सुक वन है । वह नाना भांतिकी रसकेलि और लीला-रसका स्थान है ॥ २२ ॥ रत्नस्वरूपी पेड़से व्याप्त ... नामवाले सहस्रदलपद्मका विस्तार बड़ा है । २३ ॥ महाधाम ... उत्तम स्थान उसके ऊपर स्वर्णकी पीठपर मणिमण्डपसे ... ... है ॥ २४ ॥ उस कर्णिकाके दिशा विदिशाओंमें ...

त्तमम् ॥ २५ ॥ तस्मिन् दले महापीठं निगमागमदुर्गमम्। योगीन्द्रैरपि दुष्प्रापं सर्व्वात्मा यत्र गोकुलम् ॥ २६ ॥ द्वितीयं दलमाग्नेय्यां तद्रहस्यं दलं तथा। सङ्केतं द्विपदञ्चैव कुटी द्वौ तत्कूले स्थितौ ॥ २७ ॥ पूर्व्वं दलं तृतीयञ्च प्रधानस्थानमुत्तमम्। गङ्गादिसर्व्वतीर्थानां सर्व्वाच्छृतगुणं स्मृतम् ॥ २८ ॥ चतुर्थं दलमैशान्यां सिद्धपीठेऽपि तत्पदम्। कात्यायन्यर्च्चनाद्गोपी तत्र कृष्णं पतिं लभेत् ॥ २९ ॥ वस्त्रालङ्कारहरणं तद्दले समुदाहृतम्। उत्तरे पञ्चमं प्रोक्तं दलं सर्व्वदलोत्तमम् ॥ ३० ॥ द्वादशादित्यमत्रैव दलञ्च कर्णिकासमम्। वायव्यान्तु दलं षष्ठं तत्र कालीह्रदः स्मृतः ॥ ३१ ॥ दलोत्तमोत्तमञ्चैव प्रधानं स्यान्नकुप्यते।

निकले हैं। जो दल दक्षिणकी ओर कहा है, वह परम गुह्य उत्तमोत्तम है ॥ २५ ॥ उस दलमें वेदशास्त्रका भी अगम्य, महायोगियोंको भी दुर्लभ महापीठस्थान है। जो पूरा गोकुल है ॥ २६ ॥ दूसरा दल अग्निकोणमें है, वह दल बड़ा रहस्यमय है। वहां दो पदोंका चिह्न है और उसके कुलमें दो कुटीर स्थित हैं ॥ २७ ॥ तीसरा दल पूर्व्वमें है। उसमें एक प्रधान उत्तम स्थान है। उसका स्पर्शमात्र गङ्गादि सब तीर्थोंसे सौ गुण है ॥ २८ ॥ चौथा दल ईशानकोणमें है, सिद्धपीठमें भी उसका पद है। कात्यायनी देवीकी पूजा करके तप:कान्तियुक्त गोपीने वहां कृष्णको पति पाया था ॥ २९ ॥ चीरहरण लीला उसी दलमें हुई थी। उत्तरमें पांचवां दल सब दलोंमें उत्तम है ॥ ३० ॥ यह दल बीजकोषके समान है। बारहों आदित्य यहीं हैं। वायुकोणमें छठा दल है, यहां कालीदह है जो सब दलोंमें

सर्व्वोत्तमदलञ्चैव पश्चिमे सप्तमं स्मृतम् ॥ ३२ ॥ यज्ञपत्नीगणानाञ्च तदीप्सितवरप्रदम्। अत्रासुरोऽपि निर्व्वाणं प्राप विबुधदुर्लभम् ॥ ३३ ॥ ब्रह्ममोहनमत्रैव दलं ब्रह्महृदावहम्। नैर्ऋत्यान्तु दलं प्रोक्तमष्टमं व्योमघातनम् ॥ ३४ ॥ शङ्खचूड़वधस्तत्र नानाकेलि-रसस्थलम्। श्रुतमष्टदलं प्रोक्तं वृन्दारण्यान्तरस्थितम् ॥ ३५ ॥ श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं यमुनायाः प्रदक्षिणम्। शिवलिङ्गमधिष्ठानं दृष्टं गोपीश्वराभिधम् ॥ ३६ ॥ तद्बाह्ये षोड़शदलं श्रिया पूर्णं तदीश्वरम्। सर्व्वासु दिक्षु यत् प्रोक्तं प्रादक्षिण्याद् यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥ महत्पदं महाधाम स्वधामाधवसंज्ञकम्। प्रथमैकदलं श्रेष्ठं माहात्म्यं कर्णिकासमम् ॥ ३८ ॥ तत्र गोवर्द्धनगिरौ रम्ये नित्य-

---

उत्तमोत्तम प्रधान स्थान है। पश्चिममें सातवां दल, सब दलोंमें उत्तमोत्तम है ॥ ३१।३२ ॥ यहां यज्ञपत्नियोंको मुंहमांगा वर मिला था। यहां असुर भी देवदुर्लभ मोक्षको प्राप्त हुआ था ॥ ३३ ॥ यहां ही ब्रह्मकुण्ड है, जहां ब्रह्माको मोह हुआ था। आठवां दल नैर्ऋत-कोणमें है ; जहां भगवानने व्योमासुर मारा था ॥ ३४ ॥ यहां शङ्ख-चूड़का वध हुआ है और नाना लीलारसोंका स्थान है। ये आठ दल वृन्दावनके भीतर कहे हुए सुने हैं ॥ ३५ ॥ श्रीमत् रम्य वृन्दावन यमुनाके दहिने हैं। यहां गोपीश्वर नामक शिवलिङ्गका स्थान है ॥३६॥ उसके बाहर सोलह दल, शोभासे पूर्ण हैं। वे प्रदक्षिणाकी भांति सब दिशाओंमें फैले हैं, यथाक्रमसे कहे जाते हैं ॥ ३७ ॥ प्रथम एक दलका माहात्म्य कर्णिकाके समान है, वह मुख्यपद, महाधाम, स्वधाम माधवके नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३८ ॥ यहां रमणीय, नित्य

रसाश्रयी। कर्णिकायां महालीला तल्लीलारसगह्वरौ॥ ३९ ॥ यत्र कृष्णो नित्यवृन्दाकाननस्य पतिर्भवेत्। कृष्णो गोविन्दतां प्राप्तः किमन्यैर्बहु भाषितैः॥ ४० ॥ दलं तृतीयमाख्यातं सर्व्वश्रेष्ठोत्तमोत्तमम्। चतुर्थं दलमाख्यातं महाद्भुतरसस्थलम्॥ ४१॥ नन्दीश्वरवनं रम्यं तत्र नन्दालयः स्मृतः। कर्णिकादलमाहात्म्यं पञ्चमं दलमुच्यते॥ ४२ ॥ अधिष्ठातात्र गोपालो धेनुपालनतत्परः। षष्ठं दलं यदाख्यातं तत्र नन्दवनं स्मृतम्॥ ४३ ॥ सप्तमं वकुलारण्यं दलं रम्यं प्रकीर्त्तितम्। तत्राष्टमं तालवनं तत्र धेनुवधः स्मृतः॥ ४४ ॥ नवमं कुमुदारण्यं दलं रम्यं प्रकीर्त्तितम्। कामारण्यञ्च दशमं प्रधानं सर्व्वकारणम्॥४५॥ ब्रह्मप्रसाधनं तत्र विष्णुच्छद्मप्रदर्शनम्। कृष्णक्रीड़ारसस्थानं प्रधानं दलमुच्यते॥४६॥

रसके स्थल, गोवर्द्धन गिरिमें कर्णिकाकी महा लीलाके दो रसकुण्ड हैं॥ ३९॥ जहां कृष्ण वृन्दावनके पति हुए थे, जहां स्वयं कृष्णका नाम गोविन्द हुआ था; तो अधिक कहना बाहुल्य है॥ ४०॥ तीसरा दल सर्व्वश्रेष्ठ उत्तमोत्तम प्रसिद्ध है। चौथा दल महा अद्भुत केलिकास्थल प्रसिद्ध है॥ ४१॥ वहां नन्दका घर, रम्य नन्दीश्वर वन है; पांचवें दलका माहात्म्य बीजकोष अर्थात् कर्णिकाकी नाईं कहाजाता है॥ ४२॥ यहां धेनु पालनेमें तत्पर गोपालजी अधिष्ठाता हैं। छठवां दल जो प्रसिद्ध है, उसमें नन्दवन है॥ ४३॥ सातवें रमणीयदलमें बकुलवन है। आठवेंमें तालवन है। जहां बलदेवजीने धेनुकासुरको मारा था॥ ४४॥ नवां रम्यदल कुमुदवन कहाजाता है। प्रधान और सबका कारण दसवां कामवन कहलता है॥ ४५॥ वहीं ब्रह्मप्रसाधन

एकादशं दलं प्रोक्तं भक्तानुग्रहकारणम्। निर्माणं सेतुबन्धस्य नानावनमयस्थलम्॥ ४७॥ भाण्डीरं द्वादशदलं वनं रम्यं मनोहरम्। कृष्णः क्रीड़ारतस्तत्र श्रीदामादिभिरावृतः॥ ४८॥ त्रयोदशं दलं श्रेष्ठं तत्र भद्रवनं स्मृतम्॥ चतुर्द्दशदलं प्रोक्तं सर्व्वसिद्धिप्रदस्थलम्॥ ४९॥ श्रीवनं तत्र रुचिरं सर्वैश्वर्य्यस्य कारणम्। कृष्णक्रीड़ादलमयं श्रीकान्तिकीर्त्तिवर्द्धनम्॥ ५०॥ दलं पञ्चदशं श्रेष्ठं तत्र लोहवनं स्मृतम्। कथितं षोड़शदलं माहात्म्यं कर्णिकासमम्॥ ५१॥ महावनं तत्र गीतं तत्रास्ति गुह्यमुत्तमम्। बालक्रीड़ारतस्तत्र वत्सपालैः समावृतः॥५२॥ पूतनादिवधस्तत्र यमलार्ज्जुनभञ्जनम्। अधिष्ठाता तत्र बालगोपालः पञ्चमाब्दिकः॥ ५३॥

और विष्णुको कपट लीला हुई है। कृष्णके क्रीड़ारसके स्थान होनेसे वह प्रधान दल कहलाता है॥ ४६॥ ग्यारहवां दल भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाला कहा गया है। वह नाना लीलारसका स्थल है। सेतुबन्धका निर्म्माण यहीं हुआ है॥ ४७॥ बारहवां दल रम्य, मनोहर भाण्डीर वन है। श्रीदामा आदि सखाजनोंसे घिरके वहां कृष्णने लीला की है॥ ४८॥ तेरहवां दल श्रेष्ठ है, वहां भद्रवन है। चौदहवां दल सब सिद्धियोंका देनेवाला है॥ ४९॥ वहां श्रीवन शोभायुक्त, सब वैभवोंका कारण, श्री और कान्तिका बढ़ानेवाला और कृष्णकी केलियुक्त है॥ ५०॥ पन्द्रहवें श्रेष्ठ दलमें लोहवन है। सोलहवें दलका माहात्म्य कर्णिका हीके समान है॥ ५१॥ यहीं गोप्य और उत्तम महावन है। उस ठौर ग्वालबालोंसे घिरे हुए, बालक्रीड़ामें रत, पांच वर्षके गोपालही अधिष्ठाता हैं। पूतनाका,

नाम्ना दामोदरः प्रोक्तः प्रेमानन्दरसार्णवः। दलं प्रसिद्ध-माख्यातं सर्व्वश्रेष्ठदलोत्तमम्॥ ५४॥ कृष्णाक्रीड़ा च किञ्जल्को विहारदलमुच्यते। सिद्धप्रधानकिञ्जल्कादलञ्च समुदाहृतम्॥ ५५॥ पार्व्वत्युवाच। वृन्दारण्यस्य माहात्म्यं रहस्यं वा किमद्भुतम्। तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व महाप्रभो॥ ५६॥ ईश्वर उवाच। कथितं ते प्रियतमे गुह्याद्गुह्योत्तमोत्तमम्। रहस्यानां रहस्यं यद्दुर्लभानाञ्च दुर्लभम्॥ ५७॥ त्रैलोक्यगोपितं देवि देवेश्वर-सुपूजितम्। ब्रह्मादिवाञ्छितं स्थानं सुरसिद्धादिसेवितम्॥ ५८॥ योगीन्द्रा हि सदा भक्त्या तस्य ध्यानैकतत्पराः। अप्सरोभिश्च गन्धर्व्वैर्नृत्यगीतनिरन्तरम्॥ ५९॥ श्रीमद्वृन्दावनं रम्यं पूर्णा-

---

वध और यमलार्ज्जुन वृक्षोंका भञ्जन वहीं हुआ है॥ ५२। ५३॥ उस गोपाल मूर्त्तिका नाम दामोदर है, वह प्रेमानन्द रसकी समुद्र स्वरूप है; ये सब श्रेष्ठ दल प्रसिद्ध हैं॥ ५४॥ कृष्णक्रीड़ारूपी केसरसे युक्त यह विहारदल कहा जाता है। प्रधान सिद्धरूपी केसरसे-युक्त यह दल कहा गया है॥ ५५॥ पार्व्वती बोलीं, वृन्दावनका माहात्म्य और रहस्य क्या ही अद्भुत है, वह मैं सुनना चाहती हूं। हे महाप्रभो! कहिये॥ ५६॥ महादेव बोले, हे प्रिये! तुमसे गोप्यसे भी गोप्य, उत्तमसे भी उत्तम, रहस्योंकी भी रहस्य, दुर्लभसे भी दुर्लभ बात हमने कही॥ ५७॥ हे देवि! वह स्थान त्रैलोक्यमें गोप्य, इन्द्रसे भी पूजित, ब्रह्मादि देवताओंका वाञ्छित और देव तथा सिद्धोंसे सेवित है॥ ५८॥ बड़े बड़े योगी और शेष जी उसीके ध्यानमें सदा भक्तिसे तत्पर हैं। अप्सरा और गन्धर्व्व उसीके नृत्य

नन्दरसाश्रयम्। भूरिचिन्तामणिस्तोयममृतं रसपूरितम्॥ ६०॥
छन्नं गुरुद्रुमं तत्र सुरभीवृन्दसेवितम्। स्त्रीं लक्ष्मीं पुरुषं विष्णुं
तद्दशांशसमुद्भवम्॥ ६१॥ तत्र कैशोरवयसं नित्यमानन्द-
विग्रहम्। गतिनाट्यं कलालापस्मितवक्त्रं निरन्तरम्॥ ६२॥
शुद्धसत्त्वैः प्रेमपूर्णैर्वैष्णवैस्तद्दनाश्रितम्। पूर्णब्रह्मसुखे मग्नं
स्फुरत्तन्मूर्त्तितन्मयम्॥ ६३॥ मत्तकोकिलभृङ्गाद्यैः कूजत्कल-
मनोहरम्। कपोतशुकसङ्गीतमुन्मत्तालिसहस्रकम्॥ ६४॥ भुजङ्ग-
शत्रुनृत्याढ्यं सकलामोदविभ्रमम्। नानावर्णैश्च कुसुमैस्तद्रेणु-
परिपूरितम्॥ ६५॥ पूर्णेन्दुनित्याभ्युदयं सूर्यमन्दांशुसेवितम्।
अदुःखं दुःखविच्छेदं जरामरणवर्जितम्॥ ६६॥ अक्रोधं

तथा गीतमें लगे हैं॥ ५६॥ श्रीमत् वृन्दावन, रमणीय, पूर्णानन्दके रसका स्थल, चिन्तामणि-स्वरूप और अमृतरस जलसे भरा हुआ है॥ ६०॥ वहां गोयूथसे सेवित गुरुद्रुम वृक्ष है। स्त्री लक्ष्मी और पुरुष विष्णु उसके दशमांशसे उत्पन्न हैं॥ ६१॥ उस वनमें कैशोर अवस्थासे युक्त, अविनाशी, आनन्दमूर्त्ति, गति और नृत्य समेत सुन्दर आलाप और मुसकराहटसे युक्त मुखारविन्दवाली, उसकी मूर्त्तिमें लवलीन होके निरन्तर शुद्धसतोगुणसे सज्जित, प्रेमसे पूर्ण वैष्णवगण रहते हैं॥ ६२। ६३॥ मत्त कोकिल, भृङ्गादिकी सुन्दर वाणीसे कूजित और मनोहर, कपोत और सुओंके सङ्गीतसे मग्न सहस्रों मधुकरोंसे युक्त, गरुड़पर लीला करनेवालेकी सकल कलाओंसे मय, नाना रङ्गके फूल और उसके परागसे परिपूर्ण, नित्य पूर्णचन्द्रके प्रकाशसे युक्त, सूर्यकी मन्द किरणोंसे प्रकाशित, दुःखहीन, दुःख

गतमात्सर्य्यमभिन्नमनहङ्कृतम्। पूर्णानन्दामृतरसं पूर्णप्रेमसुखार्णवम्॥ ६७॥ गुणातीतं महद्धाम पूर्णप्रेमस्वरूपकम्। वृक्षादिपुलकैर्यत्र प्रेमानन्दाश्रु वर्षितम्॥ ६८॥ किं पुनश्चेतनायुक्तैर्विष्णुभक्तैः किमुच्यते। गोविन्दाङ्घ्रिरजःस्पर्शान्नित्यं वृन्दावनं भुवि॥ ६९॥ सहस्रदलपद्मस्य वृन्दारण्यं वराटकम्। यस्य स्पर्शनमात्रेण पृथ्वी धन्या जगत्त्रये॥ ७०॥ गुह्याद्गुह्यतरं रम्यं मध्ये वृन्दावनं भुवि। अक्षरं परमानन्दं गोविन्दस्थानमव्ययम्॥ ७१॥ गोविन्ददेहतोऽभिन्नं पूर्णब्रह्मसुखाश्रयम्। मुक्तिस्तत्र रजःस्पर्शात् तन्माहात्म्यं किमुच्यते॥ ७२॥ तस्मात् सर्व्वात्मना देवि हृदिस्थं तद्वनं कुरु। वृन्दावनविहारेषु कृष्णं कैशोरविग्र-

---

विरह बुढ़ापा और मरणसे वर्जित, क्रोधरहित, मत्सरताविहीन, अभिन्न, अहङ्काररहित, पूर्णानन्दके अमृत रससे संपूर्ण सुखके समुद्रस्वरूप, त्रिगुणोंसे अतीत, पूर्णप्रेमस्वरूप, वृक्षादि जड़जीवोंके भी रोमाञ्चित और प्रेमाश्रुसे आर्द्र, तो फिर चेतन वैष्णव भक्तोंकी क्या कहूं, महाधाम, गोविन्दकी चरणरजसे नित्य-वृन्दावन भूमिपर है॥ ६४—६९॥ सहस्र पङ्खड़ियोंसे युक्त कमलका मध्यकोष वृन्दावन है। उसके छूने मात्रसे पृथ्वी तीनों लोकमें धन्य हुई है॥ ७०॥ वृन्दावनभूमिके मध्यमें गुप्तसे गुप्त, रमणीय, अविनाशी, परमानन्दमय, नित्य गोविन्दका स्थान है॥ ७१॥ वृन्दावन और श्रीकृष्णकी देह—दो पदार्थ नहीं। उसकी धूलिके स्पर्शमात्रसे मुक्ति है। उसका अधिक माहात्म्य क्या कहूं?॥ ७२॥ हे देवि! इसी लिये उस वनको और वृन्दावनके विहारमें कृष्णकी किशोर मूर्त्तिको हृदयमें रख॥ ७३॥ उस

हम् ॥ ७३ ॥ कालिन्दी चाकरोद्यस्य कर्णिकायाः प्रदक्षिणम्। लीलानिर्व्वाणगम्भीरं जलं सौरभमोहनम् ॥ ७४ ॥ आनन्दामृततद्विम्बमकरन्दघनालयम्। पद्मोत्पलाद्यैः कुसुमैर्नानावर्णसमुज्ज्वलम् ॥ ७५ ॥ चक्रवाकादिविहगैर्मञ्जुनानाकलस्वनैः। शोभमानं जलं रम्यं तरङ्गातिमनोरमम् ॥ ७६ ॥ तस्योभयतटी रम्या शुद्धकाञ्चननिर्म्मिता। गङ्गाकोटिगुणा प्रोक्ता यत्र स्पर्शवराटकः ॥ ७७ ॥ कर्णिकायां कोटिगुणो यत्र क्रीड़ारतो हरिः। कालिन्दीकर्णिकाकृष्णमभिन्नमेकविग्रहम् ॥ ७८ ॥ पार्व्वत्युवाच। गोविन्दस्य किमाश्चर्य्यं सौन्दर्य्याङ्गतविग्रह। तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व दयानिधे ॥ ७९ ॥ ईश्वर उवाच। मध्ये वृन्दावने रम्ये मञ्जुमञ्जीरशोभिते। योजनाश्रितसद्वृक्ष-शाखा-

---

वृन्दावनरूपी कमलकी कर्णिकाकी यमुनाजीने परिक्रमाकी है। यमुनाका जल लीलारूपी मोक्ष सुखसे गम्भीर, सुगन्धसे मनोमोहन, आनन्द-सुधासे छायामें मय, घनी सुगन्धिका स्थल, कमलादि नाना वर्णोंके फूलोंसे चित्रित, चकवा आदि पक्षियोंकी सुन्दर वाणीसे कूजित, शोभायुक्त, रमणीय और लहरोंसे मनोहर है ॥ ७४—७६ ॥ उसके दोनों तट रमणीय, शुद्ध स्वर्णसे बने हुए हैं। वहांका स्पर्शमात्र गङ्गासे कोटिगुण कहा गया है ॥ ७७ ॥ वहां कृष्णने क्रीड़ा की है, वह कर्णिकासे भी कोटिगुण है। कालिन्दी, कर्णिका और कृष्ण तीनों अभिन्न, एक ही रूपमें हैं ॥ ७८ ॥ पार्व्वती जी बोलीं, गोविन्दकी मूर्त्ति कैसी अद्भुत और सुन्दर है! हे दयानिधे! कहिये, मैं उसे सुनना चाहती हूं ॥ ७९ ॥ महादेव जी बोले, रम्य वृन्दावन सुन्दर

पल्लवमण्डिते ॥ ८० ॥ तन्मध्ये मञ्जुभवने योगपीठं समुज्ज्वलम्।
तदष्टकोणनिर्म्माणं नानादीप्तिमनोहरम् ॥ ८१ ॥ तस्योपरि च
माणिक्यरत्नसिंहासनं शुभम्। तस्मिन्नष्टदलं पद्मं कर्णिकायां
सुखाश्रयम् ॥ ८२ ॥ गोविन्दस्य परं स्थानं किमस्य महिमोच्यते।
श्रीमद्गोविन्दमन्त्रस्थवल्लवीवृन्दसेवितम् ॥ ८३ ॥ दिव्यव्रजवयो-
रूपं कृष्णं वृन्दावनेश्वरम्। व्रजेन्द्रं सन्ततैश्वर्य्यं व्रजबालैक-
वल्लभम् ॥ ८४ ॥ यौवनोद्भिन्नकैशोरयुक्तमद्भुतविग्रहम्। अनादि-
मादिं सर्व्वेषां नन्दगोपप्रियात्मजम् ॥ ८५ ॥ श्रुतिमृग्यमजं
नित्यं गोपीजनमनोहरम्। परंधाम पररूपं द्विभुजं गोकुले-

राधा-कृष्णकी नूपुरध्वनिसे सदा परिपूरित है। योजनभरतक वह सुन्दर वृक्षोंकी शाखा और पत्तियोंसे सज्जित है ॥ ८० ॥ उसके बीच रमणीय भवनमें उज्ज्वल योगपीठ है। वह अष्टकोण बनी है। नाना भांतिकी आभासे परिपूर्ण है ॥ ८१ ॥ उसके ऊपर शुभ माणिक्य रत्नका सिंहासन है। उसपर आठ पङ्खड़ियोंसे युक्त कमल है। उसकी कर्णिकामें सुखका स्थल, गोविन्दका परम स्थान है, उसकी क्या महिमा कहें। वहां गोपीगणसे सेवित श्रीमान् गोविन्द हैं ॥ ८२।८३॥ उनका दिव्य किशोर अवस्थायुक्त रूप है, वह कृष्ण वृन्दावनके ईश्वर हैं। वह व्रजके ईश्वर हैं, उनका सर्व्वदा ऐश्वर्य्य है, वह व्रजबालाओंके एकमात्र वल्लभ हैं ॥ ८४ ॥ यौवनसे भिन्न जो किशोर वयस है, उससे शोभित हैं, बड़ी अद्भुत झांकी है। वह अनादि पर सर्व्वभूतोंके आदिभूत हैं। नन्द और यशोदाके पुत्र हैं ॥ ८५ ॥ वेदश्रुतीसे वह खोजे जाते हैं, अजन्मा हैं, नित्य हैं, गोपियोंके मन हरनेवाले हैं।

श्वरम् ॥ ८६ ॥ वल्लवीनन्दनं ध्यायेन्निर्गुणस्यैककारणम्। सुश्री-
मन्तं नवं स्वच्छं श्यामधाम मनोहरम् ॥ ८७ ॥ नवीननीरद-
श्रेणीसुस्निग्धं मञ्जुकुण्डलम्। फुल्लेन्दीवरसत्कान्तिसुखस्पर्शं सुखा-
वहम् ॥८८॥ दलिताञ्जनपुञ्जाभचिक्कणं श्याममोहनम्। सुस्निग्ध-
नीलकुटिलाशेषसौरभकुन्तलम् ॥ ८९ ॥ तदूर्द्ध दक्षिणे काले
श्यामचूड़ामनोहरम्। नानावर्णोज्ज्वलं राजच्छिखण्डिदल-
मण्डितम् ॥ ९० ॥ मन्दारमञ्जुगोपुच्छाचूड़ं चारुविभूषणम्।
क्वचिद्वृहद्दलश्रेणीमुकुटेनाभिमण्डितम् ॥ ९१ ॥ अनेकमणि-
माणिक्यकिरीटभूषणं क्वचित्। लोलालकवृतं राजत्कोटिचन्द्र-

उनका धाम परम अद्भुत है, उनका रूप विचित्र है, वह गोकुलेश्वरकी मूर्त्ति दो भुजाओंसे युक्त है ॥ ८६ ॥ उस गोपीजनके प्यारेका ध्यान करे, वह निर्गुण ब्रह्मके भी कारण है; सुन्दर शोभामय हैं, स्वच्छ हैं, श्यामशरीर और मनके हरनेवाले हैं ॥ ८७ ॥ नवीन मेघमालाकी भांति चिकने हैं, उनके करतल सुन्दर हैं। फूले हुए कमलकी न्याईं उनकी कान्ति शोभित है; उनके दर्शन स्पर्शमें सुख है ॥ ८८ ॥ वह मूर्त्ति पिसे हुए अञ्जनकी न्याईं श्याम, स्निग्ध और मनोमोहन है। उनके बहुतसे चिकने काले घुंघुरवाले और सुगन्धित-केश हैं ॥ ८९ ॥ उनके ऊंचे दाहिनी ओर श्याम चोटी मनोमोहिनी है; रङ्ग-रङ्गके मयूर पक्षोंसे मण्डितहोके शोभित है ॥ ९० ॥ सुन्दर देवपुष्पोंसे सज्जित गोपुच्छके आकारकी चोटी है। कहीं कहीं कमलके फूलोंके मुकुटसे वेष्टित है ॥ ९१ ॥ कहीं कहीं उस मनोहर मूर्त्तिकी लचकीली लटसे लपटा हुआ, ललाम मुख कोटि चन्द्रके समान और अनेक मणि-

समाननम् ॥ ९२ ॥ कस्तूरीतिलकं भ्राजन्मञ्जुगोरोचनान्वितम् ।
नीलेन्दीवरसुस्निग्धसुदीर्घदललोचनम् ॥९३॥ आनृत्यद्भ्रूलताश्लेष-
स्मितं साचिनिरीक्षणम् । सुचारून्नतसौन्दर्यनासाग्रातिमनो-
हरम् ॥ ९४ ॥ नासाग्रगजमुक्तांशुमुग्धीकृतजगत्त्रयम् । सिन्दू-
रारुणसुस्निग्धाधरोष्ठसुमनोहरम् ॥ ९५ ॥ नानावर्णोल्लसत्स्वर्ण-
मकराकृतिकुण्डलम् । तद्रश्मिपुञ्जसद्गण्डमुकुराभलसद्द्युतिम् ॥
९६ ॥ कर्णोत्पलसुमन्दारमकरोत्तंसभूषितम् । श्रीवत्सकौस्तुभो-
रस्कं मुक्ताहारस्फुरद्गलम् ॥ ९७ ॥ विलसद्दिव्यमाणिक्यं मञ्जु-
काञ्चनमिश्रितम् । करे कङ्कणकेयूरं किङ्किणीकटिशोभितम् ॥ ९८ ॥

माणिक्योंके किरीटसे भूषित है ॥ ९२ ॥ कस्तूरीके तिलकसे विराजित, सुन्दर गोरोचनसे युक्त, नील कमलकी न्याईं स्निग्ध, कमलपत्रोंकी भांति दीर्घलोचनसे मण्डित हैं ॥ ९३ ॥ नृत्यके आनन्दमें उस प्रतिमाकी दोनों भंवें मिल गई हैं ; मन्द मन्द मुसकाती हैं, शोभित कटाक्ष हैं, छबीला और उठा हुआ उसकी नासिकाका अग्रभाग मनको हरता है ॥ ९४ ॥ अपनी नाकके गजमुक्ताकी किरणोंसे उसने तीनों लोक बावले बना दिये हैं। उनके चिकने ओठ मनोहर और सिन्दूरकी भांति लाल हैं ॥ ९५ ॥ नाना भांतिके रङ्गोंसे चित्रित उसके स्वर्णमय मकराकृत कुण्डल हैं ; उनकी ज्योतिसे दोनों कपोल दर्पणकी न्याईं चमकते हैं ॥ ९६ ॥ उसके दोनों कान मन्दार आदि पुष्पोंसे मण्डित, उदर श्रीवत्स-मणिसे जगमगाता हुआ और गलदेश मोतियोंके हारसे सुशोभित है ॥ ९७ ॥ सुन्दर सुवर्णमय दिव्य मणियोंसे जटित उसके हाथमें कङ्कण और कटिमें करधनी शोभा पाती है ॥ ९८ ॥ उसके

मञ्जुमञ्जीरसौन्दर्यश्रीमदङ्घ्रिविराजितम्। कर्पूरागुरुकस्तूरी-
विलसच्चन्दनादिकम् ॥ ९९ ॥ गोरोचनादिसंमिश्रदिव्याङ्गराग-
चित्रितम् ॥ स्निग्धपीतपटीराजत्प्रपदान्दोलिताञ्चनम् ॥ १०० ॥
गम्भीरनाभिकमलं रोमराजीलतस्रजम्। सुवृत्तजानुयुगलं पाद-
पद्ममनोहरम् ॥ १०१ ॥ ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजकराङ्घ्रितलशोभितम्।
नखेन्दुकिरणश्रेणीपूर्णब्रह्मैककारणम् ॥ १०२ ॥ केचिद् वदन्ति
तस्यांशं ब्रह्म चिद्रूपमद्वयम्। तदंशांशं महाविष्णुं प्रवदन्ति मनी-
षिणः ॥ १०३ ॥ योगीन्द्रैः सनकाद्यैश्च तदेव हृदि चिन्त्यते। त्रिभङ्ग-
ललिताशेषनिर्माणसारनिर्मितम् ॥ १०४ ॥ तिर्यग्ग्रीवजितानन्त-
कोटिकन्दर्पसुन्दरम्। वामांशार्पितसद्गण्डस्फुरत्काञ्चनकुण्डलम् ॥१०५

श्रीचरण सुन्दर नूपुरोंके सौन्दर्यसे विराजित, उनकी देह कपूर, अगर, कस्तूरी, चन्दन और गोरोचन आदिके मिश्रित उबटनेसे उबटी हुई है। चिकनी पीली पीताम्बरी लहराती है और आंखोंमें अञ्जन लगा हुआ है ॥ १०० ॥ गम्भीर नाभि है और कमलकी मालासे ढकी हुई रोमराजी शोभायमान है। दोनों घुटने गोल हैं, चरण-कमल मनोहर हैं ॥ १०१ ॥ चरणके तलवोंमें ध्वजा, वज्र, अङ्कुश और कमलके चिन्ह शोभित हैं। नख चन्द्रमाकी किरणमालाकी नाईं हैं। यही पूर्णब्रह्मके कारण हैं ॥ १०१ ॥ कोई कोई मुनि कहते हैं, कि निराकार चिद्रूप और अद्वय ब्रह्म उस मूर्त्तिका एक अंश है और महाविष्णु उसके दूसरे अंश हैं ॥ १०३ ॥ उस त्रिभङ्ग. सुन्दर, सभी-भांति निर्मित, मूर्त्तिको सनकादि योगी ध्यान धरते हैं ॥ १०४ ॥ उसकी ग्रीवा बांकी और छवि करोड़ों कामदेवको जीतनेवाली है। उसके

सहापाङ्गेक्षणस्मेरं कोटिमन्मथसुन्दरम् । कुञ्चिताधरविन्यस्तवं-
शीमञ्जुकलस्वनैः । जगत्त्रयं मोहयन्तं मग्नं प्रेमसुधार्णवे ॥
१०६ ॥ पार्व्वत्युवाच । परमं कारणं कृष्णं गोविन्दाख्यं महत्
पदम् ॥ १०७ ॥ वृन्दावनेश्वरं नित्यं निर्गुणस्यैककारणम् ।
तत्तद्रहस्यमाहात्म्यं किमाश्चर्य्यञ्च सुन्दरम् । तद् ब्रूहि देवदेवेश
श्रोतुमिच्छाम्यहं प्रभो ॥ १०८ ॥ ईश्वर उवाच । यदङ्घ्रिनख-
चन्द्रांशुमहिमान्तो न गम्यते । तन्माहात्म्यं कियद्देवि प्रोच्यते
त्वं मुदा शृणु ॥ १०९ ॥ अनन्तकोटिब्रह्माण्डे अनन्तत्रिगुणो-
च्छ्रये । तत्कलाकोटिकोट्यंशा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ११० ॥
सृष्टिस्थित्यादिना युक्तास्तिष्ठन्ति तस्य वैभवाः । तद्रूपकोटि-

---

स्निग्ध कपोलोंपर सुवर्णके कुण्डल विराजते हैं ॥ १०५ ॥ कुटिल कटाक्ष-सहित उसकी मुसकराहट करोड़ों कामदेवोंको जीतती है। उसके सङ्कुचित ओंठोपर रक्खी हुई वंशी मानों कोमल स्वरसे बोल रही है। वह छवि तीनों लोकोंको मोहके प्रेम-समुद्रमें डुबाती है ॥ १०६ ॥ श्रीपार्व्वती बोलीं, गोविन्दका परमपद परम कारण है। उस वृन्दावनेश्वर, निर्गुणके कारण, नित्य, कृष्णके धामका महात्म्य क्या ही रहस्य, आश्चर्य और सुन्दरतासे युक्त होगा। हे महादेव! हे प्रभो! उसको मैं सुनना चाहती हूं, कहिये! ॥ १०७।१०८ ॥ महादेव जी बोले, जिनके चरणोंके नखकी चन्द्रकिरणोंकी महिमाका अन्त नहीं है। उसका माहात्म्य प्रसन्न होके सुनो, कुछ कहते हैं ॥ १०९ ॥ अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें त्रिगुणका अनन्त समूह है। उसकी कलाके कोटि कोटि अंशमें ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हैं ॥ ११० जो

कोट्यंशाः कलाः कन्दर्पविग्रहाः। जगन्मोहं प्रकुर्व्वन्ति तद-
ण्डान्तरसंस्थिताः॥ १११ ॥ तद्देहविलसत्कान्तिकोटिकोट्यंशको
विभुः। तत्प्रकाशस्य कोट्यंशरश्मयो रविविग्रहाः॥ ११२ ॥ तस्य
स्वदेहकिरणैः परानन्दरसामृतैः। परमामोदचिद्रूपैर्निर्गुणस्यैक-
कारणैः॥ ११३ ॥ तदंशकोटिकोट्यंशा जीवन्ति किरणात्मकाः।
तदङ्घ्रिपङ्कजद्वन्द्वनखचन्द्रमणिप्रभाः॥ ११४ ॥ आहुः पूर्णब्रह्मणोऽपि
कारणं वेददुर्गमम्। तदंशसौरभानन्तकोट्यंशो विश्वमोहनः॥
११५ ॥ तत्स्पर्शपुष्पगन्धादिनानासौरभसम्भवः। तत्प्रिया प्रकृति-
स्त्वाद्या राधिका कृष्णवल्लभा॥ ११६ ॥ तत्कलाकोटिकोट्यंशा

सृष्टिके सृजन, पालन और नाशनसे युक्त होके प्रताप-सहित रहते हैं। उनकी कोटि कोटि कलामें कामरूपी देवता रहते हैं, जो ब्रह्माण्डमें रहके जगत्को मोहते है॥ १११॥ ऐसे प्रभुकी देहकी शोभायमान कान्ति और प्रकाशसे सूर्य्य चन्द्र आदि तेज हैं॥ ११२॥ उसकी देहकी किरण परमानन्दके अमृतसे युक्त हैं और सच्चिदानन्द निर्गुणकी कारण हैं॥ ११३॥ ये सब पूर्वोक्त देव उसी मूर्त्तिकी नखरूपी चांदनीके तेजसे प्रकाशित हैं॥ ११४॥ वेदोंसे भी कठिनाईसे जानने योग्य, उस विश्वमोहनी, गोपालकी मूर्त्तिने ही अपने अनन्त अंशोमेंके एक अंशसे पूर्णब्रह्मको किया है, ऐसा कहते हैं॥ ११५॥ उसकी छुई हुई पुष्पगन्धिसे नाना सुगन्धियां उत्पन्न हुई हैं। उसीकी प्यारी प्रकृति महामायाका स्वरूप राधिका, कृष्णकी प्यारी हैं॥ ११६॥ उसकी कलाके करोड़ों अंशमें तीनों गुणोंसे

दुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः। तस्या अङ्घ्रिरजःस्पर्शात् कोटिविष्णुः प्रजायते ॥ ११७ ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः।

पार्व्वत्युवाच। यद्वाकर्णनमेतस्य ये वा पारिषदाः प्रभोः। तदहं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व दयानिधे ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच। राधया सह गोविन्दं स्वर्णसिंहासने स्थितम्। पूर्व्वोक्तरूपलावण्यं दिव्य-भूषाम्बरस्रजम् ॥ २ ॥ त्रिभङ्गीमञ्जुसुस्निग्धं गोपीलोचनतारकम्। तद्बाह्ये योगपीठे च स्वर्णसिंहासनावृते ॥ ३ ॥ प्रत्यङ्गरभसावेशाः

युक्त दुर्गा आदि हैं। उसके पदरजके स्पर्शसे करोड़ों विष्णु उत्पन्न होते हैं ॥ ११७ ॥

प्रथम अध्याय समाप्त ॥

पार्व्वती जी बोलीं, यह तो सुना। अब जो उन श्रीकृष्णके पारिषद हैं, हे प्रभो! हे दयानिधे! उन्हींको कहिये, मैं उन्हींको सुनना चाहती हूं ॥ १ ॥ महादेव जी बोले, पूर्वोक्त रूप और शोभासे युक्त, दिव्य भूषण, वसन और मालासे शोभित, सोनेके सिंहासनपर स्थित राधाके सहित गोविन्द हैं ॥ २ ॥ उसके बाहर योगपीठमें स्वर्णकी सिंहासनसे वेष्टित, त्रिभङ्गी छविसे शोभायमान, सुचिक्कण, गोपियोंके नेत्रके तारे-स्वरूप श्रीकृष्ण जी हैं ॥ ३ ॥ प्रत्यङ्गसे प्रेममय

प्रधानाः कृष्णवल्लभाः। ललितायाः प्रकृत्यंशा मूलप्रकृतिराधिका॥
४॥ सम्मुखे ललिता देवी श्यामला वायुकोणके। उत्तरे श्रीमती
धन्या ऐशान्यां श्रीहरिप्रिया॥ ५॥ विशाखा च तथा पूर्व्वे शव्या
चाग्नौ ततः परम्। पद्मा च दक्षिणे पश्चान्नैर्ऋते क्रमशः
स्थिताः॥ ६॥ योगपीठे केशराग्रे चारुचन्द्रावती प्रिया। अष्टौ
प्रकृतयः पुण्याः प्रधानाः कृष्णवल्लभाः॥ ७॥ प्रधाना प्रकृतिस्त्वाद्या
राधा चन्द्रावतीसमा। चन्द्रावली चित्ररेखा चन्द्रा मदन-
सुन्दरी॥ ८॥ प्रिया च श्रीमधुमती चन्द्ररेखा हरिप्रिया।
षोड़शाद्याः प्रकृतयः प्रधानाः कृष्णवल्लभाः॥ ९॥ वृन्दावनेश्वरी
राधा तथा चन्द्रावली प्रिया। अभिन्नगुणलावण्यसौन्दर्य्या-
श्चारुलोचनाः॥ १०॥ मनोहरा मुग्धवेशाः किशोरीवयसोज्ज्वलाः।

प्रधान, कृष्णके प्रिय सखा हैं। ललिता आदि महामायाकी अंश-स्वरूपिणी मूलमें प्रधान प्रकृति राधिका ही, प्रिया जीकी सखी हैं॥४॥ सामने वायुकोणमें सांवले रङ्गकी ललिता देवी हैं। उत्तरमें श्रीमती धन्यादेवी, ईशानकोणमें श्रीहरिप्रिया। पूर्व्वमें विशाखा, उसके पीछे अग्निकोणमें शैव्या, दक्षिणमें पद्मा। पीछे क्रमानुसार स्थित नैर्ऋत-कोणमें केसरमय योगपीठमें सुन्दर चन्द्रावती प्रिया हैं। ये आठों प्रकृति पवित्र कृष्णकी प्राणप्रिया हैं॥ ५—७॥ प्रधान प्रकृति आद्या-शक्ति राधा और चन्द्रावतीके समान चन्द्रावली, चित्ररेखा, चन्द्रा, मदन-सुन्दरी, प्रिया, श्री, मधुमती और चन्द्ररेखा—ये सब मिलके सोलहो कृष्णकी सखी, प्रधान प्रकृति और गोविन्दकी प्यारी हैं॥ ८। ९॥ वृन्दावनेश्वरी राधिका और प्रिया चन्द्रावली—इन सुन्दर-लोचनियोंके

अग्रेतनास्तथा ह्यन्या गोपकन्याः सहस्रशः ॥ ११ ॥ शुद्धकाञ्चन-पुञ्जाभाः सुप्रसन्नाः सुलोचनाः। तद्रूपहृदयारूढ़ास्तदाश्लेष-समुत्सुकाः ॥ १२ ॥ श्यामामृतरसे मग्नाः स्फुरत्तद्भावमानसाः। नेत्रोत्पलार्च्चिते कृष्णपादाब्जेऽर्पितचेतसः ॥ १३ ॥ श्रुतिकन्यास्ततो दक्षे सहस्रायुतसंयुताः। जगन्मुग्धीकृताकारा हृदर्त्तिकृष्ण-लालसाः ॥ १४ ॥ नानासत्त्वस्वरालापमुग्धीकृतजगत्त्रयाः। तव गूढ़रहस्यानि गायन्त्यः प्रेमविह्वलाः ॥ १५ ॥ देवकन्यास्ततः सव्ये दिव्यवेशा रसोज्ज्वलाः। नानावैदग्ध्यनिपुणा दिव्यभाव-भरान्विताः ॥ १६ ॥ सौन्दर्यातिशयेनाढ्याः कटाक्षातिमनोहराः।

गुण, हाव भाव और सुन्दरतामें कोई भेद नहीं है ॥ १० ॥ मनो-हारिणीं, मोहित वेष, किशोरावस्थावालीं, उज्ज्वल,—अगाड़ी अन्य सहस्रों ही गोप-सुन्दरी हैं ॥ ११ ॥ वे सब प्रतप्त स्वर्णपुञ्ज कैसी शोभावालीं, सुप्रसन्न, सुनयन हैं। उनके हृदयमें उन्हीं कृष्णका रूप आरूढ़ है, उन्हींके आलिङ्गनकी उत्कण्ठा रहती है ॥ १२ ॥ वे कृष्णके अमृत-रसमें डूबी हैं, उन्हींके भाव उनके हृदयमें उठते बैठते हैं। केवलमात्र नेत्रकमल हीसे पूजित कृष्णके चरणारविन्दमें उनका चित्त अर्पित है ॥ १३ ॥ बाईं ओर सहस्रों, लाखों श्रुतिकन्याओंसे घिरी हुई हैं। उन श्रुतिकन्याओंने अपने रूपसे जगत्‌को मोह लिया है' उनके हृदयमें कृष्णकी लालसा वर्त्तती है ॥ १४ ॥ वे श्रुतिकन्यायें विविध सत्त्वगुणयुक्त स्वरोंके आलापसे त्रिलोकीको मोह रही हैं; प्रेमसे विह्वल होके वहां कृष्णके गूढ़ रहस्योंको गा रही हैं ॥ १५ ॥ उन षोड़श गोपियोंके दाहिने भागमें दिव्य वेष, रससे देदीप्यमान, नाना

निर्लज्जास्तत्र गोविन्दे तदङ्गस्पर्शनोत्सुकाः ॥ १७ ॥ तद्भावमग्न-
मनसः स्मितसाचिनिरीक्षणाः। मन्दिरस्य ततो वाह्ये प्रियया
विग्रहावृते ॥ १८ ॥ समानवेशवयसः समानबलपौरुषाः। समान-
गुणकर्म्माणः समानाभरणप्रियाः ॥ १९ ॥ समानस्वरसङ्गीत
वेणुवादनतत्पराः। श्रीदामा पश्चिमे द्वारे वसुदामा तथोत्तरे ॥
२० ॥ सुदामा च तथा पूर्व्वे किङ्किणी चापि दक्षिणे। तद्वाह्ये
स्वर्णपीठे च सुवर्णमन्दिरावृते ॥ २१ ॥ स्वर्णवेद्यन्तरस्थे तु स्वर्णा-
भरणभूषिते। स्तोककृष्णं सुभद्राद्यैर्गोपालैरयुतायुतैः ॥ २२ ॥
शृङ्गवीणावेणुवेत्रवयोवेशाकृतिस्वरैः। तद्गुणध्यानसंयुक्तैर्गायद्भि-

---

प्रवीणताओंसे चतुर, दिव्य भावोंके समूहसे युक्त देव-कन्याएं है ॥ १६ ॥
वे देवकन्याएं अतिशय शृङ्गारसे आढ्य हैं; कटाक्षोंसे अति मनोहर
हैं; निर्लज्ज होके गोविन्दके अङ्गोंका आलिङ्गन करनेको उद्यत
हैं ॥ १७ ॥ वे उन्हीं कृष्णके भावमें चित्तसे डूबी हैं। वे सुखकरा-
क्षटसे शोभित कटाक्षोंवाली हैं। तत् पश्चात् मन्दिरके वाहिर प्रिया-
ओंसे आवेष्टित, कृष्णके समान ही वेष-वयसवाले, समान ही वल-
पौरुषवाले, समान गुणकर्म्मोंवाले, समान ही आभूषणोंके प्रिय, समान
ही स्वर और सङ्गीतसे वंशीके बजानेमें तत्पर सखागण हैं। पश्चिम
द्वारमें श्रीदामा हैं, तथा उत्तरमें वसुदामा हैं ॥ १८—२० ॥ पूर्व्वमें
सुदामा है, दक्षिणमें किङ्किणी है। उसके वाहर सुवर्णके आसनपर,
सुवर्ण मन्दिरोंसे वेष्टित, सुवर्णके अलङ्कारोंसे भूषित सुवर्णकी वेदीके
अन्तःस्थ भद्र आदि असंख्य गोपों और अनन्त गोपालोंसे आवृत
स्तोककृष्ण हैं ॥ २१। २२ ॥ वे गोपाल नरसिंहा, वीणा, वंशी, छड़ी

रपि विह्वलैः ॥ २३ ॥ चित्रार्पितैश्चिरस्थैः सदानन्दाश्रुवर्षिभिः । पुलकाकुलसर्व्वाङ्गैर्योगीन्द्रैरिव विस्मितैः ॥ २४ ॥ चरत्ययोभिर्गोविन्दैरसंख्यातैरुपावृतम् । तद्वाह्ये स्वर्णप्राकारे कोटिसूर्य्यसमुज्ज्वले ॥ २५ ॥ चतुर्दिक्षु महोद्यानं सप्तसौरभमोहिते । पश्चिमे सम्मुखे श्रीमत्पारिजातद्रुमाश्रये ॥२६॥ तदधस्तु स्वर्णपीठे स्वर्णमण्डनमण्डिते । तन्मध्ये मणिमाणिक्यदिव्यसिंहासनोज्ज्वले ॥ २७ ॥ तत्रोपरि परानन्दं वासुदेवं जगत्प्रभुम् । त्रिगुणातीतचिद्रूपं सर्व्वकारणकारणम् ॥ २८ ॥ इन्द्रनीलघनश्यामं नीलकुञ्चितकुन्तलम् । पद्मपत्रविशालाक्षं मकराकृतिकुण्डलम् ॥ २९ ॥

अवस्था, आकृति, स्वर आदि गुणोंमें उन्हीं श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं; गाते गाते विह्वल हो जाते हैं ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णके ध्यानमें मूर्त्तिकी न्याईं अचल आनन्दके आंसू बरसा रहे हैं; उनके सर्व्व शरीरमें रोमाञ्च हैं, यह दशा देखके योगीन्द्र भी विस्मित हो गये हैं ॥२४॥ बहुतसी दुधार गायोंसे वेष्टित उसके बाहर कोटि सूर्य्यकी तरह उज्ज्वल राजभवन है ॥ २५ ॥ चारो ओर सुन्दर सुगन्धसे मोहनेवाली बड़ी भारी पुष्पवाटिका है। उसके सामने पश्चिममें पारिजात नाम दिव्य वृक्ष है ॥२६॥ उसके नीचे स्वर्णके आभूषणोंसे जटित स्वर्णका आसन है। उसके बीच मणि-माणिक्यसे भूषित दिव्य सिंहासन है ॥ २७ ॥ उसके ऊपर परमानन्द-स्वरूप, जगन्नाथ, वासुदेव सत्त्व, रजः, तम आदिसे दुष्प्राप्य चिद्रूपवाले सब कारणोंके कारण हैं ॥ २८ ॥ उनका रङ्ग नीलमणि अथवा मेघकी तरह सांवला है; केश काले और घूंघरवाले हैं, आंखें कमलदलकी न्याईं विशाल हैं, कुण्डल मकराकृत हैं ॥ २९ ॥ वह

चतुर्भुजन्तु चक्रासिगदाशङ्खाम्बुजायुधम् । आद्यन्तरहितं नित्यं प्रधानं पुरुषोत्तमम् ॥ ३० ॥ ज्योतीरूपं महद्धाम पुराणं वनमालिनम् । पीताम्बरधरं स्निग्धं दिव्यभूषणभूषितम् ॥ ३१ ॥ दिव्यानुलेपनं राजच्चित्रिताङ्गमनोहरम् । रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजिती सुलक्षणा ॥ ३२ ॥ मित्रविन्दानुविन्दा सुनन्दा जाम्बवती प्रिया । सुशीला चाष्टमहिला वासुदेवप्रियास्ततः ॥ ३३ ॥ जङ्गाजिताः पारिषदाद्वृतयोर्भक्तितत्पराः । उत्तरे सुमहोद्याने हरिचन्दनसंश्रये ॥ ३४ ॥ तत्राधस्तु स्वर्णपीठे मणिमण्डपमण्डिते । तन्मध्ये हेमनिर्माणदले सिंहासनोज्ज्वले ॥ ३५ ॥ तत्रैव सह रेवत्या सङ्कर्षणहलायुधम् । ईश्वरस्य प्रियानन्तमभिन्नगुणरूपिणम् ॥ ३६ ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशं रक्ताम्बुज-

चतुर्भुज हैं, चक्र, गदा, शङ्ख, कमल उनके आयुध हैं । वे आदि तथा अन्त-विहीन, नित्य, प्रधान पुरुषोत्तम है ॥ ३० ॥ उनका धाम बड़ा है, इसमे ज्योतिः स्वरूप कहलाते हैं, वह अनादि, वनमालाके धारण करनेवाले, पीताम्बरधारी, सुचिक्कण, दिव्य अलङ्कारोंसे भूषित हैं ॥ ३१ ॥ वह देवोचित उबटनेके कारण चित्रित अङ्गोंसे शोभित हैं । उनके पीछे श्रीकृष्णकी आठ पटरानी, रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, मित्रविन्दा, अनुविन्दा, सुनन्दा, जाम्बवती, सुशीला सुलक्षणा हैं ॥३२ ३३॥ ये सब भक्तिमें तत्पर, पारिषदोंसे घिरी हुई शोभित हैं । अब, सुन्दर बड़े हरिचन्दनमय उपवन हैं ॥ ३४ ॥ पेड़ोंके नीचे, मणिमण्डपसे शोभित, स्वर्णका आसन है । उसके बीचे स्वर्णमय, उज्ज्वल सिंहासन है ॥३५॥ वहां ही रेवतीके साथ सङ्कर्षण, हलको धारण करनेवाले, श्रीकृष्णसे

दलेचणम्। नीलपट्टधरं स्निग्धं दिव्यभूषास्रगम्बरम् ॥ ३७ ॥ मधुपाने सदासक्तं मधुघूर्णितलोचनम्। प्रवीरदक्षिणे भागे मञ्जुनाभ्यन्तरस्थिते ॥ ३८ ॥ सन्तानवृक्षमूले तु मणिमन्दिरमण्डितम्। तन्मध्ये मणिमाणिक्यदिव्यसिंहासनोज्ज्वले ॥ ३९ ॥ प्रद्युम्नञ्च रतीदेवं तत्रोपरि सुखस्थितम्। जगन्मोहनसौन्दर्यसारश्रेणीरसात्मकम् ॥ ४० ॥ असिताम्भोजपुञ्जाभमरविन्ददलेक्षणाम्। दिव्यालङ्कारभूषाभिर्दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥ ४१ ॥ जगन्मुग्धीकृताशेषसौन्दर्याश्चर्यविग्रहम्। पूर्व्वोद्याने महारण्ये सुरद्रुमसमाश्रये ॥ ४२ ॥ तत्राधस्तु स्वर्णपीठे हेममण्डपमण्डिते। तस्य

अभिन्न गुण-रूपवाले बलदाऊ जी हैं ॥ ३६ ॥ उनकी आभा शुद्ध स्फटिककी न्याईं श्वेत है ; सुचिक्कण और दिव्य भूषण, माला और वस्त्रको धारण करते हैं ॥ ३७ ॥ सदा मधुपानमें आसक्त हैं, सदा उनकी आंखें मधुपानसे छकी हुई रहती हैं। उस कमलदलकी नाभिके भीतर दक्षिण भागमें प्रवीर हैं ॥ ३८ ॥ सन्तान-वृक्षके मूलमें मणिमन्दिरसे मण्डित, बीचमें मणिमाणिक्यसे उज्ज्वल दिव्य सिंहासन है ॥ ३९ ॥ उसके ऊपर सुखसे बैठे हुए प्रद्युम्न और रति हैं। उनका सौन्दर्यरसकी श्रेणी जगत्को मोहती है ॥ ४० ॥ प्रद्युम्नकी नील-कमलपुञ्ज कैसी आभा है, कमलदलसी बड़ी बड़ी आंखें हैं ; दिव्य आभूषण, दिव्य अलङ्कार, दिव्य गन्धके उबटनेसे ही शोभित हैं ॥ ४१ ॥ उनकी अद्भुत झांकीने अनन्त सौन्दर्यसे जगत्को पागल कर दिया है। पूर्व्वमें कल्पवृक्षोंसे भरापुरा महा-अरण्य उपवन है ॥ ४२ ॥ उन पेड़ोंके नीचे हेममण्डपसे भूषित स्वर्णकी वेदीपर स्थित उज्ज्वल सिंहासन

मध्ये स्थिरे राजद्दिव्यसिंहासनोज्ज्वले ॥ ४३ ॥ दिव्योषया समं श्रीमदनिरुद्धं जगत्पतिम्। सान्द्रानन्दघनश्यामं सुस्निग्धं नील-कुन्तलम् ॥ ४४ ॥ सुभ्रून्नतलताभङ्गिं सुकपोलं सुनासिकम्। सुग्रीवं सुन्दरं वक्षोमनोहरमनोहरम् ॥ ४५ ॥ किरीटिनं कुण्ड-लिनं कण्ठभूषाविभूषितम्। मञ्जुमञ्जीरमाधुर्य्यादतिसौन्दर्य्यविग्र-हम् ॥ ४६ ॥ प्रियभृत्यगणाराध्यं यत्र सङ्गीतकप्रियम्। पूर्ण-ब्रह्मसदानन्दं शुद्धसत्त्वस्वरूपकम् ॥ ४७ ॥ तस्योर्द्ध्वे चान्तरिक्षे च विष्णुं सर्व्वेश्वरेश्वरम्। अनादिमादिचिद्रूपं चिदानन्दं परं विभुम् ॥ ४८ ॥ त्रिगुणातीतमव्यक्तं नित्यमक्षयमव्ययम्। समेघ-पुष्पमाधुर्य्यसौन्दर्य्यश्याम विग्रहम् ॥ ४९ ॥ नीलकुञ्चितसुस्निग्धकेश-

---

विराजती है ॥ ४३ ॥ वहां दिव्य ऊषाके साथ श्रीमान् जगत्पति अनिरुद्ध हैं। गाढ़े आनन्द-घनकी न्याईं श्याम हैं, सुचिक्कण हैं; काली अलकोंवाले हैं ॥ ४४ ॥ वह सुन्दर, ऊंची, टेढ़ी भ्रू-लताकी भङ्गीसे शोभित हैं, कपोल सुन्दर हैं; चारु नासिका है, कण्ठ शोभा-मय है, सुन्दर वक्षःस्थल मनोहरोंका मनोहर है ॥ ४५ ॥ अनिरुद्ध किरीट, कुण्डल और कण्ठके भूषणोंसे भूषित हैं। सुन्दर नूपुरोंकी मधुर झनकारसे उनका स्वरूप और भी सुन्दर है ॥ ४६ ॥ वह प्रिय भृत्यगणसे आराध्य हैं, सङ्गीत उनको प्रिय है, वह पूर्णब्रह्म हैं, सदा ही उनको आनन्द है, वह शुद्ध सत्त्वगुणके स्वरूप हैं ॥ ४७ ॥ उसके ऊपर अन्तरिक्षमें सर्व्वेश्वरोंके ईश्वर विष्णु हैं। वह अनादि, आदिसे चिद्रूप, चित्में आनन्दवाले, परम प्रभु हैं ॥ ४८ ॥ त्रिगुणसे अतीत, अप्रकट, नित्य, अविनाशी, अक्षय हैं, मेघमालाका उनका माधुर्य है, उनका

पाद्यातिसुन्दरम् । अरविन्ददलस्निग्धसुदीर्घचारुलोचनम् ॥ ५० ॥
किरीटकुण्डलोद्गण्डशुम्बत्स्वाभिर्वृतम् । आत्मारामैश्च चिद्रूपै-
स्तन्मूर्त्तिध्यानतत्परैः ॥ ५१ ॥ हृदयास्तृढतद्ध्यानैर्नासाग्रन्यस्त-
लोचनैः । क्रियतेऽहैतुकी भक्तिः कायहृद्वित्तिभाषितैः ॥ ५२ ॥
तत्सभ्ये यक्षगन्धर्वसिद्धविद्याधरादिभिः । सुकान्तैरप्सरसःक्लृप्तैनृत्य-
सङ्गीततत्परैः ॥ ५३ ॥ तदङ्गभजनं कामं वाञ्छद्भिः कृष्णलालसैः ।
तदग्रे वैष्णवैः सर्वैश्चान्तरिच्चे सुखासने ॥ ५४ ॥ प्रह्लादनारदाद्यैश्च
कुमारशुकवैष्णवैः । जनकाद्यैर्लसद्भावैर्हृद्वाक्यस्फूर्त्तितत्परैः ॥ ५५ ॥

सुन्दर श्यामस्वरूप है ॥ ५० ॥ उनके केश काले, चिकने, घुँघरवाले और सुन्दर हैं ; नेत्र कमलदलकी न्याईं स्निग्ध, बड़े-बड़े और सुन्दर है ॥ ५० ॥ शुद्धसत्वमय किरीट-कुण्डलोंसे उनके कपोलोंपर सुन्दर आभाका ध्यान करते हुए, आत्माराम लोग, चिद्रूपवाले उन्हीं कृष्णकी मूर्तिके ध्यानमें तत्पर हैं ॥ ५१ ॥ उनके हृदयमें उन्हींका ध्यान चढ़ा हुआ है, ध्यानमें आंखें अपनी नाकके अग्रभागपर स्थिर हो गई हैं, मन वचनकर्म्मके स्वभावसे वे उन श्रीकृष्णकी कामनाहीन प्रीति कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ उसके दाहिनी ओर यक्ष गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर आदिसे घिरे हुए ; नृत्य-गीतमें तत्पर सुन्दर कान्तिवाली अप्सराओंसे वेष्टित ॥ ५३ ॥ वे अप्सरायें सब उसी गोपालमूर्त्तिके स्पर्शकी कामना चाहनेवाली हैं ; कृष्णहीकी उन्हें लालसा है ; उसके अगाड़ी अन्तरिक्षमें सुखासन-पर बैठे सब वैष्णव हैं—उन्हींसे वह मूर्त्ति वेष्टित है ॥ ५४ ॥ वे वैष्णव प्रह्लाद, नारद, सनक, सनन्दन, कुमार, शुकदेव, जनक आदि हैं ; सबके भावोंमें मग्न हैं, उनके हृदय और शरीरमें भक्तिकी स्फूर्ति है

पुलकाकुलसर्व्वाङ्गैः स्फुरत्प्रेमसमाकुलैः। रहस्यामृतसंसिक्तैरर्द्ध-युग्माक्षरो मनुः ॥ ५६ ॥ मन्त्रचूड़ामणिः प्रोक्तः सर्व्वमन्त्रैककारणम्। सर्व्वदेवस्य मन्त्राणां कैशोरं मन्त्रहेतुकम् ॥ ५७ ॥ सर्व्वकैशोर-मन्त्राणां हेतुश्चूड़ामणिर्मनुः। जपं कुर्व्वन्ति मनसा पूर्णप्रेमसुखा-श्रयाः ॥ ५८ ॥ वाञ्छन्ति तत्पदाम्भोजे निर्म्मलं प्रेमसाधनम्। तद्बाह्ये स्फटिकाद्युच्चप्राकारे सुमनोहरे ॥ ५९ ॥ कुङ्कुमैः सित-रक्ताद्यैश्चतुर्दिक्षु समाकुलैः। शुक्लं चतुर्भुजं विष्णुं पश्चिमे द्वार-पालकम् ॥ ६० ॥ शङ्खचक्रगदापद्मकिरीटादिविभूषितम्। रक्तं चतुर्भुजं पद्मशङ्खचक्रगदायुधम् ॥ ६१ ॥ किरीटकुण्डलोद्दीप्तं द्वार-

॥ ५५ ॥ उन सबके सम्पूर्ण अङ्ग पुलकायमान हो उठते हुए प्रेमसे युक्त हैं; रहस्यरूपी अमृतसे सींचे हुए हैं। अढ़ाई अक्षरका मनुमन्त्र सब मन्त्रोंका शिरोमणि है, सब मन्त्रोंका एकमात्र कारण है। सर्व्वदेव-मन्त्रोंका कैशोर रूप कारण है ॥ ५६। ५७ ॥ पर यह मनुमन्त्र सब कैशोर मन्त्रोंका भी कारण हैं, पूर्ण प्रेम-सुखके आसरेवाले उसी ढाई अक्षर प्रेम-मन्त्रका जप करते हैं ॥ ५८ ॥ वे लोग उस श्रीगोपाल-मूर्त्तिके चरण-कमलोंमें प्रेम भक्तिकी याचना मांगते हैं। उसके बाहर मनोहर स्फटिककी उच्च भींतिके भीतर ॥ ५९ ॥ केसर, श्वेतरङ्ग, रक्त-वर्णसे लिप्त, चारो दिशाओंकी ओर उज्ज्वल चतुर्भुज विष्णुरूप द्वार-पाल हैं। उनमें पश्चिमके द्वारका द्वारपाल चतुर्भुज है ॥ ६० ॥ वह शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, किरीट आदिसे शोभित हैं: वह रक्तवर्णका है; शङ्खचक्रगदापद्म ही उसके आयुध हैं ॥ ६१ ॥ गौरवर्ण, चतुर्भुज, विष्णुरूप, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधर, किरीट-कुण्डलोंसे भूषित

पालकमनुत्तरे। गौरं चतुर्भुजं विष्णुं शङ्खचक्रगदायुधम्॥ ६२॥ किरीटकुण्डलाद्यैश्च शोभितं वनमालिनम्। पूर्व्वद्वारे द्वारपालं गौरं विष्णुं प्रकीर्त्तितम्॥ ६३॥ कृष्णावर्णं चतुर्व्वाहुं शङ्खचक्रादिभूषणम्। दक्षिणद्वारपालन्तु श्रीविष्णुं कृष्णवर्णकम्॥६४॥ श्रीकृष्णचरितं ह्येतद्यः पठेत् प्रयतः शुचिः। शृणुयाद्वापि यो मर्त्यः गोविन्दे लभते रतिम्॥ ६५॥

द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

उत्तरमें द्वारपाल है॥ ६२॥ गौरवर्ण, विष्णुरूप, किरीट-कुण्डलादिसे सुशोभित वनमालाका धारण करनेवाला पूर्व्वद्वारका द्वारपाल कहा जाता है॥ ६३॥ श्रीकृष्णका ही स्वरूप, श्यामवर्ण, शङ्ख-चक्र-गदा-रूपी आयुधवाला चतुर्भुज दक्षिणका द्वारपाल है॥ ६४॥ यह श्रीकृष्णका चरित्र प्रयत्नसे शुद्ध होके पढ़ता है अथवा जो भक्तिसे सुनता भी है, वह गोविन्दके चरणोंमें भक्ति पाता है॥ ६५॥

द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ॥ २॥

तृतीयोऽध्यायः

देव्युवाच। भगवन् सर्व्वभूतेश सर्व्वात्मन् सर्व्वसम्भव। देवेश्वर महादेव सर्व्वज्ञ करुणाकर ॥१॥ त्वयानुकम्पितवाहं भूयोऽप्याहानुकम्पया। त्रैलोक्यमोहना मन्त्रास्त्वया मे कथिताः प्रभो ॥२॥ तेन देवेन गोपीभिर्महामोहनरूपिणा। केन केन विशेषेण चिक्रीड़े तद्वदस्व मे ॥३॥ महादेव उवाच। एकदा वादयन् वीणां नारदो मुनिपुङ्गवः। कृष्णावतारमाज्ञाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥४॥ गत्वा तत्र महायोगमयेशं विभुमच्युतम्। बालनाट्यधरं देवदर्शनं नन्दवेश्मनि ॥ ५ ॥ सुकोमलपटास्तीर्णहेमपर्य्यङ्किकोपरि। शयानं गोपकन्याभिः प्रेक्ष्यमाणं सदामुदम् ॥ ६ ॥ अतीव सुकुमाराङ्गं मुग्धं मुग्धविलोकनम्। विस्रस्तनीलकुटिलकुन्तलावलिमण्डलम् ॥ ७ ॥

पार्व्वती जी बोलीं, हे भगवान्, सर्व्वभूतनाथ, सर्व्वात्मन्, सबके उद्भः, देव, ईश्वर, महादेव, सर्व्वज्ञ, करुणाकी खानि ॥ १ ॥ आपने मुझपर बड़ी कृपा की; कृपा करके बहुत वर्णन किया, तीनों लोकोंको मोहनेवाले मन्त्र हैं। प्रभो! आपने मुझसे कहे ॥ २ ॥ अब यह मुझसे कहिये, कि उस मोहन-स्वरूप श्रीकृष्ण देवने किस किस विशेष गोपीसे क्रीड़ा की है॥ ३ ॥ महादेव जी बोले, एक बार वीणा बजाते हुए मुनिवर नारद कृष्णके अवतारको हुआ जान नंदगोकुलको गये ॥ ४ ॥ वहां जाके नंदके घरमें गुदगुदे बिछौनेवाली सोनेकी खाटपर महायोगमयीके प्रभु, ईश्वर, अच्युत, बालकरूपी, नृत्यविहारी, देवदर्शन, सोते हुए, गोपकन्याओंसे सहर्ष अवलोकित, अतीव कोमलाङ्ग, भोले,

किञ्चित्स्मिताङ्कुरव्यक्तदिकद्विरदकुड्मलम् । स्वप्रभाभिर्भासयन्तं समन्ताद्भवनोदरम् ॥ ८ ॥ दिग्वाससं समालोक्य सोऽतिहर्षमवाप ह । सम्भाष्य गोपतिं नन्दमाह सर्व्वप्रभुप्रियः ॥ ९ ॥ नारायणपराणान्तु जीवनं ह्यतिदुर्लभम् । अस्य प्रभावमतुलं न जानन्तीह केचन ॥ १० ॥ भवब्रह्मादयोऽप्यस्मिन् रतिं वाञ्छन्ति शाश्वतीम् । चरितञ्चास्य बालस्य सर्व्वेषामेव हर्षणम् ॥ ११ ॥ मुदा गायन्ति शृण्वन्ति चाभिनन्दन्ति तादृशाः । अस्मिंस्तव सुतेऽचिन्त्यप्रभावे स्निग्धमानसाः ॥१२॥ नराः सन्ति न तेषां वै भवबाधा भविष्यति । मुञ्चेहपरलोकेच्छाः सर्व्वा बल्लवसत्तम ॥ १३ ॥ एकान्तेनैकभावेन बालेऽस्मिन् प्रीति-

---

मोहनी डालनेवाले, छूटी हुई काली घूंघरवाली अलकोंसे सुशोभित, एक दो दांतोंसे उत्पन्न कुछ कुछ मुसकराहटसे सुशोभित, अपनी कान्तिसे संपूर्ण ब्रह्माण्डको प्रकाशित करते हुए, नग्न बालगोपालको देखा। देखके नारदको बड़ा हर्ष हुआ। वह सर्व्वप्रभु ईश्वरके प्रिय नन्दगोपसे कहने लगे ॥ ५—६ ॥ नारायणके प्रेमियोंकाभी जीवन बड़ा दुर्लभ है। यहां इस बालकके अतुल प्रभावको कोई नहीं जानते ॥ १० ॥ शिव, ब्रह्मा आदि भी इस बालकमें निश्चला भक्ति चाहते हैं, इस बालकके चरित्रसे सभीको हर्ष होता है ॥ ११ ॥ वैसे स्नेहयुक्त हृदयवाले, तुम्हारे अचिन्त्य प्रभाववाले बालकके चरित्रको प्रसन्न होके गाते हैं, सुनते है, सुनके सन्तुष्ट होते हैं ॥ १२ ॥ जो ऐसा नहीं करते है, वे मनुष्य नहीं हैं ; उनको संसारकी बाधा होती है ; सो हे गोपनाथ नन्द! आप इसलोक परलोककी सब चिन्ता छोड़ दो ॥ १३ ॥ और एकान्त एकभावसे इस बालकमें भक्ति करो। ऐसा

नारदः। इत्युक्त्वा नन्दभवनान्निष्क्रान्तो मुनिपुङ्गवः ॥ १४ ॥ तेना-र्चितो विष्णुबुद्ध्या प्रणम्य च विसर्ज्जितः। अथासौ चिन्तयामास महाभागवतो मुनिः ॥ १५ ॥ अस्य कान्ता भगवती लक्ष्मीर्नारायणी हरौ। विधाय गोपिकारूपं क्रीड़ार्थं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १६ ॥ अवश्य-मवतीर्णा सा भविष्यति न संशयः। तामहं विचिनोम्यद्य गेहे गेहे व्रजौकसाम् ॥ १७ ॥ विमृश्यैवं मुनिवरो गेहानि व्रजवासिनाम् ॥ प्रविवेशातिथिर्भूत्वा विष्णुबुद्ध्या सुपूजितः ॥ १८ ॥ सर्व्वेषां वल्लवा-दीनां रतिं नन्दसुते पराम्। दृष्ट्वा मुनिवरः सर्व्वान् मनसा प्रणनाम च ॥ १९ ॥ गोपालानां गृहे बालां ददर्श श्वेतरूपिणीम्। स दृष्ट्वा तर्कयामास रमा सैषा न संशयः ॥ २० ॥ प्रविवेश ततो धीमान्

यह कहके मुनिवर नारद नन्दके घरसे चल दिये ॥ १४ ॥ नन्दने भी उनको साक्षात् भगवान जानके ही पूजा करके उन्हें विदा किया। अब वह महावैष्णव मुनि सोचने लगे ॥ १५ ॥ इन शार्ङ्गधन्वके धनुष धरनेवाले श्रीकृष्णकी प्रिया भगवती लक्ष्मीने नारायण हरिके क्रीड़ा करनेके लिये अवश्य गोपीका रूप धरके अवतार लिया होगा; इसमें संशय नहीं। सो आजमें व्रजवासियोंके घर घरमें जाके उसे पहचानूं ॥ १६ ॥ १७ ॥ यह सोचके वह मुनिवर अतिथि होके व्रजवासियोंके घरमें गये; वहां साक्षात् विष्णु जानके ही पूजा हुई ॥ १८ ॥ सब व्रजवासियोंकी नन्दके बालकमें परम भक्ति देखके मुनिवरने सबको मन मनमें प्रणाम किया ॥ १९ ॥ उन गोपोंके घरमें गौरवर्णा बालिका मुनिने देखी। देखके मुनिवर विचारने लगे, इसमें सन्देह नहीं, कि यही लक्ष्मी है ॥ २० ॥ तब वह बुद्धिमान् मुनि नन्दके सखा, गोपश्रेष्ठ, किसी भानुनामसे गोपके

नन्दस्य श्वशुरस्यालयम् । कस्यचिद्‌ गोपवर्यस्य भानुनाम्नो गृहं महत् ॥
२१ ॥ अर्चितो विधिवत् तेन सोऽप्यपृच्छन्महामनाः । साधो त्वमसि
विख्यातो धर्म्मनिष्ठतया भुवि ॥ २२ ॥ तवाहं धनधान्यादिसमृद्धिं
संविभावये । कश्चित् ते योग्यः पुत्रोऽस्ति कन्या वा शुभलक्षणा ॥२३
यतस्ते कीर्त्तिरखिलं लोकं व्याप्य भविष्यति । इत्युक्तो मुनिवर्य्येण
भानुरानीय पुत्रकम् ॥ २४ ॥ महातेजस्विनं हृष्टं नारदायाभ्य-
वादयत् । दृष्ट्वा मुनिवरस्तन्तु रूपेणाप्रतिमं भुवि ॥ २५ ॥ पद्म-
पत्रविशालाक्षं सुग्रीवं सुन्दरभ्रुवम् । चारुदन्तं चारुकर्णं सर्व्वा-
वयवसुन्दरम् ॥२६॥ तं समाश्लिष्य बाहुभ्यां स्नेहाश्रूणि विमुच्य च ।
ततः सगद्गदं प्राह प्रणयेन महामुनिः ॥ २७ ॥ नारद उवाच ।

बड़े घरमें गये ॥ २१ ॥ उन्होंने उनकी विधिवत् पूजा की । तब उन
महामननशील मुनिने पूछा ; हे सज्जन धर्म्मनिष्ठासे तुम पृथ्वीमें विख्यात
हो ॥ २२ ॥ मैं तुम्हारे धन, धान्य आदिकी वृद्धिको देखता हूं ।
कोई तुम्हारे योग्य पुत्र वा शुभलक्षणा कन्या है ॥ २३ ॥ जिससे
तुम्हारी कीर्त्ति संपूर्ण ब्रह्माण्डमें फैले । मुनिसे ऐसा कहा जाते हुए
भानु अपने पुत्रको ले आये ॥ २४ ॥ उसने नारदको प्रणाम किया ;
मुनिवरने उस महातेजस्वी, मानी, रूपसे जगत्में अतुलनीय पुत्रको
देखा ॥ २५ ॥ उसकी आंख कमलदलकी न्याईं बड़ी बड़ी थीं, ग्रीवा
सुन्दर थी, भंवें मनोहर थीं, दांत सुचारु थे, कान अच्छे थे, सर्व्वाङ्ग
ही उसका सुन्दर था ॥ २६ ॥ मुनिवरने दोनों भुजाओंसे उसका
आलिङ्गन किया और स्नेहके आंसू टपकाये । तब गद्‌गद होके प्रेमसे
कहने लगे ॥ २७ ॥ नारद बोले, यह तुम्हारा पुत्र बलराम और कृष्णका

अयं शिशुस्ते भविता सुसखा रामकृष्णयोः। विहरिष्यति ताभ्याञ्च दा क्लिन्दिवनतन्द्रितः ॥२८॥ तत आभाष्य तं गोपप्रवरं मुनिपुङ्गवः। ग न्तुं मनश्चक्रे तदैवं भानुरब्रवीत् ॥२९॥ एकास्ति पुत्रिका देव देवपत्न्युपमा मम। कनीयसी शिशोरस्य जड़ान्धवधिराकृतिः ॥३०॥ उत्साहाद्दवये याचे त्वां वरं भगवत्तम। प्रसन्नदृष्टिमात्रेण सुस्थिरां कुरु बालिकाम् ॥ ३१ ॥ श्रुत्वैवं नारदो वाक्यं कौतुकाकृष्टमानसः। अथ प्रविश्य भवनं लुठन्तीं भूतले सुताम् ॥ ३२ ॥ उत्थाप्याङ्के निधायातिस्नेहविह्वलमानसः। भानुरप्यायय्यौ भक्तिनम्रो मुनिवरान्तिकम् ॥ ३३ ॥ अथ भागवतश्रेष्ठः कृष्णस्यातिप्रियो मुनिः। दृष्ट्वा तस्याः परं रूपमदृष्टाश्रुतमद्भुतम् ॥ ३४ ॥ अभूत् पूर्व्वसमं मुग्धो

सुन्दर सखा होगा ॥ २८ ॥ मुनिवरने गोपश्रेष्ठ भानुसे यही कहा; फिर चलनेका मन किया; तब भानुने यह कहा ॥ २९ ॥ हे देव! अप्सरोंकी न्याईं, इसी पुत्रकी छोटी बहिन, मेरे एक कन्या भी है। वह जड़, अन्धी और बहिरी है ॥ ३० ॥ उत्साह करके अपनी दृष्टिके लिये हे परम वैष्णव! मैं आपसे यही वर मांगता हूं, कि अपनी प्रसन्न दृष्टि मात्रसे इस बालिकाको स्वस्थ कर दीजिये ॥ ३१ ॥ यह वचन सुनके नारदका मन कौतुकसे आकृष्ट हुआ। वह घरमें गये और धरतीमें लोटती हुई कन्याको गोदमें उठाके रख लिया। भक्तिसे नम्र होके और स्नेहसे मनमें विह्वल होके भानु भी मुनिवरके पास आये ॥ ३२।३३ ॥ कृष्णके अति प्यारे, परम वैष्णव, मुनिनें उसका परम अद्भुत रूप देखा। वैसा रूप न कभी देखा, न सुना था ॥ ३४ ॥ हरिके प्रेमी महामुनि पहलेकी न्याईं अब भी प्रेममें जड़ हो गये।

हरिप्रेरा महामुनिः। विगाह्य परमानन्दसिन्धुमेकरसायनम् ॥३५॥ मुहूर्त्तद्वितयं तत्र मुनिरासीच्छिलोपमः॥ मुनीन्द्रः प्रतिबुद्धस्तु शनैरुन्मील्य लोचने ॥ ३६ ॥ महाविस्मयतापन्नस्तूष्णीमेव स्थितो ऽभवत्। अन्तर्हृदि महाबुद्धिरेवमेवं व्यचिन्तयत् ॥ ३७ ॥ भ्रान्तं सर्व्वेषु लोकेषु मया स्वच्छन्दचारिणा। अस्या रूपेण सदृशी दृष्टा नैव च कुत्रचित् ॥३८॥ ब्रह्मलोके रुद्रलोक इन्द्रलोके च मे गतिः। न कोऽपि शोभाकोट्यंशः कुत्राप्यस्या विलोकितः ॥३९॥ महामाया भगवती दृष्टा शैलेन्द्रनन्दिनी। यस्या रूपेण सकलं मुह्यते सचराचरम् ॥ ४० ॥ साप्यस्याः सुकुमाराङ्गी लक्ष्मीं नाप्नोति कर्हिचित्। लक्ष्मीः सरस्वती कान्ति-विद्याद्याश्च वरस्त्रियः ॥ ४१ ॥ छायामपि

एक मात्र रसकी खानि परमानन्दरूपी समुद्रकी थाह लेने लगे ॥ ३५ ॥ वहां चार घड़ीतक मुनि पत्थरकी न्याईं निश्चल हो बैठे रहे। फिर बुद्धिमान् मुनिने धीरे दोनों आंखें खोलीं ॥ ३६ ॥ वह महाबुद्धिमान् महा आश्चर्यसे युक्त हुए, फिर चुप बैठे रहे। हृदयके भीतर मुनिवर यह विचारने लगे ॥ ३७ ॥ मैं स्वच्छन्द होके सब लोकोंमें घूमा। इसके रूपकी समतावाली मैंने कहीं नहीं देखी ॥ ३८ ॥ ब्रह्मलोक, रुद्रलोक, इन्द्रलोकोंमें मेरी गति है, पर इसकी शोभाका करोड़वां अंश भी मैंने कहीं नहीं न देखा ॥ ३९ ॥ जिसके रूपसे सब चराचर जगत् मोहता है, वह महामाया भगवती पार्व्वती भी मैंने देखी ॥ ४० ॥ वह भी इस कोमलाङ्गीकी शोभाके योग्य कभी नहीं है, लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति, विद्या आदि श्रेष्ठ स्त्रियां इसकी छायाको भी छूते कभी नहीं देखी गईं, विष्णुका जो मोहनी

स्वरूपन्त्वस्याः कदाचिन्नैव दृश्यते । विष्णोर्यन्मोहिनीरूपं हरो येन विमोहितः ॥ ४२ ॥ मया दृष्टञ्च तदपि कुतोऽस्याः सदृशं भवेत् । ततोऽस्यास्तत्त्वमाज्ञातुं न मे शक्तिः कथञ्चन ॥ ४३ ॥ अन्ये चापि न जानन्ति प्रायेणैनां हरेः प्रियाम् । अस्याः सन्दर्शनादेव गोविन्द-चरणाम्बुजे ॥४४॥ या प्रेमर्द्धिरभूत् सा मे भूतपूर्व्वा न कर्हिचित् । एकान्ते नौमि भवतीं दर्शयित्वाति वैभवम् ॥ ४५ ॥ कृपास्य संभवत्यस्या रूपं परमतुष्टये । विमृश्यैवं मुनिर्गोपप्रवरं प्रेष्य कुत्रचित् ॥ निभृते परितुष्टाव बालिकां दिव्यरूपिणीम् ॥ अपि देवि महायोग-मायेश्वरि महाप्रभे ॥ ४७ ॥ महामोहनदिव्याङ्गि महामाधुर्य्य-वर्षिणि । महाद्भुतरसानन्दशिथिलीकृतमानसे ॥ ४८ ॥ महा-

रूप था, जिसने शिवको भी मोहा था । मैंने वह भी देखा ; वह इनकी बराबर कहाँ है । सो इनका तत्त्व जाननेकी मुझमें कैसे शक्ति हो सकती है ॥ ४२—४३ ॥ प्राय इस हरिकी प्रियाको और भी कोई नहीं जानते । इसके दर्शनसे ही गोविन्दके चरणकमलोंमें जो प्रेम मुझे अब हुआ है, वैसा पहले कभी नहीं हुआ था, तुम्हारा अति वैभव देखके मैं आपको एकान्त प्रीतिसे प्रणाम करता हूं ॥ ४४।४५ ॥ इसका रूप कृपाके ही योग्य है, ऐसा विचारके परम सन्तोष लाभ करनेके लिये, मुनिने गोपवर भानुको कहीं अन्यत्र भेज दिया ॥ ४६ ॥ एकान्तमें उस दिव्यरूपिणी बालिकाको देखके मुनिवर जी स्तुति करने लगे और कहने लगे हे देवि ! हे महायोगमायेश्वरि ! हे महाप्रभे ! हे महामोहन देववेशसे शोभित अङ्गवाली ! हे महा-माधुर्य्यकी वर्षा करनेवाली ! तुमने मेरा मन अद्भुत रसके आनन्दसे

भाग्येन केनापि मयाद्य दृष्टं पदम् । नित्यमन्तर्मुखी दृष्टिस्तव देवि विभाव्यते ॥ ४९ ॥ अन्तरेव महानन्दप्रदिदृमेव लक्ष्यसे । वचनं मधुरं सौम्यं सुन्दरं सुखसुन्दरम् ॥ ५० ॥ व्यनक्ति परमाश्चर्यं ममान्तःसुखोद्भवम् । रजःसत्त्वान्विताकालिकाशक्तिस्त्वमतिशोभने ॥ ५१ ॥ सृष्टिस्थितिलयाधाररूपिणी त्वमधिष्ठिता । तत्त्वं विशुद्ध-सत्त्वाख्यं शक्तिर्विद्यात्मिका परा ॥ ५२ ॥ परमानन्दसन्दोहं ददती वैष्णवं परम् । अत्याश्चर्यविभवे ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमे ॥ ५३ ॥ योगीन्द्राणां ध्यानपथं न त्वं स्पृशसि कर्हिचित् । इच्छाशक्तिर्ज्ञान-शक्तिः क्रियाशक्तिस्तवेश्वरि ॥ ५४ ॥ तवांशमात्रमित्येवं मनीषा मे

मनाग् किया ॥ ४७।४८ ॥ हे देवि ! किसी महाभाग्यके कारण मैंने आज तुम्हारे दर्शन किये हैं ; तुम्हारी दृष्टि नित्य मेरे अन्तःकरणमें शोभित रहे । ४९ ॥ यह तुम्हारा प्रवचन, मधुर, सौम्य, सुन्दर सुखान-न्दित मेरे हृदयमें महानन्द देके सन्तोषका कारण है ॥ ५० ॥ हे अतिसुन्दरि ! तुम रजोगुणसम्बन्धी कलीकी शक्ति हो, तुम्हारा दर्शन अन्तःकरणमें बड़ा अद्भुत सुखको उदय करता है ॥ ५१ ॥ तुम सृष्टिकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयका कारण हो ; तुम्हारा तत्त्व विशुद्ध सत्त्व-मय है ; तुम्हारी परम आद्यशक्ति विद्यात्मिका है ॥ ५२ ॥ हे ब्रह्मा और रुद्रसे भी दुराराध्य देवि ! तुम्हारा विभव बड़ा अद्भुत है। तुम परमानन्दके समूह और परम विष्णुके ध्यानको देती हो ॥ ५३ ॥ तुम योगिराजोंके भी ध्यानमार्गका कभी स्पर्श नहीं करती हो । सब तुम्हारी इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति और क्रियाशक्ति हैं ॥ ५४ ॥ मेरी बुद्धिमें यही आता है, कि यह सब जगत् तुम्हारा एक अंश मात्र

प्रवर्त्तते। मायाविभूतयोऽचिन्त्यास्तन्मायार्भकमायिनः॥ ५५ ॥ परे-
शस्य महाविष्णोस्ताः सर्व्वास्ते कलाकलाः। आनन्दरूपिणी शक्ति-
स्त्वमीश्वरि न संशयः॥ ५६ ॥ त्वया च क्रीड़ते कृष्णो नूनं वृन्दावने
वने। कौमारेणैव रूपेण त्वं विश्वस्य च मोहिनी॥५७॥ तारुण्य-
वयआस्पृष्टं कीदृक्‌ ते रूपमद्भुतम्। कीदृशं तव लावण्यं लीलाहासे-
क्षणान्वितम्॥ ५८॥ हरिमानुषलोभेन वपुराश्चर्यमण्डितम्। द्रष्टुं
तदहमिच्छामि रूपं ते हरिवल्लभे॥ ५९ ॥ येन नन्दसुतः कृष्णो
मोहं समुपयास्यति। इदानीं मम कारुण्यान्निजं रूपं महेश्वरि॥
६०॥ प्रणताय प्रपन्नाय प्रकाशयितुमर्हसि। इत्युक्ता मुनिवर्य्येण
तद्गुप्तचेतसा॥६१॥ महामाहेश्वरीं नत्वा महानन्दमयीं पराम्।

है। तुम उसी बालवेशधारी कृष्णकी माया हो, तुम्हारी माया और
विभूति दोनों ध्यानके योग्य हैं॥ ५५ ॥ सब ब्रह्माण्ड तेरी कलाओंकी
भी कला हैं। तुम परमेश्वर महाविष्णुकी शक्ति हो! तुम्हीं ईश्वरी
हो। इसमें संशय नहीं॥५६॥ तुम विश्वकी मोहनेवाली हो। कौमार
वेष धारण कराके कृष्णको तुम्हीं वृन्दावन नामे वनमें खिला रही हो॥
५७॥ तरुणताकी अवस्थाको स्पर्श करता हुआ, लीला हास्य और
कटाक्षोंसे युक्त, तुम्हारा अद्भुत रूप, अलौकिक सौन्दर्य कैसा होगा॥
५८॥ हे विष्णुप्रिये! तुम्हारा वह रूप देखके 'मानुषवेषधारी
हरिको कैसा आश्चर्य होगा? मैं वही रूप देखना चाहता हूं" ॥ ५९ ॥
हे महेश्वरि! अब मुझपर करुणा करके वही अपना रूप दिखाओ,
जिसे देखके नन्दसुत कृष्णको भी आश्चर्य होगा॥ ६० ॥ हे देवि!
मुझ प्रणत और प्रपन्न पर प्रसन्न हो; मुझे वही रूप दिखाओ। इतना

महाप्रेमतरोत्कण्ठाव्याकुलाङ्गीं शुभेक्षणाम् ॥ ६२ ॥ ईक्षमाणेन गोविन्दमेवं वर्णयता स्थितम्। जय कृष्ण मनोहारिन् जय वृन्दावनप्रिय ॥ ६३ ॥ जय भ्रूभङ्गललित जय वेणुरवाकुल। जय बर्हकृतोत्तंस जय गोपीविमोहन ॥६४॥ जय कुङ्कुमलिप्ताङ्ग जय रत्नविभूषण। कदाहं त्वत्प्रसादेन अनया दिव्यरूपया ॥ ६५ ॥ सहितं भवताऽत्यन्तमनोहारिवपुः श्रिया। विलोकयिष्ये कैशोरे मोहनं त्वां जगत्पते ॥६६॥ एवं कीर्त्तयतस्तस्य तत्क्षणादेव सा पुनः। बभूव दधती दिव्यं रूपमत्यन्तमोहनम् ॥६७॥ चतुर्द्दशाब्दवयसा सम्मितं ललितं परम्। समानवयसस्तान्यास्तदैव व्रजबालिकाः ॥ ६८ ॥

कहके मुनिवरने उसीका ध्यान धरा ॥ ६१ ॥ नारदने उस परम महामायाको नमस्कार किया। सुलोचनी देवीके महाप्रेमकी उत्कण्ठासे अङ्ग व्याकुल हुए ॥ ६२ ॥ नारदके मुंहसे "कृष्ण तुम्हें कब देखेंगे" इतना सुनके और नारदको खड़ा देखके, देवी बोलीं; "जय कृष्ण ! हे मनोहारिन्, तुम्हारी जय हो ! हे वृन्दावनप्रिय, तुम्हारी जय हो ! सुन्दर भंवोंकी कुटिलतासे शोभित कृष्णकी ज[य] हो ! वंशीकी ध्वानमें लगे हुए कृष्णकी जय हो ! मोरमुकुटधारीकी जय ! गोपीमोहनकी जय ! केसरके रङ्गसे चित्रित अङ्गवाले कृष्णकी जय हो ! हे रत्नभूषणभूषित, तुम्हारी जय हो ! मैं तुम्हारे प्रसादसे इस दिव्य रूपसे तुम्हें कब देखूंगी ! ॥६३—६५॥ हे जगत्पते ! नई तरुणतासे युक्त तुम्हारे अङ्गकी मनोहर मोहिनी शोभा, तुम्हारी कैशोर अवस्थामें मैं कब देखूंगी" ॥ ६६ ॥ इतना कहके, उसने उसी समय अतीव [मनोमोहन दिव्य रूप धारण किया ॥ ६७ ॥ देवीकी अवस्था

आगत्य वेष्टयामासुर्दिव्यभूषाम्बरस्रजः। मुनीन्द्रः स तु निश्चेष्टो बभूवाश्चर्य्यमोहितः ॥ ६९ ॥ बालायास्तास्तदा सख्यस्चरणाम्बुकणै-र्मुनिम्। निषिच्य बोधयामासुरूचुश्च कृपयान्विताः ॥ ७० ॥ मुनि-वर्य्य महाभाग महायोगेश्वरेश्वर। त्वयैव परया भक्त्या भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ७१ ॥ नूनमाराधितो देवो भक्तानां कामपूरकः। यदियं ब्रह्मरुद्राद्यैर्देवैः सिद्धमुनीश्वरैः ॥ ७२ ॥ महाभागवते-श्चान्यदुर्दर्शा दुर्गमापि च। अत्यद्भुतवयोरूपमोहिनी हरिवल्लभा ॥ ७३ ॥ केनाप्यचिन्त्यभाग्येन तव दृष्टिपथं गता। उत्तिष्ठोत्तिष्ठ विप्रर्षे धैर्य्यमालम्ब्य सत्वरम् ॥ ७४ ॥ एनां प्रदक्षिणीकृत्य नमस्कुरु

चौदह वर्षकी हुई, रूप परम ललित हुआ। अन्य ब्रजवालाओंने वैसी ही अवस्था धारण की ॥ ६८ ॥ ब्रजगोपियोंने दिव्य वस्त्र, आभ-रण, मालाको धारण करके उस देवीको वेष्टित किया। यह देखके वह मुनिवर आश्चर्य्यसे मोहित होके निश्चेष्ठ हुए ॥ ६९ ॥ वे सब ब्रज-देवियां चरणके पसीनेके कणोंसे मुनिको सींचने लगीं। और कृपामय होके समझाकर कहने लगीं ॥ ७० ॥ "हे महाभाग, मुनिवर ! हे महा-योगेश्वरोंके नाथ ! तुम्हींने परम भक्तिसे भगवान्, हरि, ईश्वर, भक्तोंके मनोरथोंके पूर्णकरनेवाले, श्रीकृष्णकी आराधनाकी है, जो यह ब्रह्मा, रुद्र आदि देव, सिद्ध, मुनीश्वर और भी महावैष्णवोंसे अदर्शनीय, दुर्गम्य, अति अद्भुत बयस और रूपवाली, मोहिनी, हरिकी वल्लभाका दर्शन किया है ॥ ७१—७३ ॥ किसी विना जाने हुए भाग्यके फलसे इसका तुमने दर्शन किया है। हे ब्रह्मर्षिवर ! उठो, उठो, शीघ्र ही धैर्य्य धारण करो ! ॥ ७४ ॥ इसकी परिक्रमा करके इसको बारम्बार

पुनःपुनः । किं न पश्यसि चार्व्वङ्गीमत्यन्तव्याकुलामिव ॥ ७५ ॥ अस्मिन्नेव क्षणे नूनमन्तर्द्धानं गमिष्यति । नानया सह संलापः कथञ्चित् ते भविष्यति ॥७६॥ दर्शनञ्च पुनर्नास्याः प्राप्स्यसि ब्रह्मवित्तम । किन्तु वृन्दावने कापि सात्यशोकलता शुभा ॥ ७७ ॥ सर्व्वकालेऽपि पुष्पाढ्या सर्व्वदिग्व्यापिसौरभा । गोवर्द्धनाददूरेण कुसुमाख्यसरस्तटे ॥ ७८ ॥ तन्मूले ह्यर्द्धरात्रे च द्रक्ष्यस्यशेषतः । श्रुत्वैवं वचनं तासां स्नेहविह्वलचेतसाम् ॥ ७९ ॥ यावत् प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमेद्दण्डवन्मुनिः । मुहूर्त्तदितयं बालां नानानिर्म्माणशोभनाम् ॥८० आहूय भानुं प्रोवाच नारदः सर्व्वशोभनाम् । एवंप्रभावा बालेयं न साध्या दैवतैरपि ॥ ८१ ॥ किन्तु यद्गृहमेतस्याः पदचिह्नविभू-

---

नमस्कार करो । क्या इस सुन्दरवदनीको तुम व्याकुलकी न्याईं नहीं देखते हो ॥ ७५ ॥ इसी क्षण यह अन्तर्धान हो जायगी ; तब इसके साथ तुम्हारा कभी आलाप नहीं होगा ॥ ७६ ॥ हे ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ ! फिर इसका दर्शन नहीं पा सकोगे । किन्तु वृन्दावनमें कोई विशेष सुन्दर अशोककी लता शोभायमान है ॥ ७७ ॥ वह गोवर्द्धनसे थोड़ी दूर कुसुमसर नामे कुण्डके तटपर सर्व्वदा फूलती है, उसकी सुगन्धि दश दिशाओंमें व्याप्त है ॥७८॥ उसकी जड़के निकट आधीरात तुम इस सबको देखोगे ।" उन स्नेहसे विकल बोलनेवालियोंके ऐसे वचन मुनिने सुने ॥ ७९ ॥ जब तक चार घड़ीमें उन विविध भूषणोंसे शोभित, सर्वाङ्गसुन्दरीको प्रदक्षिणा और दण्डवत् प्रणाम करें, नारद मुनिने तब तक भानु गोपको बुलाया और कहा, "ऐसे प्रतापसे युक्त कन्या देवताओंसे भी नहीं होती ॥ ८० । ८१ ॥ अधिक क्या, जो घर

षितम्। तत्र नारायणो देवः स्वयं वसति माधवः ॥ ८२ ॥ लक्ष्मीश्च वसते नित्यं सर्व्वाभिः सर्व्वसिद्धिभिः। अद्य एनां वरारोहां सर्व्वाभरणभूषणाम् ॥८३॥ देवीमिव परां गेहे रक्ष यत्नेन सत्तम। इत्युक्त्वा मनसैवैनां महाभागवतोत्तमः ॥ ८४ ॥ तद्रूपमेव संस्मृत्य प्रविष्टो गहनं वनम्। अशोकलतिकामूलमासाद्य मुनिसत्तमः ॥ ८५ ॥ प्रतीक्षमाणो देवीं तां तत्रैवागमनं निशि। स्थितोऽत्र प्रेमविकलश्चिन्तयन् कृष्णवल्लभाम् ॥ ८६ ॥ अथ मध्यनिशाभागे युवत्यः परमाद्भुताः। पूर्व्वदृष्टास्तथान्याश्च विचित्राभरणस्रजः ॥ ८७ ॥ दृष्ट्वा मनसि सम्भ्रान्तो दण्डवत्पतितो भुवि। परिवार्य्य मुनिं सर्व्वास्तास्ताः प्रविविशुः शुभाः ॥ ८८ ॥ प्रष्टुकामोऽपि स मुनिः किञ्चित् स्वाभिमतं

इसके पदचिन्होंसे सुभूषित है, वहां देव नारायण माधव स्वयं विराजते हैं ॥ ८२ ॥ और सब ऋद्धि सिद्धियोंके साथ लक्ष्मी जी रहती हैं। आजसे इस वरारोहा, सर्व भूषणोंसे भूषित, परम देवी कन्याको घरमें यत्नसे रखो।" ऐसा कहके महावैष्णवोंमें श्रेष्ठ मुनिवर उसीका रूप स्मरण करते हुए घोर वनमें चले गये और अशोकलताके मूलतक पहुंचे ॥ ८३—८५ ॥ वहां जाके रातमें वह उस देवीके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। और प्रेममें विकल होके कृष्णप्रियाका भजन करने लगे ॥ ८६ ॥ मध्य निशाके आरम्भ होते ही पहलेकी देखी हुई तथा अन्यान्य विचित्र भूषणधारिणी अद्भुत युवतियोंको नारदने देख और मनमें प्रेमसहित होके दण्डकी न्याई धरतीमें गिरनेको हुए। उन सब शुभ देवियोंने मुनिको रोका ॥ ८७।८८ ॥ उन गोपियोंके प्रेम, सौन्दर्य

प्रियम्। नाप्रकत् प्रेमलावण्यप्रियभाषाप्रधर्षितः ॥८९॥ अथागता मुनिश्रेष्ठं कृताञ्जलिमवस्थितम्। भक्तिभारानतग्रीवं सविस्मयं ससम्भ्रमम् ॥९०॥ सुविनीततमं प्राह तत्रैव करुणान्विता। अशोकमालिनीनाम्ना अशोकवनदेवता ॥९१॥ अशोकमालिन्युवाच। अशोककलिकायान्तु वसाम्यस्यां महामुने। रक्ताम्बरधरा नित्यं रक्तमालानुलेपना ॥ ९२ ॥ रक्तसिन्दूरकलिका रक्तोत्पलवतंसिनी। रक्तमाणिक्यकेयूर-मुकुटादिविभूषिता ॥९३॥ एकदा प्रियया सार्द्धं विहरन्त्यौ मधूत्सवे। तत्रैव मिलिता गोपबालिकाश्चित्रवाससः ॥९४॥ अहञ्चाशोकमालाभिर्गोपवेशधरं हरिम्। रमारूपाश्च ताः सर्व्वा भक्त्या सम्यगपूजयम् ॥ ९५ ॥ ततः प्रभृति चैतासां मध्ये तिष्ठामि

और प्रिय भाषणसे बुद्धिहीन होके मुनिवर अपने अभिवाञ्छित प्रश्नको भी न पूछ सके ॥ ८९ ॥ मुनिवर भक्तिके भारसे ग्रीवा नवाके विस्मय और आदर सहित हाथ जोड़के बैठ गये। उन नतशिर मुनिवरको करुणामयी अशोक-मालिनी नामे अशोक वनकी देवीने आके समझाया ॥ ९० । ९१ ॥ अशोक-मालिनी बोली, हे महामुने! लाल वस्त्र धारण करके, लाल माला और गन्धसे लिप्त, लाल सिन्दूर जैसी कलीके लाल पत्तेसे शोभित, लाल माणिक्य रत्नके कुण्डल-मुकुट आदिसे भूषित, मैं इस अशोककी कलियोंमें रहती हूं ॥ ९२।९३ ॥ एक बार यहां राधिकाके साथ वसन्तोत्सवमें विचित्र भूषणोंवाले श्रीकृष्ण विहार करते थे। यहां उन दोनोंको कई गोपबालिकायें भी मिलीं ॥ ९४ ॥ मैंने भी गोपवेषधारी कृष्ण और लक्ष्मीरूपिणी उन गोपियोंकी अशोककी मालाओंसे भली भांति पूजा की ॥ ९५ ॥ तभीसे इनके

सर्व्वदा। भूषाभिर्विविधाभिश्च तोषयित्वा रमापतिम् ॥९६॥ परात् परमहं सर्व्वं विजानामीह सर्व्वतः। गोगोपगोपिकादीनां रहस्यञ्चापि वेद्म्यहम् ॥ ९७ ॥ तव जिज्ञासितं सर्व्वं हृदि प्रत्यभिभाषितम्। तां देवीमद्भुताकारामद्भुतानन्ददायिनीम् ॥ ९८ ॥ हरेः प्रियां हिरण्याभां हीरकोज्ज्वलमुद्रिकाम्। कथं पश्यामि लोलाक्षीं कथं वा तत्पदाम्बुजम् ॥ ९९ ॥ आराध्यतेऽतिभक्त्येति त्वया ब्रह्मन् विमर्शितम्। तत्र ते कथयिष्यामि वृत्तान्तं सुमहात्मनाम् ॥ १०० ॥ मानसे सरसि स्थित्वा तपस्तीव्रमुपेयुषाम्। जपतां सिद्धमन्त्रांश्च ध्यायतां हरिमीश्वरम् ॥ १०१ ॥ मुनीनां काङ्क्षतां नित्यं तस्या एव

मध्यमें मैं सर्वदा बसती हूं। और नाना प्रकारके भूषणोंसे श्रीकृष्णको सन्तुष्ट करती हूं ॥ ९६ ॥ मैं इन सबको श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठ जानती हूं। गाय, गोप और गोपियोंके रहस्यको भी मैं जानती हूं ॥ ९७ ॥ तुम्हारे प्रश्नका विषय भी वही देवी है, तुम्हारे हृदयकी बात भी अद्भुत आकारवाली और अद्भुत आनन्दका देनेवाली वही देवी है ॥ ९८ ॥ हे महामुने! तुम यही सोचते हो, कि उस सोनेकी आभासे मण्डित, हीरेकी उज्ज्वल अंगूठीसे युक्त, चञ्चलाक्षी, हरिकी प्रियाको कब देखूंगा, अथवा उसके चरणकमलोंके कब दर्शन करूंगा ॥ ९९ ॥ हे ब्रह्मन्! तुम सोचते हो, कि उसकी क्या आराधना है, कैसी भक्ति है। वही वृत्तान्त मैं तुमसे कहती हूं। वह वृत्तान्त महात्मा, मानसरोवरमें खड़े होके तीव्रतप करनेवाले, सिद्ध मन्त्रोंके जपनेवाले, हरि भगवान्‌का ध्यान करनेवाले, महातेजा, जिनमें एकहत्तर सहस्र, उसी देवीके चरणार-

पद्माम्बुजम्। एकसप्ततिसाहस्रं संख्यातानां महौजसाम् ॥ १०२ ॥
तत् तेऽहं कथयाम्यद्य तद्रहस्यं परं वने ॥ १०३ ॥

तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

ईश्वर उवाच। तदेकाग्रमना भूत्वा शृणु देवि वरानने। आसी-दुग्रतपा नाम मुनिरेको दृढ़व्रतः ॥ १ ॥ साग्निको ह्यग्निभक्तश्च चचारात्यद्भुतं तपः। जजाप परमं जाप्यं मन्त्रं पञ्चदशाक्षरम् ॥२॥ काममन्त्रेण पुटितं काम्यं कामवरप्रदात्। कृष्णायेति पदं स्वाहा-सहितं सिद्धिदं परम् ॥ ३ ॥ दध्यौ च श्यामलं कृष्णं रासोन्मत्तं

विन्दसे चाहनेवाले मुनियोंने ही अनुमोदित किया है ॥ १००—१०२ ॥
उसे और उसके रहस्यको अगाड़ी वनवर्णनमें मैं तुमसे कहती हूं ॥१०३॥

तीसरा अध्याय समाप्त।

महादेव जी बोले, हे चारुमुखि देवि! एकाग्र चित्तसे सुनो। उग्रतपा नामे दृढ़ व्रतवाले कोई एक महामुनि थे ॥ १ ॥ वह साग्निक अर्थात् हवनशील और अग्निभक्त थे। वह अद्भुत तप तपते थे, और पञ्चदशाक्षर अद्भुत मन्त्रको जपते थे ॥ २ ॥ सुन्दर वर देनेवालेसे प्राप्त वह कामना सिद्ध करनेवाला मन्त्र, काममन्त्रसे पुटित था। "कृष्णाय" इस शब्द और "स्वाहा" इस शब्दसे युक्त वह परम मन्त्र सिद्धिका देनेवाला था ॥ ३ ॥ उग्रतपा मुनि सांवले कृष्णचन्द्रका

वरोत्सुकम् । पीतपट्टधरं वेणुं करेणाधरमर्पितम् ॥४॥ नवयौवन-सम्पन्नं कर्षन्तं पाणिना प्रियाम् । एवं ध्यानपरः कल्पशतान्ते देह-मुत्सृजन् ॥ ५ ॥ सुनन्दनामगोपस्य कन्याभूत् स महामुनिः । सुनन्देति समाख्याता या वीणां बिभ्रती करे ॥६॥ मुनिरन्यः सत्य-तपा इति ख्यातो महाव्रतः। स शुष्कपत्रं भुङ्क्ते यः प्रजजाप परं मनुम् ॥ ७॥ रत्यन्तं कामवीजेन पुटितञ्च दशाचरम् । स प्रदध्यौ मुनिवर-श्चित्रवेशधरं हरिम् ॥ ८ ॥ धृत्वा रमाया दोर्वल्लीद्वितयं कङ्कणो-ज्ज्वलम् । नृत्यन्तमुन्मदं तञ्च संश्लिष्यन्तं मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ हसन्त-मुच्चैरानन्दतरङ्गं जठराम्बरे । दधतं वेणुमाजानु वैजयन्त्या

रासमें उन्मत्त और वर देनेमें उत्सुक, पीताम्बरधारी और वंशीको होठोंसे लगाये हुए, नई तरुणाईसे युक्त और हाथ पकड़के राधाजीको खींचते हुए—ऐसे वेषका सौ कल्प तक अटल ध्यान धरे रहे और अन्तमें उन्होंने देह छोड़ दी ॥ ४।५ ॥ वही महामुनि सुनन्द नाम गोपकी कन्या हुए। जो सुनन्दा करकमलमें वीणा धारण किये है, वही पूर्वजन्मकी उग्रतपा है ॥ ६ ॥ अन्य एक सत्यतपा नामसे विख्यात महाव्रती मुनि थे। वह सूखे पत्तोंको खाते थे, और पूर्वोक्त परम मनुमन्त्रको जपते थे ॥ ७ ॥ वह दशाक्षर मन्त्र कामवीजसे पुटित था, उसके अन्तमें "रति" पद था। वह मुनिवर रङ्गीले रूप श्रीकृष्णका ध्यान धरते थे ॥ ८ ॥ वह वेष ऐसा था, कि श्रीकृष्णजीने राधा जीको दोनों भुजदण्डोंके उज्ज्वल कङ्कणोंको हाथसे पकड़ लिया है और उन्मत्त होके छम छम नाच रहे हैं। कभी कभी राधा जीका आलिङ्गन करते हैं ॥ ९ ॥ ऊंचे स्वरसे हंस रहे हैं, पेटके दुपट्टेमें

विराजितम् ॥ १० ॥ स्वेदाम्भःकणसंसिक्त-ललाटवलितान्ननम् । त्यक्त्वा त्यक्त्वा स वै देहं तपसा च महामुनिः ॥ ११ ॥ दशकल्पान्तरे जातो ह्ययं नन्दवनादिह । सुभद्रनाम्नो गोपस्य कन्या भद्रेति विश्रुता ॥ १२ ॥ यस्याः पृष्ठतले दिव्यं व्यजनं परिदृश्यते । हरिधामाभिधानस्तु कश्चिदासीन्महामुनिः ॥ १३ ॥ सोऽप्यतप्यत् तपः कृच्छ्रं नित्यं पत्रैकभोजनम् । आशुसिद्धिकरं मन्त्रं विंशत्यर्णं प्रजप्तवान् ॥ १४ ॥ अनन्तरं कामबीजाद्ध्यारूढं तदेव तु । माया तत्पुरतो व्योम हंसास्रग्द्युतिचन्द्रकम् ॥ १५ ॥ ततो दशाक्षरं पश्चान्नमोयुक्तं स्मरादिकम् । दध्यौ वृन्दावने रम्ये माधवीमण्डपे

आनन्दकी तरङ्गें मालूम पड़ती हैं। वंशीको बजा रहे हैं, जानुतक लम्बी वैजयन्ती मालासे सुशोभित हैं ॥ १० ॥ ललाटपर पसीनेकी बूंदे शोभायमान और मुखकमल पर उसके कारण बलियां हैं—इस वेषका ही उन्होंने दश कल्पतक ध्यान धरके देह छोड़ दी ॥ ११ ॥ दश कल्पके पीछे अब वही मुनि यहां नन्दके वनमें सुभद्र गोपके घर भद्रा कन्या हुए हैं, उसके हाथमें व्यजन दिखाई देता है। हरिधाम नामे कोई महामुनि थे ॥ १२ । १३ ॥ उन्होंने भी नित्य कठिन तपको प्रारम्भ करके एक पत्ते हीका भोजन किया (पाठान्तरमें भोजन छोड़ ही दिया) और बीस अक्षरवाला आशुसिद्धिकर मन्त्र जपा ॥ १४ ॥ और फिर उस मन्त्रको कामबीजसे अध्यारूढ़ किया। वह माया और उसके अगाड़ी हंस (सोऽहं अर्थात् वही मैं हूं), आकाश, माला, ज्योत्स्ना और चन्द्रका बीज जपते थे ॥ १५ ॥ तत्पश्चात् दशाक्षर मन्त्र "नमः" और "स्मर" शब्दोंके साथ कहते थे। और रमणीय वृन्दावनमें

प्रभुम् ॥ १६ ॥ उत्तानशायिनं चारु पल्लवास्तरणोपरि । कथा-
चिद्रतिकामार्त्तवल्लव्या रक्तनेत्रया ॥ १७ ॥ वक्षोजयुगमाच्छाद्य
विपुलोरःस्थलं मुहुः । सञ्चुम्ब्यमानगण्डान्तं दष्यमाणरदच्छदम् ॥
१८ ॥ कलयन्तं प्रियां दोर्भ्यां सहासं समुदाहृतम् । स मुनिश्च
बहून् देहांस्त्यक्त्वा कल्पत्रयान्तरे ॥ १९ ॥ सारङ्गनाम्नो गोपस्य
कन्याभूच्छुभलक्षणा । रङ्गवेणीति विख्याता निपुणा चित्र-
कर्म्मणि ॥ २० ॥ यस्या दन्तेषु दृश्यन्ते चित्रिताः शोणबिन्दवः ।
ब्रह्मवादी मुनिः कश्चिज्जावालिरिति विश्रुतः ॥ २१ ॥ स तपःसु रतो
योगी विचरन् पृथिवीमिमाम् । स एकस्मिन् महारण्ये योजना-
युतविस्तृते ॥ २२ ॥ यदृच्छयागतोऽपश्यदेकां वापीं सुशोभनाम् ।

माधवीलताके मण्डपके नीचे श्रीकृष्णका इस भांतिका ध्यान करते
थे ॥ १६ ॥ सुन्दर पल्लवोंके बिछौनाके ऊपर चित श्रीकृष्ण लेटे हुए हैं ।
कोई लाल नेत्रकोणवाली गोपी कामातुर हैं ॥ १७ ॥ वह गोपी अपने
दोनों कुचोंसे श्रीकृष्णका वक्षःस्थल दबाए हुए है । और कृष्णके कपो-
लोंका चुम्बन करके दांतोंको छत कर रही हैं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण आश्चर्य,
हास्य और हर्षके साथ दोनों भुजाओंसे उस गोपीको धारण किये हैं ।
तीन कल्पके पश्चात् उस मुनिने बहुत सी देहोंको छोड़ा ॥ १९ ॥ वही
मुनि रङ्ग नामे गोपकी शुभलक्षणा कन्या हुए । चित्र खींचनेमें निपुण
इसका नाम रङ्गवेणी पड़ा ॥ २० ॥ इसके हाथमें खिचे हुए सोनेके
विन्दुओंके चित्र हैं । जावालि नामसे विख्यात कोई एक ब्रह्मवादी
मुनि थे ॥ २१ ॥ तपमें रत वह मुनि इस पृथ्वीका पर्यटन करते हुए
एक योजन चौड़े एक महावनमें पहुंचे ॥ २२ ॥ अकस्मात् वहां

सर्व्वतः स्फाटिकाबन्धतटां स्वादुजलान्विताम् ॥ २३ ॥ विकासि-कमलामोद-वायुना परिशीलिताम् । तस्याः पश्चिमदिग्भागे मूले वटमहीरुहः ॥ २४ ॥ अपश्यत् तापसीं काञ्चित् कुर्व्वन्तीं दारुणं तपः । तारुण्यवयसा युक्तां रूपेणातिमनोहराम् ॥ २५ ॥ चन्द्रांशु-सदृशाभासां सर्व्वावयवशोभनाम् । कृत्वा कटितटे वामपाणिं दक्षिणतस्तदा ॥ २६ ॥ ज्ञानमुद्राञ्च बिभ्राणामनिमेषविलोचनाम् । त्यक्ताहारविहाराञ्च सुनिश्चलतया स्थिताम् ॥ २७ ॥ जिज्ञासुस्तां मुनिवरस्तस्थौ तत्र शतं समाः । तदन्ते तां समुत्थाप्य चलितां विन-यान्मुनिः ॥ २८ ॥ अपृच्छत् का त्वमाश्चर्य्यरूपे किं वा चरिष्यसि । यदि योग्यं भवेत् तर्हि कृपया वक्तुमर्हसि ॥ २९ ॥ अथाब्रवीच्छने-

पहुंचके मुनिने एक सुन्दर बावड़ी देखी। उसके चारों ओर स्फटिकके घाट थे और उसका जल बहुत मीठा था ॥ २३ ॥ खिले हुए कमलोंकी सुगन्धसे वहांकी वायु सुगन्धित बहती थी। उसके पश्चिम ओरवाले घाटपर एक वटके वृक्षकी जड़ थी ॥ २४ ॥ मुनिने वहां तरुण अवस्थासे युक्त, रूपसे अति मनोहर, दारुण तप करती हुई एक तपस्विनी देखी ॥ २५ ॥ उसकी आभा चन्द्रकिरणकी भांति थी। वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी बांए हाथसे कटिको धारण किये थी और दाहिने हाथसे ज्ञान-मुद्राको लिये हुए थी। आहार-विहारको छोड़के समाधिमें निश्चल और एकटक दृष्टिसे बैठी हुई थी ॥ २६।२७ ॥ उसके पास जाके मुनिने विनयसे पूछा और उसे योगसमाधिसे उठाया ॥२८॥ पूछा, कि तुम कौन हो ? क्यों ऐसा आश्चर्य रूप धारण किये तप कर रही हो ? जो योग्य हो तो कृपा करके कहो ॥ २९ ॥

वीला तपसातीवकर्षिता । ब्रह्मविद्याहमतुला योगीन्द्रैर्या
विमृग्यते ॥३०॥ साहं हरिपदाम्भोजकाम्यया सुचिरं तपः । चरास्य-
स्मिन् वने घोरे ध्यायन्ती पुरुषोत्तमम् ॥ ३१ ॥ ब्रह्मानन्देन पूर्णाहं
तेनानन्देन तृप्तधीः । तथापि शून्यमात्मानं मन्ये कृष्णरतिं विना ॥
३२ ॥ इदानीमतिनिर्विण्णा देहस्यास्य विसर्जनम् । कर्त्तु-
मिच्छामि पुण्यायां वापिकायामिहैव तु ॥ ३३ ॥ तच्छ्रुत्वा वचनं
तस्या मुनिरत्यन्तविस्मितः । पतित्वा चरणे तस्याः कृष्णोपासाविधिं
शुभम् ॥ ३४ ॥ पप्रच्छ परमप्रीतस्त्यक्त्वाध्यात्मविरोचनम् । तयोक्तं
मन्त्रमाम्नाय जगाम मानसं सरः ॥ ३५ ॥ ततोऽतिदुष्करं चक्रे तपो
विस्मयकारकम् । एकपादस्थितः सूर्य्यं निर्निमेषं विलोकयन् ॥३६॥
मन्त्रं जजाप परमं पञ्चविंशतिवर्णकम् । दध्यौ परमभावेण कृष्ण-

तपसे दुबली हुई उस तापसीने कहा, "मैं ब्रह्मविद्या हूं, मुझे ही बड़े बड़े योगी खोजते हैं ॥३०॥ मैं समाधिमें हरिके चरणारविन्दोंका ध्यान करती थी। इस घोर वनमें मैं पुरुषोत्तमका भजन करती थी ॥ ३१ ॥ मैं ब्रह्मानन्दसे पूर्ण हूं, मेरी बुद्धि उस आनन्दसे तृप्त है। तो भी कृष्णकी रतिके बिना आत्माको शून्य मानती हूं ॥ ३२ ॥ अब मैं इस अति कृश देहको इसी पवित्र बावड़ीमें छोड़ना चाहती हूं ॥ ३३ ॥ मुनिने अत्यन्त विस्मित होके उसके शुभ बचन सुने और उसके चरणोंमें गिरके कृष्णकी उपासना पूछी। मुनिसे उस समय आत्मत्त्वको छोड़ दिया और परम प्रीत हुए, मन्त्रको जानके मानसरो-वरको चले गये ॥३४।३५॥ तब इन्होंने अति कठिन और विस्मयकारक तप तपा। एक पैरसे खड़े होके एकटक दृष्टिसे सूर्यको देखते रहे ॥३६

मानन्दरूपिणम् ॥ ३७ ॥ चरन्तं व्रजवीथीषु विचित्रगतिलीलया।
ललितैः पादविन्यासैः क्वणयन्तञ्च नूपुरम् ॥ ३८ ॥ चित्रकन्दर्प-
चेष्टाभिः सस्मितापाङ्गवीक्षितैः। सम्मोहनाख्यया वंश्या पञ्चमालप-
चित्रया ॥ ३९ ॥ विम्बौष्ठपुटचुम्बिन्या कलालापैर्मनोज्ञया। हरन्तं
व्रजरामाणां मनांसि च वपूंषि च ॥ ४० ॥ श्लथन्नीवीभिरागत्य
सहसालिङ्गिताङ्गकम्। दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥
४१ ॥ श्यामलाङ्गप्रभापूरैर्मोहयन्तं जगत्त्रयम्। स एवं बहुदेहेन
समुपास्य जगत्पतिम् ॥ ४२ ॥ नवकल्पान्तरे जाता गोकुले दिव्य-
रूपिणी। कन्या प्रचण्डनाम्नस्तु गोपस्यातियशस्विनः ॥ ४३ ॥

पचीस वर्णका परम मन्त्र जपा और आनन्दरूपी कृष्णका इस भांति परम भावसे ध्यान धरा ॥ ३७ ॥ सुन्दर रीतिसे चरणोंके रखते हुए व्रजकी गलियोंमें कृष्ण घूम रहे हैं, उनकी लीलामयी विचित्र चालसे नूपुर झम झम बज रहे हैं ॥ ३८ ॥ कामदेवके अद्भुत लक्षणोंसे वह मुसकराते हुए कनखियों देख रहे हैं। संमोहनी नाम-वाली और लाल रङ्गवाली, वंशी पञ्चम स्वर गा रही है ॥ ३९ ॥ वह वंशी मनोहर स्वरोंसे कृष्णके लाल बिम्बाफल जैसे होठों को चूम रही है। ऐसे कृष्ण व्रजवनिताओंके मन तथा शरीरोंको हर रहे हैं ॥ ४० वह कृष्ण ढीली नीवींको खोलके गोपीका आलिङ्गन कर रहे हैं, और दिव्य माला वस्त्र और दिव्य गन्धके उबटनेको धारण किये हुए हैं ॥४१॥ ध्यानमय कृष्ण सांवले शरीरकी महिमासे त्रिलोकीको मोह रहे हैं। मुनिने जगत्पति कृष्णका बहुत बार देह धारण करके ऐसा ध्यान किया ॥ ४२ ॥ नौ कल्पके पीछे वह मुनि गोकुलमें यशस्वी प्रचण्ड नामे गोपके घर

चित्रगन्धेति विख्याता कुमारी च शुभानना। निजाङ्गगन्धैर्विविध-सौरयन्ती दिशो दश ॥ ४४ ॥ तामेनां पश्य कल्याणीं वृन्दशो मधुपायिनोम्। अङ्केषु स्वपतिं कृत्वा रसावेगसमाकुलाम् ॥ ४५ ॥ अस्याः स्तनपरिष्वङ्गे हारः सर्व्वैर्विहन्यते। वक्षःस्थलात् प्रच्यवन्ति-चित्रगन्धादिसौरभैः ॥ ४६ ॥ अपरे मुनिवर्य्यास्तु सततं पूतमानसाः। वायुभक्षास्तपस्तेपुजपन्तः परमं मनुम् ॥ ४७ ॥ स्मरः कृष्णाय कामार्त्तिकलादिवृत्तिशालिने। आग्नेयीसहितं कृत्वा मन्त्रं पञ्च-दशाक्षरम् ॥ ४८ ॥ दध्युर्मुनिवराः कृष्णमूर्त्तिं दिव्यविभूषणाम्। दिव्यचित्रदुकूलेन पूर्णपीनकटिस्थलाम् ॥ ४९ ॥ मयूरपिच्छकैः

दिव्यरूपिणी कन्या हए ॥ ४३ ॥ वह चारुमुखी कन्या चित्रगन्धा नामसे ख्यात है; अपने अङ्गसे उत्पन्न नाना प्रकारकी गन्धोंसे वह दशो दिशायें सुगन्धित कर रही है ॥ ४४ ॥ उसको इस समूहमें मधुपीते हुए देखो। रसके वेगसे समाकुल होके पति श्रीकृष्णको हृदयमें लिपटाये हुए है ॥ ४५ ॥ इसके कुचोंके आलिङ्गनसे सब पुष्पमालायें टूट गई हैं। वक्षःस्थलसे विविध प्रकारके सुगन्धोंसे युक्त फूल टपक रहे हैं ॥ ४६ ॥ सदा शुद्ध मनवाले अन्य कई मुनियोंने वायुका ही भक्षण करके तपस्या की और परम मनुमन्त्रका जप किया ॥ ४७ ॥ काम-वेदनाकी कलाओंके वृत्तिशाली "स्मर" शब्दके साथ कृष्णके अर्थ उन्होंने आग्नेयी विधिके साथ पन्द्रह अक्षरवाला दिव्य मन्त्र जपा ॥४८॥ उन मुनिवरोंने श्रीकृष्णको दिव्य भूषणोंसे युक्त मूर्त्तिका इस भांति ध्यान किया, कि दिव्य रङ्ग-बरङ्गी पीताम्बरीसे श्रीकृष्णका सम्पूर्ण पुष्ट नितम्बभाग आच्छादित है ॥ ४९ ॥ चोटी मोर-पङ्खोंसे शोभित है और कुण्डल उज्ज्वल हैं।

क्रुप्तचूड़ामुज्ज्वलकुण्डलाम् । सव्यजङ्घान्त आदाय दक्षिणं चरणाम्बुजम् ॥ ५० ॥ भ्रमन्तीं सम्पुटीकृत्य चारुहस्ताम्बुजद्वयम् । कक्षदेशविनिक्षिप्तवेणुं परिचलत्पुटीम् ॥ ५१ ॥ आनन्दयन्तीं गोपीनां नयनानि मनांसि च । परमाश्चर्य्यरूपेण प्रविष्टां रङ्गमण्डपे ॥ ५२ ॥ प्रसूनवर्षैर्गोपीभिः पूर्य्यमाणाञ्च सर्व्वतः । अथ कल्पान्तरे देहं त्यक्त्वा जाता इहाधुना ॥ ५३ ॥ यासां कर्णेषु दृश्यन्ते ताटङ्का रश्मिदीपिताः । रत्नमाल्यानि कण्ठेषु रत्नपुष्पाणि वेणिषु ॥ ५४ ॥ मुनिः शुचिश्रवा नाम सुवर्णो नाम चापरः । कुशध्वजस्य ब्रह्मर्षेः पुत्रौ तौ वेदपारगौ ॥ ५५ ॥ ऊर्द्ध्वपादौ तपो घोरं तेपतुस्त्र्यक्षरं मनुम् । ह्रीं हंस इति कृत्वैव जपन्तौ यतमानसौ ॥ ५६ ॥ ध्यायन्तौ गोकुले

बांई जङ्घाके अन्त पर अर्थात् घुटनेपर दाहिने चरण कमलको रखे हैं और दोनों करकमलोंको जोड़के पार्श्वदेशमेंसे धीरे धीरे वांशी बजाते हुए त्रिभङ्गीलाल चल रहे हैं ॥ ५० । ५१ ॥ परमाश्चर्य्यरूपसे रङ्ग-मण्डपमें स्थित गोपियोंके नेत्र और मनोंको ठण्डा कर रहे हैं ॥ ५२ ॥ चारो ओरसे गोपियोंने फूलोंकी वर्षासे उन्हें आच्छादित कर दिया है। वे सब मुनि इसी ध्यानमें मत्त एक कल्पके पीछे देह त्यागके यहां जन्मे हैं ॥ ५३ ॥ जिनके कानमें किरणोंसे प्रदीप्त ताटङ्क जगमगा रहे हैं। कण्ठमें रत्नोंकी मालाएं हैं; वेणियोंमें रत्नोंहीके फूल हैं—वे गोपियां वेही मुनि हैं ॥ ५४ ॥ ब्रह्मर्षि कुशध्वजके दो पुत्र वेदपारङ्गत थे। एकका नाम शुचिश्रवा मुनि और दूसरेका सुवर्ण था ॥ ५५ ॥ उन दोनोंने ऊंचेको पैर करके घोर तप तपा और मन लगाके "ह्रीं हंस" इन शब्दोंके साथ तीन अक्षरवाला मनुमन्त्र जपा ॥

कृष्णं बालकं दशवार्षिकम्। कन्दर्पसमरूपेण तारुण्यललितेन च ॥५७॥ पश्यन्तीर्व्रजबिम्बोष्ठीर्मोहयन्तमनारतम्। तौ कल्पान्ते तनू त्यक्त्वा लब्धवन्तौ जनिं व्रजे॥ ५८ ॥ सुवीरनामगोपस्य सुते परमशोभने। ययोर्हस्ते प्रदृश्येते शारिके सुखराविणी ॥ ५९ ॥ जटिलो जङ्घपूतश्च घृताशी कर्व्वुरेव च। चत्वारो मुनयो धन्या इहामुत्र च निःस्पृहाः॥ ६० ॥ केवलेनैकभावेन प्रपन्ना वल्लवीपतिम्। तेपुस्ते सलिले मग्ना जपन्तो मनुमुत्तमम् ॥ ६१ ॥ रमात्रयेण पुटितं स्मराद्यन्तदशाक्षरम्। दध्युश्च गाढ़भावेन वल्लवीभिर्वने वने ॥ ६२ ॥ भ्रमन्तं नृत्यगीताद्यैर्मानयन्तं मनोहरम्। चन्दनालिप्तसर्व्वाङ्गं

५६॥ उन्होंने गोकुलमें स्थित दश वर्षके बाल-गोपालका इस भांति ध्यान धरा, कि तरुणाईसे शोभित कामदेवसा रूप है॥ ५७॥ व्रजकी विम्बफलसे ओष्ठोंवालीं गोपियां उन्हें एकटक देख रही हैं। इस ध्यानमें एक कल्पके पश्चात् उन्होंने शरीर छोड़ दिया। फिर उन दोनोंने व्रजमें जन्म लिया॥ ५८॥ वे दोनों सुवीर नामे गोपकी परम सुन्दर कन्या हुए। उनके हाथमें सुन्दर बोलनेवालीं दो मैना दिखाई देती हैं॥ ५९॥ इस लोकमें कामनाहीन चार मुनि धन्य थे; उनके नाम जटिल जङ्घपूत, घृताशी और कर्वुर थे॥ ६०॥ केवल एक भावसे उन्होंने काम-पीड़ित गोपियोंके पति श्रीकृष्णका भजन किया और मनुमन्त्र जपते हुए जलमें खड़े होके परम तप तपा॥ ६१॥ वह दश अक्षरोंका मन्त्र तीन "रमा"से पुटित और "स्मर" बीजसे आरम्भ होनेवाला था। गाढ़े भावसे उन मुनियोंने वन वनमें गोपियोंके साथ घूमते हुए, गीत आदिसे मान किये गये, चन्दनसे सर्वाङ्ग लिप्त किये,

जपापुष्पावतंसकम् ॥ ६३ ॥ कह्लारमालयावीतं नीलपीतपटा-
वृतम्। कल्पत्रयान्ते जातास्ते गोकुले शुभलक्षणाः ॥६४॥ इमास्ताः
पुरतो यस्या उपविष्टा नतभ्रुवः। यासां सम्भ्रमिताम्येव वलयानि
प्रकोष्ठके ॥ ६५ ॥ विचित्राणि च रत्नाद्यैर्दिव्यमुक्ताफलादिभिः।
मुनिर्दीर्घतपा नाम व्यासोऽभूत् पूर्व्वकल्पके ॥ ६६ ॥ तत्पुत्रः शुक
इत्येव मुनिः ख्यातो वरः सुधीः। सोऽपि बालो महाप्राज्ञः सदैवानु-
स्मरन् पदम् ॥ ६७ ॥ विहाय पितृमात्रादि कृष्णं ध्यात्वा वनं गतः।
स तत्र मानसैर्दिव्यैरुपचारैरहर्निशम् ॥ ६८ ॥ अनाहारोऽर्चयद्विष्णुं
गोपरूपिणमीश्वरम्। रमया पुटितं मन्त्रं जपन्नष्टादशाक्षरम् ॥२९॥

गुड़हुलके फूल जैसी कान्तिवाले, कल्हारकी मालाओंसे वेष्टित, नील
और पीत वस्त्र धारण करनेवाले मनोहर श्रीकृष्णका ध्यान किया।
तीन कल्पोंके होने पर वे भी गोकुलमें शुभलक्षण कन्यायें हुए ॥
६३—६४ ॥ ये सामने भवें झुकाये हुए वे ही बैठे हैं। वे भांति
भांतिके कङ्कणोंसे शोभित हैं ॥ ६५ ॥ इन मुनियोंने दिव्य मोती तथा
अन्यान्य रत्नोंसे बड़ी विचित्र शोभा पाई है। पूर्व कल्पमें व्यास नाम
बड़े तपस्वी मुनि थे ॥ ६६ ॥ उनके सुन्दर बुद्धिमान श्रेष्ठ पुत्र शुक
नामसे विख्यात थे। यह शुकदेव बालक महाबुद्धिमान् थे और सर्वदा
श्रीकृष्णके चरण-कमलोंका ध्यान धरते थे ॥ ६७ ॥ शुकदेव पिता
माताको छोड़के कृष्णके श्रीचरणोंका ध्यान धरते हुए वनको चले
गये। वनमें उन्होंने रात दिन दिव्य मनके उपचारोंसे अनाहार
होके गोपरूपी परमेश्वर विष्णुकी पूजा की। उन्होंने "रमा" वीजसे
पुटित अठारह अक्षरवाला मन्त्र जपा ॥ ६८। ६९ ॥ परम भावसे

दध्यौ परमभाविश्च हरिं हैमतरोरधः। हैममण्डपिकायाञ्च हेम-
सिंहासनोपरि ॥ ७० ॥ आसीनं हेमहस्ताग्रैर्दधानं हेमवंशि-
काम्। दक्षिणेन भ्रामयन्तं पाणिना हेमपङ्कजम् ॥ ७१ ॥ हेम-
वर्णेष्टप्रियया परिक्लृप्ताङ्गचित्रकम्। हसन्तमतिहर्षेण पश्यन्तं
निजसाश्रमम् ॥ ७२ ॥ हर्षाश्रुपूर्णः पुलकाचिताङ्गः प्रसीद नाथेति
वदन्नथोच्चैः। दण्डप्रणामाय पपात भूमौ संवेपमानस्त्रिजगद्विधातुः ॥
७३ ॥ तं भक्तिकामं पतितं धरण्यामायासितोऽस्मीति वदन्तमुच्चैः ॥
दण्डप्रणामस्य भुजौ गृहीत्वा पस्पर्श हर्षोपचितेक्षणेन ॥७४॥ उवाच

उन्होंने यह हरिका ध्यान धरा, कि सोनेके वृक्षके नीचे, सोनेके मण्डपमें,
सोनेके सिंहासन पर ॥ ७० ॥ श्रीकृष्ण बैठे हुए अपने स्वर्णरूपी उज्ज्वल
हाथोंसे सोनेकी वंशी धारण करे हैं। दाहिने हाथसे सोनेका कमल
घुमा रहे हैं॥ ७१ ॥ स्वर्णकी सी कान्तिवाली इष्ट प्रियाजीको
आलिङ्गन करते हुए, ध्यानमय कृष्णका अङ्ग चित्रित हो गया है।
शुकदेव अति हर्षसे हंसते हुए, ऐसी ध्यानमयी तपस्यामें मग्न कभी
अपने आश्रमको देखने लगते थे ॥ ७२ ॥ कभी प्रेमके आंसुओंसे शुक
मुनिका पूर्ण अङ्ग पुलकायमान होता था। कभी शुकदेव जी उच्चैः-
स्वरसे कहते थे, "हे नाथ! अब प्रसन्न हो।" कभी कांपते कांपते
तीनों लोकके स्रष्टाके अगाड़ी दण्डवत् गिरके प्रणाम करते थे ॥ ७३ ॥
ध्यान हीमें भक्तिकी कामना करनेवाले, "हे नाथ! मैं थक गया हूं।"
ऐसा उच्चैःस्वरसे कहनेवाले, धर्त्तीमें लकुटकी नाईं गिरके प्रणाम
करनेवाले, शुकदेवको श्रीकृष्ण हर्षदृष्टिसे देखके भुजाओंमें आलिङ्गन

च प्रियारूपं लब्धवन्तं शुकं हरिः। त्वं मे प्रियतमा भद्रे सदा तिष्ठ ममान्तिके ॥ ७५ ॥ मद्रूपं चिन्तयन्ती च प्रेमास्पदमुपागता। द्वे च मुख्यतमे गोप्यौ समानवयसौ शुभे ॥ ७६ ॥ एकव्रते एकनिष्ठे एकनक्षत्रनामनी। तप्तजाम्बूनदप्रख्या तत्रैवान्या तड़ित्प्रभा ॥ ७७ ॥ एका निद्रायमाणाक्षी परा सौम्यायतेक्षणा। सोऽर्चयत् परया भक्त्या ते हरेः सव्यदक्षिणे ॥ ७८ ॥ स कल्पान्ते तनुं त्यक्त्वा गोकुलेऽभून्महात्मनः। उपनन्दस्य दुहिता नीलोत्पलदलच्छविः ॥ ७९ ॥ सेयं श्रीकृष्णवनिता पीतशाटीपरिच्छदा। रक्तचोलिकया पूर्णा

कर देते थे ॥ ७४ ॥ ध्यानमें भृङ्गीग्रस्त कीटकी नाईं शुकदेवका रूप प्रिया गोपीका साही हुआ। तब कृष्णने शुकसे कहा, "हे भद्रे! तुम हमारी प्रियतमा हो! तुम सदा हमारे निकट ही रहो ॥ ७५ ॥ मेरे रूपकी चिन्ता करनेवालीं, प्रेमियोंकी पदवीको धारण करनेवालीं, समान अवस्थावालीं, सुन्दर दो गोपियां मुख्य हैं ॥ ७६ ॥ उन दोनोंका एक ही व्रत है, एक ही निष्ठा है, एक ही नक्षत्रके अनुसार नाम है। एक तप्तजाम्बूनदा है, दूसरी तड़ित्प्रभा कहलाती है ॥ ७७ ॥ एक निद्राके वश झपकीली आंखोंवाली, दूसरी शीलयुक्त बड़ी आंखोंवाली है ॥" शुकदेवने ध्यान हीमें कहा, "वे दोनों गोपियां, से कृष्ण! तुम्हारे दाहिने और बांए पार्श्वमें बैठती हैं" ॥ ७८ ॥ शुकदेवने तपस्या करके एक कल्पके होने पर देह छोड़ी और गोकुलमें महात्मा उपनन्दकी बेटी होके जन्म लिया। उसकी छवि नीलकमलकी भांति सुन्दर थी ॥ ७९ ॥ यह जो पीली साड़ी ओढ़े है, सो वही शुक मुनि है, वही कृष्णकी वनिता है। इसके छोटे घटकी

मातङ्गकुम्भघटस्तनी ॥ ८० ॥ दधाना रक्तसिन्दूरं सर्व्वाङ्गस्यावगुण्ठनम् । स्वर्णकुण्डलविभ्राजद्गण्डदेशा सुशोभना ॥ ८१ ॥ स्वर्णपङ्कजमालाढ्या कुङ्कुमालिप्तसुस्तनी । यस्या हस्ते चर्व्वणीयं दृश्यते हरिणार्पितम् ॥ ८२ ॥ वेणुवाद्यातिनिपुणा केशवस्यातितोषिणी । कृष्णेन परितुष्टेन कदाचिद्गीतकर्म्मणि ॥ ८३ ॥ विन्यस्ता कम्बुकण्ठेऽस्या भाति गुञ्जावलिः शुभा । परोक्षेऽपि च कृष्णस्य कान्तिभिश्च स्मराहिता ॥८४॥ सखीभिर्वादयन्तीभिर्गायन्ती सुस्वरं परम् । नर्त्तयेत् प्रियवेशेन वेशयित्वा वधूमिमाम् ॥८५॥ वारं वारञ्च गोविन्दं भावेनालिङ्ग्य चुम्बति । प्रियासौ सर्व्वगोपीनां

न्याईं सुन्दर स्तन लाल चोलीसे ढके हैं ॥ ८० ॥ वह लाल सिन्दूरसे मांग भरे हैं और सब मुंहको घूंघटसे छिपाये है। वह सुन्दरी सोनेके कुण्डलोंसे अपने कपोलोंकी शोभा दिखा रही है ॥ ८१ ॥ वह सुन्दरी कमलकी मालासे युक्त है। उस सुन्दर कुचोंवालीकी संपूर्ण देह केशरसे लिप्त है कृष्णने उसके हाथमें उगाल दिया है ॥ ८२ ॥ वह वंशीके बजानेमें अति निपुण केशवकी सेवा करनेवाली है ॥ इसके गानेसे प्रसन्न होके एकबार श्रीकृष्णने इसके सुन्दर शङ्खके सदृश कण्ठमें गुञ्जाओंकी सुन्दर माला पहनाई थी। उस मालासे वह सदा शोभित है। कृष्णके विहारमें यह उनकी शोभाके ध्यानमें कामातुर हो जाती है ॥ ८३।८४ ॥ सुन्दर वेष धारण करके, सुन्दर गीतवाली और बजानेवाली इस गोपवधूटीका शृङ्गार करके कृष्ण इसके साथ नृत्य करते हैं ॥ ८५ ॥ यह गोपी बारम्बार भावमें मग्न होके कृष्णका आलिङ्गन और चुम्बन करती है। वह सब गोपियोंकी प्रिया और

कृष्णस्याप्यतिवल्लभा ॥८६॥ श्वेतकेतोः सुतः कश्चिद्वेदवेदाङ्गपारगः। सर्व्वमेव परित्यज्य प्रचण्डं तप आस्थितः ॥ ८७ ॥ मुरारेः सेवितपदां सुधामधुरनादिनीम्। गोविन्दस्य प्रियां भक्तिं ब्रह्मरुद्रादिदुर्गमाम् ॥ ८८ ॥ भजन्तीमेकभावेन स्मितमेव मनोहराम्। ध्यायन् जजाप सततं मन्त्रमेकादशाक्षरम् ॥ ८९ ॥ हसितं सकलं कृत्वा वतमायेषु योजयन्। कान्त्यादिभिर्हसन्तीभिर्वीजयन्त्यभितो जगत् ॥ ९०॥ वसन्तेऽवसतित्येवं मन्त्रार्थं चिन्तयन् सदा। सोऽपि कल्पद्वयेनैव सिद्धोऽत्र जनिमाप्तवान् ॥ ९१ ॥ सेयं बालायते पुत्री कृशाङ्गी कुड्मलस्तनी। मुक्तावलिलसत्कण्ठी शुक्लकौषेयवासिनी ॥ ९२ ॥ मुक्ताच्छुरितमञ्जीरकङ्कणाङ्गदमुद्रिका। बिभ्रती कुण्डले दिव्ये अस्मत-

---

कृष्णकी अति वल्लभा है ॥ ८६ ॥ श्वेतकेतुका कोई पुत्र वेदवेदाङ्गका पारङ्गत था। वह सबको छोड़के प्रचण्ड तपमें स्थित हुआ ॥ ८७ ॥ श्रीकृष्णके चरणोंकी सेवा करनेवाली, अमृतकी न्याईं मीठा वचन कहनेवाली, गोविन्दकी प्यारी, ब्रह्मा और रुद्र आदिकी बुद्धिसे अतीत, मनोहर भक्तिका उसने एक भावसे भजन किया। ध्यान करते करते वह सदा एकादशाक्षर मन्त्र जपता रहा ॥ ८८।८९ ॥ उसने मन्त्रको "हसितकला"से युक्त करके "वतमाय"में जोड़ा और हंसती हुई कान्तिसे संपूर्ण जगत्को प्रकाशित किया ॥ ९० ॥ मन्त्रके अर्थको सदा चिन्ता करते हुए उसने ध्यानमयी प्रतिमाको वसन्त ऋतुमें विचरते हुए देखा। वह भी दो कल्पमें सिद्ध होके यहां जन्मा है ॥ ९१ ॥ यह बाला वही है, इसकी देह सूक्ष्म है, स्तन कलीकी न्याईं है, कण्ठमें मोतियोंकी माला है, पीताम्बर धारण करे हुए है ॥ ९२ ॥ यह

स्त्राविणी शुभे ॥ ९३ ॥ वृत्तकस्तूरिकावेणीमध्य सिन्दूरबिन्दुवत् । दधाना तिलकं भाले सार्द्धं चन्दनचित्रकैः ॥ ९४ ॥ या सेव दृश्यते शान्ता जपन्ती परमं पदम् । आसीच्चन्द्रप्रभो नाम राजर्षिः प्रियदर्शनः ॥ ९५ ॥ तस्य कृष्णप्रसादेन पुत्रोऽभून्मधुराकृतिः । चित्रध्वज इति ख्यातः कौमारावधिवैष्णवः ॥ ९६ ॥ स राजा सुसुतं सौम्यं सुस्थिरं द्वादशाब्दिकम् । आदेशयद्द्विजान्मन्त्रं परमष्टादशाक्षरम् ॥ ९७ ॥ अभिषिच्यमानः सुशिशुर्मन्त्रामृतमयैर्जलैः । तत्क्षणे भूपतिं प्रेम्णा ननामाश्रु प्रकम्पितः ॥ ९८ ॥ तस्मिन् दिने स वै बालः शुचिवस्त्रधरः शुचिः । हारनूपुरसूत्राद्यैग्रैवेयाङ्गदकङ्कणैः ॥ ९९ ॥

मोतियों हीके नूपुर, कङ्कण, भुजबन्ध और अंगूठी पहनती है। अमृतके टपकानेवाले, सुन्दर दो दिव्य कुण्डल धारण करती है ॥ ९३ ॥ इसकी लपटी हुई वेणी कस्तूरीसे सुगन्धित है। चन्दनके चित्रोंके साथ मस्तकमें सिन्दूरका बिन्दु चमक रहा है ॥ ९४ ॥ और वह जो शान्तरूपिणी, परम पदका जप करती हुई दिखाई देती है; उसका वर्णन सुनो। चन्द्रप्रभ नामे एक प्रिय राजर्षि थे ॥ ९५ ॥ कृष्णके प्रसादसे उनके सुन्दर वेषवाला एक पुत्र हुआ। उसका नाम चित्रध्वज था। वह लड़क पन हीसे वैष्णव हुआ ॥ ९६ ॥ राजाने अपने सौम्य, शीलवान्, दृढ़चित्त, बारह वर्षके सुन्दर लड़केको ब्राह्मणोंसे परम अष्टादशाक्षर मन्त्रका उपदेश दिलवाया ॥ ९७ ॥ मंत्ररूपी अमृत जलसे सींचा जाके उस लड़केका शरीर भक्तिप्रेम-पुलकित और आंखें अश्रुपूर्ण हुईं। उसने राजाको नमस्कार किया ॥ ९८ ॥ उसी दिन वह बालक सुन्दर वस्त्रसे शोभित और हार, नूपुर, सूत, कण्ठी, भुज-

विभूषितो हरेर्भक्तिमुपस्थश्यामलाश्रयः। विष्णोरायतनं गत्वा
स्थितैकाकी व्यचिन्तयत् ॥ १०० ॥ कथं भजामि तं भक्तं मोहनं
गोपयोषिताम्। विक्रीड़न्तं सदा ताभिः कालिन्दीपुलिने वने ॥१०१
इत्थं मत्वाकुलमतिश्चिन्तयन्नेव बालकः। अथाप परमां विद्यां स्वप्नञ्च
समपश्यत ॥ १०२ ॥ आसीत् कृष्णप्रतिकृतिः पुरतस्तस्य शोभना।
शिलामयी स्वर्णपीठे सर्व्वलक्षणलक्षिता ॥ १०३ ॥ साभूदिन्दी-
वरश्यामा स्निग्धलावण्यशालिनी ॥ त्रिभङ्गललिताकार-शिखण्डि-
पिच्छभूषणा ॥ १०४ ॥ कूजयन्ती मुदा वेणुं काञ्चनीमधरेऽर्पिताम्।
दक्षसव्यगताभ्याञ्च सुन्दरीभ्यां निषेविता ॥ १०५ ॥ वर्द्धयन्ती
तयोःकामं चुम्बनाश्लेषणादिभिः। दृष्ट्वा चित्रध्वजः कृष्णं तादृग्वेष-

---

वस्त्र, वाङ्गद आदिसे सुशोभित हुआ। उस शुद्ध हृदयवालेने हरिकी
भक्ति पाई। वह कृष्णके मन्दिरमें जाके एकान्तमें सोचने लगा ॥
९९। १०० ॥ मैं उस गोपी-मोहन, कालिन्दीके तटस्थ वनमें गोपि-
योंके साथ क्रीड़ा करनेवाले, भक्त-वत्सलका कैसे भजन करूं ॥ १०१ ॥
वह बालक व्याकुलमति होके इसी भांति सोचने लगा। उसने
स्वप्नमें परमविद्याको देखा ॥ १०२ ॥ उस मन्दिरके आगे परम सुन्दर
कृष्णकी मूर्त्ति थी। वह सोनेकी पीढ़ीपर सब लक्षणोंसे युक्त शिलामयी
थी। उसका रङ्ग नीलकमलकी भांति श्याम था, वह चिकनी और
सौन्दर्यमण्डित थी। उसका आकार त्रिभङ्ग होनेसे ललित था। मोरपच्छ
ही उसके भूषण थे ॥ १०३।१०४ ॥ अधरपर धरी हुई सोनेकी वंशीको
वह हर्षसे बजाती थी। उसकी दाहिनी और बांई ओर व्रजकी
सुन्दरियां सेवामें तत्पर थीं ॥ १०५ ॥ कृष्णके साथ चुम्बन, आलि-

विलासिनम् ॥ १०६ ॥ अवनम्य शिरस्तस्मै पुरो लज्जितमानसः । अथोवाच हरिर्दक्षपार्श्वगां प्रेयसीं हसन् ॥ १०७ ॥ सलज्जं परम-श्चैनं स्वशरीरासनागतम् । निर्माय्यात्मसमं दिव्यं युवतीरूपमद्भुतम् ॥ १०८ ॥ चिन्तय स्वशरीरेण ह्यभेदं मृगलोचने । अथो त्वदङ्ग-तेजोभिः स्पृष्टस्त्वद्रूपमाप्स्यति ॥ १०९ ॥ ततः सा पद्मपत्राक्षी गत्वा चित्रध्वजान्तिकम् । निजाङ्कैस्तदङ्गानामभेदं ध्यायती स्थिता ॥ ११० ॥ अथास्यास्त्वङ्गतेजांसि तदङ्गं पर्यपूरयन् । स्तनयो-र्ज्योतिषा जातौ पीनौ चारुपयोधरौ ॥ १११ ॥ नितम्बज्योतिषा जातं श्रोणीबिम्बं मनोहरम्। कुन्तलज्योतिषा केशपाशोऽभूत् कारयोः

ङ्गनादिने वह कामको बढ़ा रही थीं। चित्रध्वजने उस प्रकार वेषसे मण्डित कृष्णको देखा ॥ १०६ ॥ बालकने प्रेमवश मनमें लज्जा करके उसको सिर नवाया। कृष्णने हंसके दाहिनी ओरवाली प्रियासे कहा ॥ १०७ ॥ हे मृगलोचने ! अपने शरीरकी स्थितिसे च्युत, इस सलज्ज बालकको अपनी ही भांति दिव्य, सुन्दर तथा अद्भुत युवतीवेष बनाओ। हे सुन्दरि ! अपने शरीर और इसके शरीरमें अभेद जानो। तुम्हारे अङ्गकी ज्योतिसे यह भी तुम्हारे रूपको धारण करेगा" ॥ १०८ । १०९ ॥ कृष्ण वचनको सुनके, वह कमल-पत्रोंकी नाईं आंखोंवाली चित्रध्वजके पास गई और अपने और उसके शरीरमें अभेदका ध्यान करती हुई बैठ गई ॥ ११० ॥ उसके अङ्गोंकी ज्योतिसे चित्रध्वजका अङ्ग परिपूर्ण होने लगा। स्तनोंकी कान्तिसे उसके सुन्दर पुष्ट दो पयोधर हुए ॥ १११ ॥ नितम्बके तेजसे उसके भी मनोहर नितम्बबिम्ब हुआ। केशोंके

करौ ॥ ११२ ॥ सर्व्वैरेवं सुसम्पन्नं भूषावासःस्रगादिकम्। कलासु कुशला जाता सौरसेणान्तरात्मनि ॥ ११३ ॥ दीपाद्दीपमिवालोक्य सुभगां भुवि कन्यकाम्। चित्रध्वजां त्रपासङ्गिस्मितशोभां मनोहराम् ॥ ११४ ॥ प्रेम्णा गृहीत्वा करयोः सा तालपद्मरञ्जुला। गोविन्दवामपार्श्वस्थां प्रेयसीं परिरभ्य च ॥ ११६ ॥ उवाच तवदासीयं नाम चास्याश्च कारय। सेवाञ्चास्यै वद प्रीत्या यथाभिरुचितां प्रियाम् ॥ ११५ ॥ अथ चित्रकलेत्येतन्नाम चाकरतेन सा। चकार चाह सेवार्थं धृत्वा चापि विपञ्चिकाम् ॥ ११७ ॥ सदा त्वं निकटे तिष्ठ गायस्व विविधैः स्वरैः। गुणांस्त्वं प्राणनाथस्य तवायं विहितो विधिः ॥ ११८ ॥ अथ चित्रकला ताभ्यां गृहीतानस्य माधवम्।

तेजसे सुन्दर केशोंका जाल, हाथोंसे हाथ हुए ॥ ११२ ॥ इसी भाँति वह भूषण, वस्त्र, माला आदि सबसे सुसंपन्न हुआ। अन्तःकरणकी भक्तिकी सुगन्धिसे वह कलाओंमें निपुण हुआ ॥ ११३ ॥ जैसे एक दीपकसे दूसरा दीपक उत्पन्न होता है, उसी प्रकार वह चित्रध्वज लज्जाके भावसे सुन्दर मुसकरानेवाली, मनोहर, इसी लोकमें कृष्णकी प्यारी, शुभलक्षणी कन्या हुई देखके ॥ ११४ ॥ वह परमप्रिया हर्षसे उसके दोनों हाथ पकड़के और कृष्णकी बांई ओरवाली सखीको भी कटिप्रदेशसे धारण करके बोली, "यह तुम्हारी दासी है। इसका नाम धरो और जैसा आप प्रियाजूको रुचे, वैसी सेवा भी बताओ ॥ ११५। ११६ ॥ प्रियाजूने अपने बुद्धिबलसे उसका नाम चित्रकला रखा। और सेवाके लिये वीणा उठाके यह कहा ॥ ११७ ॥ सदा तुम निकट रहके विविध स्वरसे प्राणनाथके गुण गान

तत्रैतस्याश्च चरणौ गृहीत्वा पादयो रजः ॥ ११९ ॥ जगौ सुमधुरं गीतं तयोरानन्दकारणम् । अथ प्रीत्योपगूढ़ा सा कृष्णेनानन्द-मूर्त्तिना ॥ १२० ॥ यावत् सुखाम्बुधौ पूर्णा तावदेवाप्यबुध्यत । चित्र-ध्वजो महाप्रेमविह्वलः स्मरतत्परः ॥ १२१ ॥ तमेव परमानन्दं मुक्त-कण्ठो रुरोद ह । तदारभ्य रुदन्नेव मुक्ताहारविहारकम् ॥ १२२ ॥ भाषाषितोऽपि पित्राद्यैर्नैवावोचद्वचः क्वचित् । मासमात्रं गृहे स्थित्वा निशीथे कृष्णसंश्रयः ॥ १२३ ॥ निर्गत्यारण्यमचरत् तपो वै मुनिदुष्करम् । कल्पान्ते देहमुत्सृज्य तपसैव महामुनिः ॥ १२४ ॥ वीरगुप्ताभिधानस्य गोपस्य दुहिता शुभा । जाता चित्रकलेत्येव

करो। यही तुम्हारी सेवा नियत है ॥ ११८ ॥ चित्रकलाने उस आज्ञाको ग्रहण करके माधवको सिर झुकाया और प्रियाजीके चरण पकड़के उनकी भी चरण रज ली ॥ ११९ ॥ उसने राधाकृष्णको आनन्द देनेवाला मधुर गीत गाया ॥ आनन्दमूर्त्ति कृष्णने उसे प्रेमसे गम्भीर जानके पकड़ा ॥ १२० ॥ चित्रध्वज ज्योंही सुख-समुद्रमें मग्न होते थे, त्योंही जाग पड़े । चित्रध्वज महाप्रेममें विह्वल और भक्तिमें तत्पर हुए ॥ १२१ ॥ उस परमानन्दका स्मरण करके वह कण्ठ खोल कर रोने लगे। तबसे अनवरत प्रेम-विह्वल होके रोते ही रहे और आहार, विहार भी छोड़ दिया ॥ १२२ ॥ उसके पिता आदिने भी बहुत समझाया, पर चित्रध्वजने कुछ उत्तर न दिया। इसी भांति महीने भर घरमें रहके, एक दिन आधीरातको कृष्णमें ध्यान लगाये बनको निकल गया और वहां मुनिदुर्लभ तप किया। वह महामुनि तपके ही बलसे वीरगुप्त (पाठान्तरमें चिरगुप्त) ग्वालके घर सुन्दर

यस्याः स्कन्धे मनोहरा ॥ १२५ ॥ विपञ्ची दृश्यते नित्यं सप्तस्वर-
विभूषिता। उपतिष्ठति वै वामे रत्नश्रृङ्गारसम्भृतम् ॥ १२६ ॥
दधाना दक्षिणे हस्ते सा वै रत्नपतद्ग्रहम्। अयमासीत् पुरा सर्व्व-
तापसैरभिवन्दितः ॥ १२७ ॥ मुनिः पुण्यश्रवा नाम काश्यपः सर्व्व-
धर्म्मवित्। पिता तस्यासवच्छैवः शतरुद्रीयमन्वहम् ॥ १२८ ॥
परस्तुवन् देवदेवेशं विश्वेशं भक्तवत्सलम्। प्रसन्नो भगवांस्तस्य
पार्व्वत्या सह शङ्करः ॥ १२९ ॥ चतुर्द्दश्यामर्द्धरात्रे प्रत्यक्षः प्रददौ
वरम्। त्वत्पुत्रो भविता कृष्णे भक्तिमान् बाल एव हि ॥ १३० ॥ उप-
नीयाष्टमे वर्षे तस्मै सिद्धमनुस्त्वयम्। उपदिश्यैकविंशत्या यो मया ते
निगद्यते ॥ १३१ ॥ गोपालविद्यानामायं मन्त्रो वाक्सिद्धिदायकः।

कन्या हुआ। उनका नाम चित्रकला पड़ा। उनके कंधेपर मनोहर सर्वदा सातों स्वरोंसे शोभित वीणा दिखाई देती है। वह बांई ओर रत्नजटित सिंहासनपर बैठती है ॥ १२३—१२६ ॥ और यह जो दाहिने हाथमें रत्नादि लिये हुए है, वह पहले सब तपस्वियोंका पूजनीय मुनि था ॥ १२७ ॥ यह काश्यपका पुत्र पुण्यश्रवा मुनि सर्व धर्मोंका जाननेवाला था। उसका पिता शतरुद्रीयका पाठ करनेवाला महाशैव था ॥ १२८ ॥ उसने भक्तवत्सल, देवदेव, महादेवकी स्तुति की। उसपर पार्वतीके सहित भगवान् शङ्कर प्रसन्न हुए ॥ १२९ ॥ उन्होंने चतुर्दशीकी आधीरातको प्रत्यक्ष होके उसे यह वर दिया। तुम्हारा पुत्र लड़कपन हीमें कृष्णका भक्त होगा ॥ १३० ॥ अष्टम वर्षमें उपनयन करके तुम उसे इक्कीस बार सिद्ध मनुमंत्र देना। वह मैं तुमसे कहता हूं ॥ १३१ ॥ यह गोपालविद्या

एतत्साधकजिह्वाग्रे लीलाचरितमद्भुतम् ॥ १३२ ॥ अनन्तमूर्त्ति-
रायाति स्वयमेव वरप्रदः । काममायारमाकण्ठसेन्द्रा दामोदरो-
ज्ज्वलाः ॥ १३३ ॥ मध्ये दशाक्षरीं प्रोच्य पुनस्ता एव निर्द्दिशेत् ।
दशाक्षरीत्वृष्यादिध्यानञ्चास्य ब्रवीम्यहम् ॥ १३४ ॥ पूर्णामृत-
निधेर्मध्ये दीपं ज्योतिर्मयं स्मरेत् । कालिन्द्या वेष्टितं तत्र ध्यायेद्वृ-
न्दावने वने ॥ १३५ ॥ सर्व्वर्त्तुकुसुमस्रावि द्रुमवल्लीभिरावृतम् ।
नटन्मत्तशिखिस्वानं गायत्कोकिलषट्पदम् ॥ १३६ ॥ तस्य मध्ये
वसत्येकः पारिजाततरुर्महान् । शाखोपशाखाविस्तारैः शत-
योजनमुच्छ्रितः ॥ १३७ ॥ तले तस्याथ विमले परितो धेनुमण्डलम् ।

नामवाला मंत्र वाक्सिद्धि देनेवाला है । इसके साधककी जिह्वाके
आगे सब अद्भुत चरित्र हैं ॥ १३२ ॥ इससे अनन्त मूर्त्ति आती है;
साधक स्वयं वर देनेवाला होता है । वह मंत्र "काममायारमा-
कण्ठसेन्द्रादामोदरोज्ज्वलाः" है ॥ १३३ ॥ इसके मध्यमें दशाक्षर कहै,
और फिर इसीका आदेश करे । दशाक्षरी तो ऋषियोंने कही है,
मैं इसका ध्यान कहता हूं ॥ १३४ ॥ अमृतका समुद्र भरा हुआ है ।
उसकी बीचमें देदीप्यमान दीपका ध्यान करे । वहां यमुनासे वेष्ठित
श्रीवृन्दावनका ध्यान करे ॥ १३५ ॥ उस वृन्दावनमें सब ऋतुओंके
फूल टपकानेवाले, पेड़ और वेलोंसे घिरा हुआ, नाचते हुए मत्त
मोरोंकी केकाध्वनि और कोकिल-भ्रमरादिक की झंकारसे पूरित ॥१३६॥
वनके बीचमें बड़ा भारी पारिजात देववृक्ष है । वह डाल और
टहनियोंके विस्तारसे सौ योजन उठा है ॥ १३७ ॥ उसके नीचे विमल
भूमिमें गायोंका मण्डल है । उनके भीतर वेणु और शृङ्ग धरनेवाले

तदन्तर्मण्डलं गोपबालानां वेणुशृङ्गिणाम् ॥ १३८ ॥ तदन्तरे तु रुचिरं मण्डलं व्रजसुभ्रुवाम्। नानोपायनपाणीनां मदविह्वलचेतसाम् ॥ १३९ ॥ कृताञ्जलिपुटानाञ्च मण्डलं शुक्लवाससाम्। शुक्लाभरणभूषाणां प्रेमविह्वलितात्मनाम् ॥ १४० ॥ चिन्तयेच्छ्रुतिकन्यानां ब्रुवतीनां वचः प्रियम्। रत्नवेद्यां ततो ध्यायेद् दुकूलावरणं हरिम् ॥१४१॥ अतो शयानं राधायाः कदलीकाण्डकोपरि। तद्वक्त्रं चन्द्रसुस्मेर वीक्षमाणं मनोहरम् ॥ १४२ ॥ किञ्चित्कुञ्चितवामाङ्घ्रिं वेणुयुक्तेन पाणिना। वामेनालिङ्ग्य दयितां दक्षेण चिबुकं स्पृशन् ॥१४३॥ महामारकताभासं मौक्तिकच्छायमेव च। पुण्डरीकविशालाक्षं पीतनिर्म्मलवाससम् ॥ १४४ ॥ बर्हभारलसच्छीर्ष

ग्वालवालोंका मण्डल है ॥ १३८ ॥ उसके भीतर व्रजकी सुन्दर भ्रूलतावाली गोपियोंका मण्डल है। उन गोपियोंके हाथमें नाना भांतिके वस्त्र हैं, उनके चित्त प्रेममदसे छके हुए हैं। १३९। उनके बीच श्वेत वस्त्रवाली, श्वेत आभूषणोंसे भूषित; प्रेमसे विकल हृदयवाली, हाथ जोड़े हुए श्रुतिकन्याओंके मण्डलका ध्यान धरे। वे श्रुतिकन्यायें सुन्दर वचन उच्चारती हैं। फिर उन सब मण्डलोंसे वेष्टित रत्नवेदीमें वस्त्रोंसे आच्छादित हरिका ध्यान धरे। १४०। वह श्रीकृष्ण राधाके कदली-दण्डकी नाईं जङ्घाओंके ऊपर बैठे हुए हैं। और ऊपर राधा जीके चन्द्रवत् मुसकाते हुए मनोहर मुखको देख रहे हैं ॥ १४२ ॥ बायां पैर कुछ कुछ समेटे हुए हैं, और हाथमें वंशी लिये हुए हैं। उसी बांये हाथसे राधाका कटिदेश वेष्टित करे आलिङ्गन किये हुए हैं, और दाहिने हाथसे प्रियाजीकी

मुक्ताहारमनोहरम् । गण्डप्रान्तलसच्चारुमकराकृतिकुण्डलम् ॥ १४५ ॥ आपादतुलसीमालं कङ्कणाङ्गदभूषणम् । नूपुरैर्मुद्रिकाभिश्च काञ्च्या च परिमण्डितम् ॥१४६॥ सुकुमारतरं ध्यायेत् किशोरवयसान्वितम् । पूजा ह्याश्चरीतैव विदलक्षं पुरस्क्रिया ॥ १४७ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो देवी च गिरिजा सती । मुनिराराध्य पुत्राय तथैवोपदिदेश ह ॥१४८॥ पुण्यश्रवास्तु तन्मन्त्रग्रहणादेव केशवम् । वर्णयामास विविधैर्जित्वा सर्व्वान् मुनीन् स्वयम् ॥१४९॥ रूपलावण्यवैदग्ध्यसौन्दर्य्याश्चर्य्यलक्षणम् । तदा हृष्टमना बालो निर्गत्य स्वगृहात् ततः ॥ १५० ॥ वायुभक्षस्तपस्तेपे कल्पानामयुतत्रयम् । तदन्ते

ओढ़ी हुए हैं ॥ १४३ । १४४ ॥ उस ध्यानमय कृष्णके कपोल देशपर सुन्दर मकराकृत कुण्डल झलझला रहे हैं ॥ १४५ ॥ पैरोंतक तुलसीकी माला धारण किये हैं, कङ्कण और भुजबन्धसे भूषित हैं तथा, नूपुर, अङ्गूठी तथा करधनीसे मण्डित हैं ॥ १४६ ॥ इस भांति किशोर वयससे युक्त सुकुमार कृष्णका ध्यान धरे। पूजाके लिये तो दृश्याचर कहा ही गया इसका पुण्य लाख वेदके समान है । १४७ ॥ इतना कहके महादेव और देवी सती पार्व्वती दोनों अन्तर्धान हो गये । मुनिने आके पुण्यश्रवाको वैसा ही उपदेश दिया ॥ १४८ ॥ पुण्यश्रवा भी उस मन्त्रको ग्रहण करते ही केशवको विविध प्रकारसे वर्णना करने लगे और उन्होंने आप ही सब मुनियोंको जीत लिया ॥ १४९ ॥ रूप, लावण्य, बुद्धि, सौन्दर्य्य आदि अद्भुत लक्षणोंसे युक्त होके प्रसन्नचित्त बालक पुण्यश्रवा तब अपने घरसे निकल गये ॥ १५० ॥ और तीन अयुत कल्पतक उन्होंने केवल वायुका ही भक्षण करके तपस्या की। तत्पश्चात्

गोकुले जाता नन्दभ्रातुर्गृहे स्वयम् ॥ १५१ ॥ लवङ्गी इति तन्नाम कृष्णेङ्गितनिरीक्षणा । यस्या हस्ते प्रदृश्येत मुखमार्ज्जनयन्त्रकम् ॥ १५२॥ इति ते कथिताः काश्चित् प्रधानाः कृष्णवल्लभाः ॥१५३॥ हरि-विविधरसाद्यैर्युक्तमध्यायमेतं व्रजवरतनयाभिश्चारुहासेक्षणाभिः । पठति य इह सत्या पाठयेद्वा मनुष्यो व्रजति भगवतः श्रीवासु-देवस्य धाम ॥ १५४ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

गोकुलमें नन्द बाबाके भाईके घरमें जन्म लिया ॥ १५१ ॥ उसका नाम लवङ्गी पड़ा। वह कृष्णके इशारे हीको देखती रहती है, क्योंकि उसके हाथमें पीकदानी रहती है ॥ १५२ ॥ प्रधान प्रधान कृष्णकी सखियां तुमसे कही गईं ॥ १५३ ॥ यह अध्याय हरिके नाना प्रकारके रस तथा सुन्दर हंसनेवाली और चारु कटाक्षोंवाली व्रजकी श्रेष्ठ सुन्दरियोंकी क्रीड़ासे युक्त है। जो मनुष्य इसे प्रीतिसे पढ़ता है, अथवा पढ़ाता है, वह भगवान् श्रीकृष्णके धामको जाता है ॥ १५४ ॥

चतुर्थ अध्याय समाप्त ।

पञ्चमोऽध्यायः।

ईश्वर उवाच। यत् त्वया पृष्टमाश्चर्य्यं तन्मया भाषितं क्रमात्। यत्र मुह्यन्ति ब्रह्माद्यास्तत्र को वा न मुह्यति ॥१॥ तथापि ते प्रवक्ष्यामि यदुक्तं परमर्षिणा। महाराजमम्बरीषं विष्णुभक्तं शिवान्वितम् ॥ २ ॥ बदर्य्याश्रममासाद्य समासीनं जितेन्द्रियम्। राजा प्रणम्य तुष्टाव विष्णुधर्म्मविविक्षया ॥ ३ ॥ वेदव्यासं महाभागं सर्व्वज्ञं पुरुषोत्तमम्। मां त्वं संसारदुष्पारे परित्रातुमिहार्हसि ॥ ४ ॥ विषयेषु विरक्तोऽस्मि नमस्तेभ्यो नमोऽखिलम्। यत्तत् परमनुद्दिष्टं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ ५ ॥ परंब्रह्म पराकाशमनाकाशमनामयम्। यत् साक्षात्कृत्य मुनयो भवाम्भोधिं तरन्ति हि ॥ ६ ॥

महादेवजी बोले, जो अद्भुत बातें तुमने पूछीं, मैंने क्रमसे कहीं। जहां ब्रह्मा आदि भी मोहको प्राप्त होते हैं, वहां कौन नहीं मोहता ॥ १ ॥ तो भी तुमसे जो कुछ शिव सहित विष्णुके भक्त महाराज अम्बरीषसे परमर्षिने कहा था, सो कहूंगा ॥ २ ॥ बदरिकाश्रममें पहुंचके वहां महाभाग, जितेन्द्रिय, सर्वज्ञ, पुरुषोत्तम, वेदव्यासको विष्णु धर्म्मकी श्रद्धासे राजाने प्रणाम किया और प्रसन्नता-पूर्व्वक कहा, "इस कष्टसे तरने योग्य संसार-समुद्रसे आप मेरी रक्षा करने योग्य हैं, अर्थात् संसार-समुद्रसे मुझे पार लगाइये ॥ ३ । ४ ॥ अखिल, परब्रह्मपर, निश्चल मनवाले, आकाश, अनाकाश, संसार दुःखहीन ऋषिवर आपको नमस्कार है। तुम्हारेसे मुनियोंके सच्चिदानन्दके रूप चरणोंको देखके मनुष्य संसार-समुद्रके अगाध

तत्राहं मनसो नित्यं कथं गतिमवाप्नुयाम्। व्यास उवाच। अति-
गोप्यं त्वया पृष्टं यन्मया न शुकं प्रति ॥७॥ गदितं स्वसुतं किन्तु त्वां
वक्ष्यामि हरिप्रियम्। आसीदिदं परं विश्वं यद्रूपं यत्प्रतिष्ठितम् ॥८
अव्याकृतमव्यथितं तदीश्वरमयं शृणु। मया कृतं तपः पूर्वं बहु-
वर्षसहस्रकम् ॥ ९ ॥ फलमूलपलाशाम्बु-वाय्वाहारनिषेविणा।
ततो मामाह भगवान् स्वध्याननिरतं हरिः॥ १० ॥ कस्मिन्नर्थे
चिकीर्षा ते विवित्सा वा महामते। प्रसन्नोऽस्मि वृणुष्व त्वं वरञ्च
वरदर्षभात् ॥ ११ ॥ मद्दर्शनान्तः संसार इति सत्यं ब्रवीमि ते।
ततोऽहमब्रुवं कृष्णं पुलकोत्फुल्लविग्रहः ॥१२॥ त्वामहं द्रष्टुमिच्छामि

पार होते हैं। मैं भी अब विषयोंकी पीड़ासे विरक्त हूं ॥ ५। ६ ॥
मैं अपनी मनोवाञ्छित गतिको कैसे पाऊंगा। व्यास बोले, तुमने
अति गुप्त कथा पूछी। जो मैंने अपने बेटे शुकदेवसे भी
नहीं कही, किन्तु भगवान्के प्यारे” तुमसे कहता हूं। यह विश्व पहले
यद्रूप यत्प्रतिष्ठित अर्थात् केवल ईश्वर हीका रूप था ॥ ७। ८ ॥
सुनो, यह विश्व पहले अव्यथित, अव्याकृत, उसी ईश्वरमय था। मैंने
पहले कई सहस्र वर्षतक तप किया ॥ ९ ॥ मैंने केवल फल, मूल,
पत्र, वायुका ही आहार किया। आत्माके ध्यानमें निरत मुझे देखके
भगवान् हरिने कहा ॥ १० ॥ “हे महामते! तुम्हें किस अर्थकी
वाञ्छा वा किस अर्थकी श्रद्धा है। मैं प्रसन्न हूं, मुझ वरदेनेवालोंमें
श्रेष्ठसे तुम वर मांगो ॥ ११ ॥ यह संसार-यातना मेरे दर्शनों हीतक
है।” तब मैंने पुलक-प्रफुल्ल शरीर होके भगवान् श्रीकृष्णसे कहा ॥ १२
“हे मधुसूदन! सत्य, परब्रह्म, जगज्ज्योति, जगन्नाथ, तद्रूप, तुमको मैं

चक्षुर्भ्यां मधुसूदन । यत्तत् सत्यं परं ब्रह्म जगज्ज्योतिं जगत्पतिम् ॥
१३ ॥ वदन्ति वेदशिरसश्चाक्षुषं नाथमद्भुतम् । श्रीभगवानुवाच ।
ब्रह्मणैवं पुरा पृष्टः प्रार्थितश्च यथा पुरा ॥ १४ ॥ यदवोचमहं
तस्मै तत् तुभ्यमपि कथ्यते । मामेके प्रकृतिं प्राहुः पुरुषञ्च तथे-
श्वरम् ॥ १५ ॥ धर्म्ममेके धनञ्चैके मोक्षमेकेऽकुतोभयम् । शून्य-
मेके भावमेके शिवमेके सदाशिवम् ॥ १६ ॥ अपरे वेदशिरसि-
स्थितमेकं सनातनम् । सद्भावं विक्रियाहीनं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥
१७ ॥ पश्याद्य दर्शयिष्यामि स्वरूपं वेदगोपितम् । ततोऽपश्यं
भूप बालमहं कालाम्बुदप्रभम् ॥ १८ ॥ गोपकन्यावृतं गोपं हसन्तं
गोपबालकैः । कदम्बमूल आसीनं पीतवाससमद्भुतम् ॥ १९ ॥ वनं

प्रत्यक्ष देखना चाहता हूं ॥ १२ ॥ वेदशिरा प्रत्यक्ष जगन्नाथको अत्यन्त
अद्भुत बताते हैं। श्रीभगवान् बोले, अगाड़ी ब्रह्माने जो पूछा था,
और जो चाहा था, और मैंने जो उनसे कहा था, सो ही मैं तुमसे
कहता हूं। मुझे कोई प्रकृति कहते हैं, कोई पुरुष कहते हैं, कोई
ईश्वर कहते हैं ॥ १४ । १५ ॥ कोई धर्म्म, कोई धन, कोई मोक्ष, कोई
अकुतोभय कहते हैं, कोई शून्य, कोई भाव, कोई शिव, कोई सदाशिव
कहते हैं ॥ १६ ॥ कोई कोई एक, सनातन, सद्भाव, विक्रियाहीन,
सच्चिदानन्द; कोई कोई मुझे वेदशिरोंमें स्थित कहते हैं ॥ १७ ॥
देख ! मैं आज वेदोंसे भी गुप्त स्वरूप तुझे दिखाता हूं। व्यासजी
कहने लगे, तब मैंने नीलमेघ जैसी कान्तिवाला गोपराज-कुमार
देखा ॥ १८ ॥ वह ग्वाल गोपकन्याओंसे घिरा हुआ, ग्वाल बालोंके
साथ हंस रहा था, अद्भुत पीताम्बर पहने कदम्बकी जड़के पास बैठा

वृन्दावनं नाम नवपल्लवमण्डितम्। कोकिलभ्रमरारावं शिखिरावमनोहरम्॥ २०॥ नदीमपश्यं कालिन्दीमिन्दीवरदलप्रभाम्। गोवर्द्धनमथापश्यं कृष्णरामकरोद्धृतम्॥ २१॥ महेन्द्रदर्पनाशाय गोगोपालसुखावहम्। गोपालमबलासङ्गमुदितं वेणुवादिनम्॥२२॥ दृष्ट्वातिहृष्टो ह्यभवं सर्व्वभूषणभूषणम्। ततो मामाह भगवान् वृन्दावनचरः स्वयम्॥२३॥ यदिदं मे त्वया दृष्टं रूपं दिव्यं सनातनम्। निष्कलं निष्क्रियं शान्तं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥ २४॥ पूर्णं पद्मपलाशाक्षं नातः परतरं मम। इदमेव वदन्त्येते वेदाः कारणकारणम्॥२५॥ सत्यं नित्यं परानन्दं चिद्घनं शाश्वतं शिवम्। नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा॥ २६॥ यमुनां गोपकन्याश्च

था॥ १९॥ कामदेवका मन हरनेवाला, कोकिल भ्रमरादिके कलकूजितसे पूर्ण, नवीन पत्तोंसे मण्डित मैंने वृन्दावन नामे वन देखा॥ २०॥ नीलकमल जैसी कान्तिवाली मैंने कालिन्दी नदी देखी। रामकृष्णकी उङ्गलियोंसे उठा हुआ मैंने गोवर्धन पर्व्वत देखा॥ २१॥ इन्द्रके दर्पको विनत करनेके लिये ही कृष्णने ऐसा किया था। मैंने गाय और ग्वालोंके आनन्द-वर्द्धन, सुन्दरियोंके सङ्गसे प्रसन्न, वंशी-बजैया गोपालको देखा॥ २२॥ सब भूषणोंके भूषण कृष्णको देखके मैं अति हृष्ट हुआ। तब वृन्दावनचारी भगवान्‌ने स्वयं मुझसे कहा॥ २३॥ यह जो तुमने दिव्य सनातन, कलाहीन, क्रियारहित, शान्तियुक्त, सच्चिदानन्दरूप, पूर्ण कमलदलकी न्याईं नेत्रों सहित मेरा परम स्वरूप देखा, इसीको वेद कारणोंका कारण सत्य, नित्य, परानन्द, चिद्घन, पुराण, शिव, आदि कहते हैं। मथुरापुरी और मेरे वृन्दावन वनको नित्य जानना॥२४—२६

तथा गोपालबालकाः। ममावतारो नित्योऽयमत्र मा संशयं कृथाः॥
२७॥ ममेष्टा हि सदा राधा सर्व्वज्ञोऽहं परात्परः। सर्व्वकामश्च
सर्व्वेशः सर्व्वानन्दः परात्परः॥ २८॥ मयि सर्व्वमिदं विश्वं भाति
मायाविजृम्भितम्। ततोऽहमब्रुवं देवं जगत्कारणकारणम्॥ २९॥
काश्च गोप्यस्तु के गोपा वृक्षोऽयं कीदृशो मतः। वनं किं कोकिला-
द्याश्च नदी केयं गिरिश्च कः॥ ३०॥ कोऽसौ वेणुर्महाभागो लोका-
नन्दैकभाजनम्। भगवानाह मां प्रीतः प्रसन्नवदनाम्बुजः॥ ३१॥
गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेया ऋचो वै गोपकन्यकाः। देवकन्याश्च राजेन्द्र
तपोयुक्ता मुमुक्षवः॥ ३२॥ गोपाला मुनयः सर्व्वे वैकुण्ठानन्द-
मूर्त्तयः। कल्पवृक्षः कदम्बोऽयं परानन्दैकभाजनम्॥ ३३॥ वन-

यमुनाजीको कलिनाशिनी जानना। गोपकन्या और ग्वालबाल ये
मेरे ही नित्य सत्य अवतार हैं, इसमें संशय मत करना॥ २७॥
राधा सर्व्वदा मेरी प्रिया है, मैं परसे पर सर्व्वज्ञ हूं। मैं सर्व्वकाम
सर्वेश, सर्वानन्द, परसे पर हूं॥ २८॥ मायासे पूर्ण यह संसार मेरे
शरीर हीमें स्थित है। व्यास कहने लगे, तब मैंने जगत्‌के कारणोंके
भी कारण देव श्रीकृष्णसे कहा॥ २९॥ ये गोपियां कौन हैं, ये गोप
क्या हैं, यह पेड़ क्या है, यह लोगोंके आनन्दका परमपात्र वन क्या
है, कोकिला आदि पक्षी क्या हैं, यह नदी कौन है, यह पर्व्वत क्या है,
यह महाभाग्यवती वंशी क्या है? प्रसन्न मुखारविन्द भगवान्‌ने प्रीति
पूर्व्वक मुझसे जो कहा, सो सुनो॥ ३०। ३१॥ हे अम्बरीष! उन्होंने
कहा, देवकन्याएं, शक्तिकन्याएं, ऋचायें और मोक्षप्राप्त तपस्वी—ये
ही गोपी और गोपकुमारियां हैं॥ ३२॥ वैकुण्ठके आनन्दकी मूर्त्तियां,

मानन्दकाख्यं हि महापातकनाशनम् । सिद्धाश्च साध्या गन्धर्वाः कोकिलाद्या न संशयः ॥ ३४ ॥ केचिदानन्दहृदयं साक्षाद् यमुनया ततुम् । अनादिर्हरिदासोऽयं भूधरो नात्र संशयः ॥ ३५ ॥ वेणुर्यः शृणु तं विप्रं तवापि विदितं तथा । द्विज आसीच्छान्तमनास्तपःशान्तिपरायणः ॥ ३६ ॥ नाम्ना देवव्रतो दान्तः कर्मकाण्डविशारदः । स वैष्णवजनव्रातमध्यवर्त्ती क्रियापरः ॥ ३७ ॥ स कदाचन शुश्राव यज्ञोऽस्तीति भूपते । तस्य गेहसथाभ्यागाद् द्विजो सहृतनिश्चयः ॥ ३८ ॥ स सद्भक्तः क्वचित् पूजां तुलसीदलवारिणा । कृतवांस्तद्दले विद्धित् फलं

ये सब गोपाल मुनि लोग हैं। यह कदम्बका पेड़ कल्पवृक्ष है। परमानन्दका एकमात्र आधार, महा पातकोंका नाश करनेवाला, यह वन आनन्दक (पाठान्तरमें नन्दन) कहलाता है। सिद्ध, साध्य और गन्धर्व—येही कोकिल आदि पक्षी हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३३ । ३४ ॥ कोई कोई आनन्दसे युक्त हृदयवाले ही साक्षात् यमुनाकी धारा हैं। यह अनादि पर्वत हरिदास है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३५ ॥ वंशी जो है, सो सुनो। वह एक ब्राह्मण थी, तुम भी उसे जानते हो। वह ब्राह्मण शान्त-हृदय और तपस्या तथा शान्तिसे युक्त था ॥ ३६ ॥ उस उदार, कर्मकाण्डशाली, वैष्णवोंकी मण्डलीमें सुकर्मी ब्राह्मणका नाम देवव्रत था ॥ ३७ ॥ हे अम्बरीष ! उसने सुना किसी ब्राह्मणके घरमें यज्ञपूजा है। भगवान्में निश्चय रखनेवाला वह देवव्रत ब्राह्मण उसके घर अभ्यागत हुआ ॥ ३८ ॥ उस यज्ञशाली, भगवद्भक्त, सुबुद्धि ब्राह्मणने तुलसी-दल सहित जलसे भगवानकी पूजा की

मूलं न्यवेदयत् ॥ ३९ ॥ स्नानवारि फलं किञ्चित् तस्मै प्रीत्या ददौ सुधीः। अश्रद्धया स्मितं कृत्वा सोऽप्यगृह्णाद्द्विजन्मनः ॥४०॥ तेन पापेन सञ्जातं वेणुस्मतिदारुणम्। तेन पुण्येन तस्याथ मदीयप्रियतां गतः ॥ ४१ ॥ अमुना सोऽपि राजेन्द्र केतुमानिव राजते। युगान्ते तद्विष्णुपरो भूत्वा ब्रह्म समाप्स्यति ॥ ४२ ॥ अहो न जानन्ति नरा दुराशयाः पुरीं मदीयां परमां सनातनीम्। सुरेन्द्रनागेन्द्रमुनीन्द्रसंस्तुतां मनोरमां तां मथुरां पुरातनीम् ॥४३॥ काश्यादयो यद्यपि सन्ति पुर्य्यस्तासान्तु मध्ये मथुरैव धन्या। यज्जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहैर्नृणां चतुर्द्धा विदधाति मुक्तिम् ॥ ४४ ॥ यदा विशुद्धास्तपआदिना जनाः शुभाशया ध्यानधना निरन्तरम्। तदैव पश्यन्ति

थी। उस अभ्यागत ब्राह्मणके घर भी उसने थोड़ा फलमूल, चरणामृत, प्रीतिसे भेजा। उस ब्राह्मणने अश्रद्धासे कुछ हंसके उसे ग्रहण किया ॥ ३९। ४० ॥ उसी पापसे वह अति घोर वेणु अर्थात् बांसकी योनिको गया, पर चरणामृतके पुण्यसे वह मेरी प्रीतिको प्राप्त हुआ ॥ ४१ ॥ हे अम्बरीष! वह भी इससे शोभायमान विराजती है। युगान्तमें ब्रह्मपर होके वह भगवान्में लीन होगी ॥ ४२ ॥ भगवान् कहने लगे, सुरेन्द्र, नागेन्द्र, मुनीन्द्रोंसे प्रशंसित, मनोहर, परम सनातन, पुरातन मेरी मथुरा पुरीको मूढ़ दुराशय मनुष्य नहीं समझते ॥ ४३ ॥ काशी आदि भी यद्यपि पुरी हैं, पर उनके मध्यमें मथुरा ही धन्य है, जो जन्मके फूसकी गांठ और मृत्युके दाहसे बचाके मनुष्योंको चारों भांतिकी मुक्ति देती है ॥ ४४ ॥ श्रेष्ठ शुभाशय ब्राह्मणगण, जब तप भक्ति आदिसे विशुद्ध होके ध्यानधनमें तत्पर होते हैं,

ममोत्तमां पुरीं न चान्यथा कल्पशतैर्द्विजोत्तमाः ॥ ४५ ॥ मथुरावासिनो धन्या मान्या अपि दिवौकसाम्। अगण्यमहिमानस्ते सर्व्वे एव चतुर्भुजाः ॥ ४६ ॥ मथुरावासिनो ये तु दोषान् पश्यन्ति मानवाः। तेषु दोषं न पश्यन्ति जन्ममृत्युशतेष्वजम् ॥ ४७ ॥ अधना अपि ते धन्या मथुरां ये स्मरन्ति ते। यत्र भूतेश्वरो देवो मोक्षदः पापिनामपि ॥ ४८ ॥ मम प्रियतमो नित्यं देवो भूतेश्वरः परः। यः कदापि मम प्रीत्यै न सन्त्यजति तां पुरीम् ॥ ४९ ॥ भूतेश्वरं यो न नमेन्न पूजयेन्न वा स्मरेद्दुश्चरितो मनुष्यः। नैनां स पश्येन्मथुरां मदीयां स्वयंप्रकाशां परदेवताख्याम् ॥ ५० ॥ न कथं मयि भक्तिं स लभते पापपूरुषः। यो मदीयं परं भक्तं शिवं सम्पूजयेन्न

तभी मेरी इस उत्तम पुरीको देखते हैं, अन्यथा सैकड़ों कल्प बीतनेपर भी नहीं ॥ ४५ ॥ मथुरावासी ही धन्य हैं, वे देवलोकवासियोंके भी मान्य हैं। उनकी महिमाओंकी गणना नहीं, वे सभी चतुर्भुज हैं ॥ ४६ ॥ मथुरावासियोंके दोषोंको मनुष्य देखते हैं। पर वे सैकड़ों जन्म-मृत्युके दोषोंको नहीं देखते ॥ ४७ ॥ जो मथुराका स्मरण करते हैं, वे धनहीन भी धन्य हैं। वहां पापियोंको भी मोक्ष देनेवाले भूतेश्वर महादेव हैं ॥ ४८ ॥ वह भगवान् भूतनाथ महादेव मेरे नित्य ही प्रिय हैं। क्योंकि वह मेरी प्रीतिसे कदापि उस पुरीको नहीं छोड़ते ॥ ४९ ॥ जो दुश्चरित मनुष्य भूतनाथको नहीं नमस्कार करता, जो उन्हें नहीं पूजता, जो उनका स्मरण नहीं करता, वह इस स्वयंप्रकाश तथा परम देवतारूपिणी, मेरी मथुरा पुरीको नहीं देखता ॥ ५० ॥ जो मेरे परम भक्त शिवको नहीं पूजता, वह पाप-पुरुष मेरी भक्तिको किसी प्रकार

हि ॥ ५१ ॥ मन्मायामोहितधियः प्रायस्ते मानवाधमाः । भूतेश्वरं न नमन्ति न स्मरन्ति स्तुवन्ति नो ॥ ५२ ॥ बालकोऽपि ध्रुवो यत्र ममाराधनतत्परः । प्राप स्थानं परं शुद्धं यत्नयुक्तं पितामहैः ॥५३॥ तां पुरीं प्राप्य मथुरां मदीयां सुरदुर्लभाम् । खञ्जो मूकान्धको वापि प्राणानेव परित्यजेत् ॥ ५४ ॥ वेदव्यास महाभाग मा कृथाः संशयं क्वचित् । रहस्यं वेदशिरसां मन्मया ते प्रकाशितम् ॥ ५५ ॥ इमं भगवता प्रोक्तमध्यायं यः पठेच्छुचिः । शृणुयाद्वापि यो भक्त्या मुक्तिस्तस्यापि शाश्वती ॥ ५६ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

नहीं पाता ॥ ५१ ॥ जो भूतनाथको नमस्कार नहीं करते, जो उनका स्मरण नहीं करते, जो उनकी स्तुति नहीं करते, वे नराधम बहुधा मेरी मायासे नष्टबुद्धि हैं ॥ ५२ ॥ आराधनामें तत्पर होके जहां बालक ध्रुवने भी यत्नपूर्व्वक ब्रह्मादिकसे शुद्ध किये हुए परम स्थानको पाया ॥ ५३ ॥ उस मेरी सुर-दुर्लभ मथुरा पुरीमें जाके अन्ध वा लङ्गड़ा होके भी जीवन काटे अर्थात् प्राण छोड़े । हे वेदव्यास ! हे महाभाग, तुमसे मैंने वेदशिरोंका गुप्त तत्त्व प्रकाशित किया, तुम कभी वृथा संशय मत करना ॥ ५४ । ५५ ॥ इस भगवान्‌के कहे हुए अध्यायको जो शुद्ध जन पढ़ता है अथवा भक्तिपूर्व्वक सुनता है, उसको सनातनी मुक्ति मिलती है ॥ ५६ ॥

पञ्चम अध्याय समाप्त ।

षष्ठोऽध्यायः ।

ईश्वर उवाच । एकदा रहसि श्रीमानुद्धवो भगवत्प्रियः । सनत्कुमारमेकान्ते ह्यपृच्छत् पार्षदः प्रभोः ॥ १ ॥ यत्र क्रीड़ति गोविन्दो नित्यं नित्यसुखास्पदे । गोपाङ्गनाभिर्यत् स्थानं कुत्र वा कीदृशं परम् ॥२॥ यत्तत् क्रीड़नवृत्तान्तमन्यद् यद्यत् तदद्भुतम् । ज्ञातं चेत् तव तत् कथ्यं स्नेहो मे यदि वर्त्तते ॥ ३ ॥ सनत्कुमार उवाच । कदाचिद् यमुनाकूले कस्यापि च तरोस्तले । सुवृत्तेनोपविष्टेन भगवत्पार्षदेन वै ॥ ४ ॥ यद्रहोऽनुभवस्तस्य पार्थेनापि महात्मना । दृष्टं कृतञ्च यद्यत् तत् प्रसङ्गात् कथितं मयि ॥५॥ तत् तेऽहं कथयाम्येतत् शृणुष्वावहितः परम् । किन्त्वेतद् यत्र कुत्रापि न प्रकाश्यं

महादेव जी बोले, एकबार भगवानके प्यारे, प्रभुके पार्षदोंके उद्धवने अति गुप्त स्थानमें सनत्कुमारसे बात पूछी ॥ १ ॥ जिस, नित्यसुखास्पद स्थानमें श्रीकृष्ण गोपियोंके साथ क्रीड़ा करते हैं, वह स्थान कहां और कैसा है ॥ २ ॥ हे सनत्कुमार ! यदि मुझपर प्रीति हो, तो उनकी सब क्रीड़ाओंके वृतान्त तथा और भी जो कुछ अलौकिक तत्त्व, जैसे आपको ज्ञात हों, वैसे कहिये ॥ ३ ॥ सनत्कुमार बोले, एकबार यमुनाके तटपर किसी वृक्षके नीचे सदाशय, महात्मा, भगवान्के प्यारे सेवक, अर्ज्जुनने बैठके जो भगवान्का रहस्य अनुभूत किया था, जो देखा था, जो किया था, और जो प्रसङ्गके वश मुझसे कहा था ॥ ४ ।५ सो सब मैं तुमसे कहता हूं, परम सावधान होके सुनो, किन्तु इस रह

वृन्दावन ॥ ६ ॥ अर्ज्जुन उवाच। शङ्कराद्यैर्विरिञ्चाद्यैरदृष्टमश्रुतञ्च यत्। सर्व्वमेतत् कृपाम्भोधे कृपया कथय प्रभो ॥ ७ ॥ किं त्वया कथितं पूर्व्वमाभीर्य्यस्तववल्लभाः। तास्ताः कतिविधा देव कति वा संख्यया पुनः ॥८॥ नामानि कति वा तासां का वा कुत्र व्यवस्थिताः। तासां वा कति कर्म्माणि वयो वेषश्च कः प्रभो ॥ ९ ॥ काभिः सार्द्धं क्व वा देव विहरिष्यसि भो रहः। नित्ये नित्यसुखे नित्यविभवे च वने वने ॥ १० ॥ तत् स्थानं कीदृशं कुत्र शाश्वतं परम महत्। कृपा चेत् तादृशी तन्मे सर्व्वं वक्तुमिहार्हसि ॥ ११ ॥ यदपृष्टं मया-प्येवमज्ञातं यद्रहस्तव। आर्त्तार्त्तिघ्न महाभाग सर्व्वं तत् कथयि-ष्यसि ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच। तत् स्थानं वल्लभास्ता मे विहार-

---

रहस्यकी जहां कहीं प्रकाश मत करना ॥ ६ ॥ अर्ज्जुन बोले, श्रीकृष्ण! हे कृपापारावार! हे प्रभो! शिव, ब्रह्मा आदिने जो न देखा सुना हो, सो मुझसे कृपा करके कहो ॥ ७ ॥ आपने पहले यही न कहा था क्या, कि गोपियां ही हमारी प्यारी हैं। हे देव। वे कितने प्रकारकी हैं और उनकी संख्या कितनी हैं ॥ ८ ॥ उनके नाम कितने हैं, वे कौन हैं और कहां रहती हैं। हे प्रभो! उनके क्या काम हैं, क्या अवस्था है, क्या वेष है ॥ ९ ॥ हे देव! आप किसके साथ, कहां, कौनसे नित्य, अखण्डसुखयुक्त, अनन्त-प्रतापशाली वनमें प्रतिदिन रमण करते हैं ॥ १० ॥ वह सनातन, विराट, परम स्थान कहां और कैसा है। यदि आपकी मुझ पर वैसी ही कृपा है, तो यहां सब बातें कह सकते हैं ॥ ११ ॥ हे भवार्त्तिसूदन, महाभाग! जो रहस्य आपका मैं न जानता हूं, जो मैंने कभी न पूछा हो, सो सब

स्ताद्द्रष्टो मम। अपि प्राणसमानानां सत्यं पुंसामगोचरः ॥ १३ ॥
कथिते द्रष्टुमुत्कण्ठा तव वत्स भविष्यति। ब्रह्मादीनामदृश्यं यत्
किं तदन्यजनस्य वै ॥ १४ ॥ तस्माद्विरम वत्सैतत् किन्तु तेन विना
तव। एवं भगवतस्तस्य श्रुत्वा वाक्यं सुदारुणम् ॥१५॥ दीनः पादा-
म्बुजद्वन्द्वे दण्डवत् पतितोऽर्ज्जुनः। ततो विहस्य भगवान् दोर्भ्या-
मुत्थाप्य तं विभुः ॥ १६ ॥ उवाच परमप्रेम्णा भक्ताय भक्तवत्सलः।
तत् किं तत्कथनेनात्र द्रष्टव्यं चेत् त्वया हि यत् ॥१७॥ यस्यां सर्व्वं
समुत्पन्नं यस्यामद्यापि तिष्ठति। लयमेष्यति तां देवीं श्रीमत्त्रिपुर-
सुन्दरीम् ॥ १८ ॥ आराध्य परया भक्त्या तस्यै स्वञ्च निवेदय।

कहिये ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले, मेरा वह स्थान, वे प्यारी गोपियां
वैसा विहार, सत्य सत्य ही प्राण-समान पुरुषोंके भी अगोचर है ॥ १३ ॥
हे वत्स! कहनेसे तुम्हें देखनेकी इच्छा होगी। पर वह ब्रह्मा
आदिको भी अदर्शनीय है, तो फिर दूसरे मनुष्यकी क्या कहें ॥ १४ ॥
हे वत्स! इससे ठहरो, उस तत्त्व बिना तुम्हारा क्या बिगड़ता है?
भगवान्‌के ऐसे कठोर वचन सुनके ॥ १५ ॥ अर्ज्जुन दीन होके लकुटवत्
उनके चरणोंमें गिर पड़े। तब भगवान् श्रीकृष्णने हंसके दोनों भुजा-
ओंसे उन्हें उठा लिया ॥ १६ ॥ और भगवान् भक्तवत्सल परम प्रेमसे
भक्त अर्ज्जुनको कहने लगे, जो तत्त्व तुम्हें दिखाना ही नहीं, उसके
कहने-हीसे क्या ॥ १७ ॥ जिससे सब जगत् उत्पन्न हुआ है, और
अन्तको जिसमें लय हो जायगा, उस श्रीमती त्रिपुरसुन्दरी देवीकी
परम भक्तिसे आराधना करो, उन्हींसे अपना वृत्तान्त निवेदन

तां विनैतत् पदं दातुं न शक्नोमि कदाचन ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतत् भगवद्वाक्यं पार्थो हर्षाकुलेक्षणः। श्रीमत्यास्त्रिपुरादेव्या ययौ श्रीपादुकातलम् ॥ २० ॥ तत्र गत्वा ददर्शैनां श्रीचिन्तामणिवेदिकाम्। नानारत्नैर्विरचितैः सोपानैरतिशोभिताम् ॥२१॥ तत्र कल्पतरुं नानापुष्पैः फलभरैर्नतम्। सर्व्वर्त्तुकोमलदलैः स्रवन्माध्वीकशीकरैः ॥ २२ ॥ वर्षद्भिर्वायुना लोलैः पल्लवैरुज्ज्वलीकृतम्। शुकैश्च कोकिलगणैः सारिकाभिः कपोतकैः ॥ २३ ॥ लीलाचकोरकै रम्यैः पक्षिभिश्च निनादितम्। यत्र गुञ्जद्भृङ्गराजकोलाहलसमाकुलम् ॥ २४ ॥ अधोभिर्भास्वरैरुद्यद्दावानलमनोहरम्। श्रीरत्नमन्दिरं दिव्यं तत्रैतस्य महाद्भुतम् ॥ २५ ॥ रत्नसिंहासनं

करो। उनके बिना यह पद मैं तुम्हें कदापि नहीं दे सकता ॥ १८। १९ ॥ भगवान्के ऐसे वाक्य सुनके हर्षसे आकुल नेत्रवाले अर्ज्जुन श्रीमती त्रिपुर-सुन्दरी देवीकी श्रीपादुकाके चरणमें आये ॥ २० ॥ वहां जाके नाना भांतिकी रत्नजटित सीढ़ियोंसे अति-शोभित श्रीचिन्तामणिकी वेदीपर श्रीमती देवीको देखा ॥ २१ ॥ वहां सब ऋतुओंके कोमल दलोंसे युक्त, पुष्परसकी बूंदोंका टपकानेवाला, विविध फूल और फलोंके भारसे झुका हुआ कल्प वृक्ष था ॥ २२ ॥ वर्षा और वायुसे उसके चमकते हुए पत्ते हिल रहे थे। वह सुआ, मैना, कोकिल, कपोत, लीलाचकोर, आदि सुन्दर पक्षियोंके कलरवसे पूर्ण था। वहां गूंजते हुए भृङ्गराजोंका कोलाहल छा गया था ॥ २३। २४ ॥ उसके नीचे जगमगाती हुई मणियोंसे उठी हुई दावानलकी न्याईं मनोहर, महा अद्भुत, दिव्य श्रीरत्नमन्दिर था ॥ २५ ॥ वहां मनोमोहन

तत्र महार्हमाभिमोहनम्। तत्र बालार्कसङ्काशां नानालङ्कार-भूषिताम् ॥ २६ ॥ नवयौवनसम्पन्नां सृणिपाशधनुःशरैः। राज-च्चतुर्भुजलतां सुप्रसन्नां मनोहराम् ॥ २७ ॥ ब्रह्म-विष्णु-महे-शादिकिरीटमणिरश्मिभिः। विराजितपदाम्भोजामणिमादिसिरा-वृतम् ॥ २८ ॥ प्रसन्नवदनां देवीं वरदां भक्तवत्सलाम्। अर्ज्जुनोऽह-मिति ज्ञातः प्रणम्य च पुनःपुनः ॥ २९ ॥ विहिताञ्जलिरेकान्ते स्थितो भक्तिभरान्वितः। सा तस्योपासितं ज्ञात्वा प्रसादञ्च कृपा-निधिः ॥ ३० ॥ उवाच कृपया देवी तस्य स्मरणविह्वला। भग-वत्युवाच। किं वा दानं त्वया वत्स कृतं पात्राय दुर्लभम् ॥३१॥ इष्टं यज्ञेन केनात्र तपो वा किमनुष्ठितम्। भगवत्यमला भक्तिः का वा

सोनेका रत्नजटित सिंहासन था। उस पर बालसूर्यकी ज्योतिवाली, विविध भूषणोंसे भूषित, नवीन तरुणाईसे आढ्य, चारों भुजाओंमें सृणि, पाश, धनुष, बाण धारण करके शोभित, सुप्रसन्न, मनोहर, ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदिके मुकुटोंके मणियोंकी ज्योतिसे चरणकमलके नख देदीप्यमान करनेवाली ; अणिमा आदि अष्ट सिद्धियोंसे युक्त ; प्रसन्न-वदन, भक्तवत्सल, वर देनेवाली देवी त्रिपुरसुन्दरीको देखके "मैं अर्ज्जुन हूं।" ऐसा कहते हुए बारम्बार प्रणाम किया ॥ २६—२९ ॥ फिर अर्ज्जुन भक्तिके वेगसे युक्त होके और हाथ जोड़के एक ओर बैठ गये। उस कृपा-समुद्र देवीने भी उसके वाञ्छित और अभिलषितको जान लिया ॥ ३० ॥ उसके स्मरणमें बिह्वल होके कृपापूर्व्वक देवी बोली। भगवती कहने लगी ; हे वत्स ! तुमने किस पात्रको क्या अद्भुत दान किया था ॥ ३१ ॥ इस लोकमें तुमने कौन सा यज्ञ करके इष्ट साधा था,

प्राक् समुपार्ज्जिता ॥३२॥ किं वास्मिन् दुर्लभं लोके किंवा कर्म्म शुभं महत्। प्रसादस्त्वयि येनायं प्रपन्ने च मुदा किल ॥३३॥ गूढ़ातिगूढ़श्चानन्यलभ्यो भगवता कृतः। नैतादृङ् मर्त्यलोकानां न च भूतलवासिनाम् ॥ ३४ ॥ स्वर्गिणां देवतादीनां तपस्वीश्वरयोगिणाम्। भक्तानां नैव सर्व्वेषां नैव नैव च नैव च ॥ ३५ ॥ प्रसादस्तु कृतो वत्स तव विश्वात्मना यथा। तदेहि भज शुद्ध्वैव कुलकुण्डं सरो मम ॥ ३६ ॥ सर्व्वकामप्रदा देवी त्वनया सह गम्यताम्। तत्रैव विधिवत् स्नात्वा द्रुतमागम्यतामिह ॥ ३७ ॥ तदैव तत्र गत्वा स स्नात्वा पार्थस्तथागतः। आगतं तं कृतस्नानं न्यासमुद्रार्पणादिकम् ॥ ३८ ॥ कारयित्वा ततो देव्या तस्य वै दक्षिण-

---

कौनसे तपका अनुष्ठान किया था, क्या पहले तुमने भगवती निर्म्मला भक्तिका उपार्ज्जन किया था ॥ ३२ ॥ इस लोकमें कौनसा दुर्लभ, कौनसा महान् शुभ कर्म्म तुमने साधा था ॥ जो प्रपन्न देखके प्रसन्नता-पूर्व्वक भगवान्ने गूढ़से अति गूढ़, अनन्त भक्तोंका दुष्प्राप्य, प्रसाद तुमपर किया। मर्त्यलोकके रहनेवाले तथा पातालवालोंपर ऐसी प्रसन्नता श्रीकृष्णने कभी नहीं की ॥ ३९ । ३४ ॥ संपूर्ण स्वर्गवासियोंपर, देवता आदि पर, तपस्वियोंमें श्रेष्ठ योगियोंपर—भक्तोंपर भी ऐसा प्रसाद नहीं किया, नहीं किया, नहीं किया ॥ ३५ ॥ हे वत्स! जैसी विश्वात्मा श्रीकृष्णने तुम पर प्रसन्नता की है, वैसी किसीपर नहीं की। सो जाओ और मेरे कुलकुण्ड सरोवरमें स्नान करो ॥ ३६ ॥ सर्व्वकामप्रदा देवीके साथ तुम जाओ और वहां विधिवत् स्नान करके शीघ्र यहां आओ ॥ ३७ ॥ शीघ्र ही अर्ज्जुन वहां जाके और स्नान करके

श्रुतौ। सद्यःसिद्धिकरी बाला विद्या निगदिता परा ॥ ३९ ॥ ह्रकारार्द्धपरा दीपा द्वितीया विश्वभूषिता। अनुष्ठानञ्च पूजाञ्च जपञ्च लक्षसंख्यकम् ॥ ४० ॥ कोरकैः करवीराणां प्रयोगञ्च यथातथम्। निर्व्वत्य तमुवाचेदं कृपया परमेश्वरी ॥ ४१ ॥ अनेनैव विधानेन क्रियतां मदुपासनम्। ततो मयि प्रसन्नायां तवानुग्रहकारणात् ॥ ४२ ॥ ततस्तु तव पर्य्यन्तेष्वधिकारो भविष्यति। इत्ययं नियमः पूर्व्वं स्वयं भगवता कृतः ॥ ४३ ॥ श्रुत्वैवमर्ज्जुनस्तेन वर्त्मना तां समर्च्चयत्। ततः पूजां जपञ्चैव कृत्वा देवी प्रसादिता ॥ ४४ ॥ कृत्वा ततः शुभं होमं स्नानञ्च विधिना ततः। कृतकृत्यमिवात्मानं प्राप्त-

---

लौट आया। उसे स्नान, न्यास, मुद्रा, अर्पणादि किये हुए देखके देवीने उसके दाहिने कानमें शीघ्र ही सिद्धि करनेवाली बालाविद्या कही। वह अगाड़ी कहते हैं ॥ ३८। ३९ ॥ उसके पीछे अर्ध-हकार था, वह उज्ज्वल, विश्वभूषित अद्वितीय विद्या थी। उसका अनुष्ठान, पूजा एक लाख (पाठान्तरमें पांच लाख) जप, कोरकोंसे कर-वीरोंका प्रयोग और सब उचित बातें कृपा करके परमेश्वरी त्रिपुर-सुन्दरीने अर्ज्जुनको बताके कहा ॥ ४० । ४१ ॥ इसी विधानसे तुम मेरी पूजा करो। तब मैं अपने अनुग्रह-वश तुमपर प्रसन्न हूंगी ॥ ४२ ॥ तभीसे तुम्हें कृष्ण-केलिके देखनेका अधिकार होगा। यह नियम पहले भगवान् हीने किया है ॥ ४३ ॥ यह सुनके अर्ज्जुनने उसी वांचसे (पाठान्तरमें मनुमन्त्रसे) देवीकी अर्चनाकी। तत्पश्चात् पूजा, जप करके देवीको प्रसन्न किया ॥ ४४ ॥ तब अर्ज्जुनने शुभ होम और विधिवत् स्नान किये और अपनेको कृतकृत्य, प्राप्तप्राय-मनोरथ जाना

प्राप्तमनोरथम् ॥ ४५ ॥ करस्थां सर्व्वसिद्धिञ्च स पार्थः समलन्यत। अस्मिन्नवसरे देवी तमागत्य स्मितानना ॥ ४६ ॥ उवाच गच्छ वत्स त्वमधुना तद्गृहान्तरे। ततः ससम्भ्रमः पार्थः समुत्थाय मुदान्वितः। ४७ ॥ असंख्यहर्षपूर्णात्मा दण्डवत् तां ननाम ह। आज्ञप्तस्तु तया सार्द्धं देवीवयस्ययार्ज्जुनः ॥४८॥ गतो राधापतिस्थानं यत् सिद्धैरप्यगोचरम् ॥ ततश्च स उपादिष्टो गोलोकादुपरिस्थितम् ॥ ४९ ॥ स्थिरं वायुधृतं नित्यं सत्यं सर्व्वसुखास्पदम्। नित्यं वृन्दावनं नाम नित्यरासमहोत्सवम् ॥ ५० ॥ अपश्यत् परमं गुह्यं पूर्णप्रेमरसात्मकम्। तस्या हि वचनादेव लोचनैर्वीक्ष्य तद्रहः ॥ ५१ ॥ विवशः पतितस्तत्र विवृद्धप्रेमविह्वलः। ततः कृच्छ्राल्लब्धसंज्ञो दोर्भ्या-

---

और हथेली हीपर सब सिद्धियोंको रखा हुआ समझने लगे। इसी अवसरमें मुसकराती हुई वही देवी आई ॥ ४५। ४६ ॥ उन्होंने कहा, हे वत्स! अब तुम उस घरके भीतर जाओ। तब संभ्रम सहित सहर्ष होके अर्ज्जुन उठे ॥ ४७ ॥ अर्ज्जुनकी आत्मा असंख्य हर्षोंसे पूरित हो गई थी। उन्होंने लकुटवत् गिरके देवीको प्रणाम किया। देवीकी सखीके साथ जाके अर्ज्जुनने वह घर देखा ॥ ४८ ॥ सिद्धोंसे भी अगम्य राधापतिके स्थानमें अर्ज्जुन गये। वहां गोलोकसे भी ऊपर स्थित वह स्थान उन्हें दिखाया गया ॥ ४९ ॥ वह स्थान स्थिर, वायु द्वारा धारण किया हुआ, नित्य, सर्व्व सुखोंका आश्रम, सनातन, नित्य रासोत्सवसे पूर्ण वृन्दावन नामसे था ॥ ५० ॥ उसी देवीके वचनोंसे अपने नेत्रों द्वारा उन्होंने परम गुह्य, पूर्ण प्रेमके रससे परिपूर्ण रहस्य देखा ॥ ५१ ॥ अर्ज्जुन बढ़ते हुए प्रेमसे विह्वल होके वहीं विवश होके

मूर्च्छापितस्तया ॥ ५२ ॥ सान्त्वनावचनैस्तस्याः कथञ्चित् स्थैर्यमागतः। ततस्तपः किमन्यन्मे कर्त्तव्यं विद्यते वद ॥ ५३ ॥ इति तद्दर्शनोत्कण्ठाभरेण तरलोऽभवत्। ततस्तया करं तस्य धृत्वा तत्पददक्षिणे ॥ ५४ ॥ प्रतिपेदे सुहृदिव गत्वा चोक्तमिदं वचः। स्नानायैतत्सरः पार्थ विश त्वं जलविस्तरम् ॥ ५५ ॥ सहस्रदलपद्मस्य संस्थानं मध्यकोरकम्। चतुःस्तरं चतुर्धारं नानाश्चर्यकुलसङ्कुलम् ॥ ५६ ॥ अस्यान्तरे प्रविश्याथ विशेषमिह पश्यसि। एतस्य दक्षिणे देश एष चारु सरोवरः ॥ ५७ ॥ मधुनाम्नौष्ठपानं यन्नाम्ना मलयनिर्झरः। एतच्च फुल्लमुद्यानं स्रवन्ते मदनोत्सवम् ॥ ५८ ॥

गिर पड़े। बड़ी कठिनाईसे उन्हें संज्ञा हुई। उस देवीकी सहचरीने उन्हें दोनों भुजाओंसे उठा लिया ॥ ५२ ॥ उसके धैर्य बंधानेवाले वचनोंसे उसे किसी प्रकार स्थिरता हुई। तब अर्जुन बोले, "मुझे कितना तप करना पड़ेगा सो कहो" ॥ ५३ ॥ इतना कहके श्रीकृष्णके दर्शनोंकी लालसाके वश चञ्चल हुए। तब उस सहचरीने जाके उनके हाथमें देवीका दक्षिण पैर रखा और अर्जुनके प्रश्नका यह उत्तर दिया। हे अर्जुन! स्नानही तुमको शुभ हैं, सो तुम विस्तृत जलयुक्त सरोवरमें प्रवेश करो ॥ ५४ । ५५ ॥ उस सरोवरका मध्यभाग सहस्र पखड़ीसे युक्त कमलोंका स्थान है। वह चार घाटवाला, चार धाराओंसे युक्त है, उसमें बहुत सी अद्भुत बातें हैं ॥ ५६ ॥ उसके भीतर प्रवेश करके वहां विशेष बातें देखोगे। उसके दक्षिण भागमें सुन्दर सरोवर है ॥ ५७ ॥ उसका नाम मलय निर्झर है, उसका जल अमृतकी न्याईं मीठा है। और यह फूला हुआ उपवन है।

कुरुते यत्र गोविन्दो वसन्तकुसुमोचितम्। यत्रावतारं कृष्णस्य स्तुवन्त्येव दिवानिशम् ॥ ५९ ॥ भवेद्यत्स्मरणादेव मुनेः स्वान्ते स्मराङ्कुरः। ततोऽस्मिन् सरसि स्नात्वा गत्वा पूर्व्वसरस्तटम् ॥ ६० ॥ उपस्पृश्य जलं तस्य साधयस्व मनोरथम्। ततस्तद्वचनं श्रुत्वा तस्मिन् सरसि तज्जले ॥ ६१ ॥ कह्लारकुमुदाम्भोजरक्तनीलोत्पलच्युतैः। परागैः रञ्जिते सज्जुवासिते मधुबिन्दुभिः ॥ ६२ ॥ तुन्दिले कलहंसादिनादैरान्दोलिते ततः। रत्नाबद्धचतुस्तीरे मन्दानिलतरङ्गिते ॥ ६३ ॥ मग्ने जलान्तः पार्थे तु तत्रैवान्तर्हितेऽथ सा। उत्थाय परितो वीक्ष्य सम्भ्रान्तां चारुहासिनीम् ॥ ६४ ॥ सद्यः शुद्धस्वर्णरश्मिगौरकान्ततनूलताम्। स्फुरत्किशोरवयसीयां शारदेन्दु

यहां वसन्तमें श्रीकृष्ण मदनोत्सव करते हैं। यहां वसन्ती पुष्पोंको चुनते हैं, वहां रात दिन कृष्णके अवतारकी स्तुति होती है ॥ ५८ । ५९ ॥ उसके स्मरण मात्रसे मुनिके हृदयमें भी कामका अङ्कुर उपजता है। उस सरोवरमें स्नान करके अगाड़ीके सरोवरके तटपर जाना ॥ ६० ॥ उसके जलका स्पर्श करके वहां अपने मनोरथको साधना। उसके ऐसे वचन सुनके अर्ज्जुन उस कुण्डके जलमें गये ॥ ६१ ॥ उसका जल कह्लार, कुमुद, श्वेत, लाल और नीले कमलोंसे झड़े हुए परागसे चित्रित था, उसमें सुन्दर गन्धि थी, फूलकी मिठाईके बिन्दुओंसे टप कलहंस आदिकी सुकूजनसे वह पूरित था। उसके चारो घाट रत्नसे बंधे थे, मन्द मन्द वायुसे उसमें तरङ्गें उठ रही थीं ॥ ६१ । ६२ ॥ अर्ज्जुनके जलके भीतर मग्न होते ही, वह देवी अन्तर्धान हो गई। जलसे उठके अर्ज्जुन अपनेको संभ्रान्त, सुन्दर हंसनेवाली, नये तपाये

निभाननाम् ॥ ६५ ॥ सुनीलकुटिलस्निग्धविलसद्रत्नकुन्तलाम् ।
सिन्दूरबिन्दुकिरणप्रोज्ज्वलालकपट्टिकाम् ॥६६॥ उन्नीलद्भ्रूलता-
भङ्गिजितस्मरशरासनाम् । घनश्यामलसल्लोलखेलल्लोचनखञ्जनाम् ॥
६७ ॥ मणिकुण्डलतेजोंऽशुविस्फुरद्गण्डमण्डलाम् । मृणालकोमल-
भ्राजदाश्चर्य्यभुजवल्लरीम् ॥ ६८ ॥ शरदम्बुरुहां सर्व्वश्रीचोर-
पाणिपल्लवाम् । रविदग्धचितरुग्मांकटितटधृताम्बराम् ॥ ६९ ॥
कूजत्काञ्चीकलापान्तविभ्राजज्जघनस्थलाम् । भ्राजद्दुकूलसंवीत-
नितम्बोरुसुमन्दिराम् ॥ ७० ॥ शिञ्जानमणिमञ्जीरसुचारुपद-
पङ्कजाम् । स्फुरद्विविधकन्दर्पकलाकौशलशालिनीम् ॥ ७१ ॥
सर्व्वलक्षणसम्पन्नां सर्व्वाभरणभूषिताम् । सर्व्वसुलक्षणाश्रेष्ठा-

हुए स्वर्णकी कान्तिमय देहलतासे युक्त, किशोर अवस्थाकी स्फूर्तिसे शोभित, शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्र जैसे मुखवाली, सुन्दर काले चिकने रत्नयुक्त केशपाशसे विराजित, सिन्दूरके बिन्दुसे ललाट-पट्टीको चमकानेवाली, उठती हुई भ्रूलताके चातुर्यसे कामदेवके धनुषको जीतनेवाली, घने काले चञ्चल खेलते हुए खञ्जनसे नेत्रोंवाली, मणि-कुण्डलके तेजकी किरणोंसे देदीप्यमान कपोल मण्डलसे-मण्डित, कमलकी डण्डीकी न्याईं कोमल अलौकिक भुजलताओंसे आढ्य, शरद् ऋतुके कमलोंकी सब शोभाके चुरानेवाले हस्तपल्लवसे युक्त, तप्त स्वर्णकी करधनी कटि प्रदेशमें धारण करनेवाली, करधनीके जालकी झनत्कारसे जङ्घाओंको सुशोभित करनेवाली, नितम्ब और जङ्घाओंके ऊपर सुन्दर चीर ओढ़नेवाली, मणिके नूपुरोंकी टङ्कारसे चरण कमलको झनकानेवाली, विविध प्रकारकी कामकलाओंकी स्फूर्तिसे आढ्य, सर्व्वलक्षणसम्पन्न, सर्व्वभूषण-

आत्मानं स व्यलोकयत् ॥ ७२ ॥ विसस्मार च यत् किञ्चित् पौर्व्वदैहिकमेव च । मायया गोपिकाप्राणनाथस्य तदनन्तरम् ॥ ७३ ॥ इतिकर्त्तव्यतामूढ़ा तस्थौ तत्र सुविस्मिता । अत्रान्तरेऽम्बरे धीरध्वनिराकस्मिकोऽभवत् ॥ ७४ ॥ अनेनैव यथा सुभ्रु गच्छ पूर्व्वसरोवरम् । उपस्पृश्य जलं तस्य साधयस्व मनोरथम् ॥ ७५ ॥ तत्र सन्ति हि सख्यस्ते मा खेद वरवर्णिनि । ता हि सस्पादयिष्यन्ति तत्रैव वरमीप्सितम् ॥७६॥ इति देवीं गिरं श्रुत्वा गत्वा पूर्व्वसरोऽथ सा । नानापूर्व्वप्रवाहञ्च नानापक्षिसमाकुलम् ॥७७॥ स्फुरत्कैरवकह्लारकमलेन्दीवरादिभिः । भ्राजितं पद्मरागैश्च पद्मसोपानसत्तटम् ॥ ७८ ॥ विविधैः कुसुमोद्दामैर्मञ्जुकुञ्जलताद्रुमैः ।

भूषित, श्रेष्ठ युवती रूपमें देखने लगे ॥ ६४—७२ ॥ उन्हें अपनी पूर्व्व देहका जो कुछ वृत्त था, सो भूल गया । तदनन्तर गोपिका-प्राणवल्लभकी मायासे वह नवीनोत्पन्न गोपी "क्या करना चाहिये" इस विचारमें मूढ़ होके चकितसी वहीं खड़ी रही । तत्पश्चात् अकस्मात् आकाशमें गभीर ध्वनि हुई ॥ ७३ । ७४ ॥ "हे सुन्दर भ्रूलतावाली ! इसी मार्गसे तुम पूर्व्वके कुण्डकी ओर चली जाओ । और उसके जलको छूके अपने मनोरथको साधो ॥ ७५ ॥ वहां तुम्हारी सखियां हैं । हे वरवर्णिनि ! तुम दुःख मत करो, तुम्हारी सखियां वहां तुम्हारी मनोवाञ्छा पूर्ण करेंगी" ॥ ७६ ॥ वह गोपी यह आकाशवाणी सुनके, नाना अद्भुत प्रवाहोंसे युक्त, नाना पक्षियोंसे समाकुल, पूर्व्व सरोवरको गई ॥ ७७ ॥ वह कुण्ड फूले हुए कुमुद, कह्लार, कमल नीलोत्पलादिसे शोभित था । उसका घाट और सीढ़ियां पद्मराग मणिसे बंधी थीं ॥

विराजितचतुस्तीरमुपस्पृश्य स्थिता क्षणम् ॥ ७९ ॥ तत्रान्तरे क्वणत्काञ्चीमञ्जुमञ्जीररञ्जितम्। किङ्किणीनां झणत्कारं शुश्राव्रोत्कर्णसम्पुटे ॥ ८० ॥ ततश्च प्रमदावृन्दमाश्चर्य्ययुतयौवनम्। आश्चर्यालङ्कृतिन्यासमाश्चर्य्याकृतिभाषितम् ॥ ८१ ॥ अद्भुताङ्गमपूर्व्वं सा पृथगाश्चर्य्यविभ्रमम्। चित्रसम्भाषणं चित्रहसितालोकनादिकम् ॥ ८२ ॥ मधुराद्भुतलावण्यं सर्व्वमाधुर्य्यसेवितम्। चित्ला-वण्यगतानन्तमाश्चर्य्याकुलसुन्दरम् ॥ ८३ ॥ माश्चर्य्यस्निग्धसौन्दर्य्य-माश्चर्य्यानुग्रहादिकम्। सर्व्वाश्चर्य्यसमुदयमाश्चर्य्यालोकनादिकम् ॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा तत् परमाश्चर्य्यं चिन्तयन्ती हृदा स्थिरत्। पादाङ्गुष्ठेना-

---

७९॥ उसके चारों घाटोंपर बहुतसे फूलवाले वृक्षोंके समूह, बहुत सी कुञ्जें और बहुतसे पेड़ तथा लतायें थीं। उसका जल छूके वह वहां क्षणभर ठहरी ॥ ७९ ॥ तब उत्कण्ठावश उसके कर्णसंपुटमें झन-झनाती हुई, करधनी और सुन्दर मञ्जीर और किङ्किणियोंकी झणत्कार आई ॥ ८० ॥ तब उसने युवतियोंका एक समूह देखा, वे युवतियां अलौकिक यौवनसे पूर्ण थीं। उनके आभूषणोंका ढङ्ग अद्भुत था, उनकी आकृति और वाणी आश्चर्य्यमय थी ॥ ८१ ॥ वे असाधारण रूपसे युक्त, अपूर्व्व, आश्चर्य और भ्रम बढ़ानेवाली थीं। उनका सम्भाषण विचित्र था, उनका आनन्ददायक हंसना विचित्र था ॥ ८२ ॥ उनका अद्भुत लावण्य भी मीठा था, वे सर्व्व माधुर्यसे सेवित थीं। वे चित्-लावण्यसे आढ्य थीं, वे आश्चर्यसे व्याकुल थीं ॥ ८३ ॥ उनका स्नेहमय सौन्दर्य अद्भुत था, अनुग्रहादिक भी असामान्य थे। उनका सर्व्व समुदय ही अद्भुत था, उनके कटाक्ष और अवलोकन भी

लिखन्ती भुवं नम्रानना स्थिता ॥ ८५ ॥ ततस्तासां ससम्भ्रमोऽभूद्
दृष्टीनाञ्च परस्परम्। केयं मदीयजातीया चिरेण न्यस्तकौतुका ॥
८६ ॥ इति सर्व्वाः समालोक्य ज्ञातव्येयमिति क्षणम्। आमन्त्र्य
मन्त्रणाभिज्ञाः कौतुकाद्द्रष्टुमागताः ॥ ८७ ॥ आगत्य तासामेकाथ
नाम्ना प्रियमुदा सती। गिरा मधुरया प्रीत्या तामुवाच
मनस्विनी ॥ ८८ ॥ प्रियमुदोवाच। कासि त्वं कस्य कन्यासि कस्य
त्वं प्राणवल्लभा। जाता कुत्रासि केनासिन्नानीता वागता स्वयम् ॥
८९ ॥ एतच्च सर्व्वमस्माकं कथ्यतां चिन्तया किमु। स्थानेऽस्मिन्
परमानन्दे कस्यापि दुःखमस्ति किम् ॥ ९० ॥ इति पृष्टा तया सा तु

विचित थे ॥ ८४ ॥ यह चकित गोपी उस परमाश्चर्यको देखके कुछ
विलम्ब तक हृदयमें चिन्ता करने लगी। नीचेको मुख करके खड़ी
रही और पैरके अङ्गूठेसे भूमि खोदने लगी ॥ ८५ ॥ तब उन
युवतियोंकी परस्पर दृष्टिमें संभ्रम हुआ "यह बहुत विलम्बसे अनन्त
विस्मयवाली हमारी जातिकी कौन है" ॥ ८६ ॥ ऐसे सबने देखके
निश्चित किया, कि यह कौन है, सो इसी समय जानना चाहिये।
कौतुकसे देखनेको इकट्ठी हुई सब मन्त्रणाभिज्ञ युवतियां मन्त्र करने
लगीं ॥ ८७ ॥ उनमेंसे प्रियमुदा नामवाली एक सखी आई और प्रीति-
पूर्व्वक मधुरवाणीसे कहने लगी ॥ ८८ ॥ प्रियमुदा बोली, तू कौन है?
किसकी कन्या है? किसकी प्राण-प्यारी है? कहां जन्म लिया?
तुम्हें यहां कोई लाया है वा स्वयं ही आई हो ॥ ८९ ॥ चिन्तासे
क्या होगा, सब बातें हमें बताओ, इस परमानन्दमय स्थानमें क्या
किसीको दुःख होता है ॥ ९० ॥ जब प्रियमुदाने ऐसे पूछा, तो नवीना

विनयावनतिं गता । उवाच सुस्वरं तासां मोहयन्ती मनांसि च ॥ ९१ ॥ अर्ज्जुन उवाच । का वास्मि कस्य कन्या वा प्रजाता कस्य वल्लभा । आनीता केन वा चात्र किंवाद्य स्वयमागता ॥ ९२ ॥ एतत् किञ्चिन्न जानामि देवी जानातु तत् पुनः । कथितं श्रूयतां तन्मे मद्वाक्ये प्रत्ययो यदि ॥ ९३ ॥ अस्यैव दक्षिणे पार्श्वे एकमस्ति सरोवरम् । तत्राहं स्नातुमायाता जाता तत्रैव संस्थिता ॥ ९४ ॥ विषमोत्कण्ठिता पश्चात् पश्यन्ती परितो दिशम् । एकमाकाशसम्भूतं ध्वनिमश्रौषमद्भुतम् ॥ ९५ ॥ अनेनैव पथा सुभ्रु गच्छ पूर्व्वसरोवरम् । उपस्पृश्य जलं तस्य साधयस्व मनोरथम् ॥ ९६ ॥ तत्र सन्ति हि सख्यस्ते मा सीद वरवर्णिनि । ता हि दर्शयिष्यन्ति तत्र ते

गोपीका विनयसे मुख नीचेको हुआ । मनोंको मोहती हुई वह सुन्दर स्वरसे उनसे कहने लगी ॥ ९१ ॥ अर्ज्जुन बोले, मैं कौन हूं किसकी कन्या हूं, कहां जन्मी हूं, किसकी प्यारी हूं, मुझे कोई यहां लाया है वा मैं स्वयं ही आ गई हूं ॥ ९२ ॥ इसमें कुछ भी मैं नहीं जानती । देवी इसे जानती है । मेरे वचन पर यदि विश्वास है, तो मेरा कहना सुनो ॥ ९३ ॥ इसीकी दक्षिण ओर एक सरोवर है । वहीं मैं नहानेको गई थी, सो वहीं खड़ी रह गई ॥ ९४ ॥ विषम उत्कण्ठावश फिर मैंने इधर उधर देखा । तब एक अद्भुत आकाशवाणी मैंने सुनी ॥ ९५ ॥ "हे सुन्दर भ्रूलतावाली ! इसी मार्गसे तुम पूर्व्वके कुण्डको चली जाओ । और उसके जलको छूके अपने मनोरथको साधो ॥ ९६ ॥ हे वरवर्णिनि ! तुम दुःख मत करो, तुम्हारी सखियां

वर्त्सीप्सितम् ॥ ९७ ॥ इत्याकर्ण्य वचस्तस्य ततस्त्वत्र समागता । विषादहर्षपूर्णात्मा चिन्ताकुलसमाकुला ॥ ९८ ॥ आगतास्य जलं स्पृष्ट्वा नानाविधशुभध्वनिम् । अश्रौषञ्च ततः पश्चादपश्यं भवतीः पराः ॥ ९९ ॥ एतन्मात्रं विजानामि कायेन मनसा गिरा । एतदेव मया देव्यः कथितं यदि रोचते ॥ १०० ॥ का यूयं तनुजाः केषां क्व जाताः कस्य वल्लभाः । तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सा वै प्रियमुदाब्रवीत् ॥ १०१ ॥ अस्त्वेवं प्राणसख्यः स्मस्तस्यैव च वयं शुभे । वृन्दावनकलानाथविहारदारिकाः सुखम् ॥ १०२ ॥ ता आत्ममुदितास्तेन व्रजबाला इहागताः । एताः श्रुतिगणाः ख्याता एताश्च मुनयस्तथा ॥ १०३ ॥ वयं वल्लवबाला हि कथितास्ते स्वरूपतः । अत्र

वहां तुम्हारी मनोवाञ्छा पूर्ण करेंगी" ॥ ९७ ॥ ऐसा वचन सुनके तभी मैं यहां आई हूं । विषाद और हर्षसे मेरी आत्मा पूर्ण है, मैं चिन्तासे आकुल हूं ॥ ९८ ॥ यहां आके इसका जल छूआ और नाना भांतिकी शुभध्वनियोंको सुना, फिर तुम लोगोंको देखा ॥ ९९ ॥ हे देवियो ! इतना ही मैं जानती हूं । जो रुचा हो, तो मन वचन कर्मसे मैंने यह सच कहा है ॥ १०० ॥ आप कौन हैं ? किसकी लड़की हो ? किसकी प्यारी हो ? उसका यह वचन सुनके उसी प्रियमुदाने कहा ॥ १०१ ॥ हे सुन्दरि ! हम उसी राधारानीकी प्यारी सखियां हैं । हम वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्णसे विहार करनेवाली हैं ॥ १०२ ॥ उसीसे यह हृदयकी प्रसन्न व्रजबालायें यहां आई हैं । ये श्रुतियोंके समूह हैं, ये मुनि लोग हैं ॥ १०३ ॥ राधानायकके अङ्गसे आगे जो परम प्यारी हम गोप-कुमारियां हैं, उनके स्वरूप मैं

राधापतेरङ्गात् पूर्व्वा याः प्रेयसीतमाः ॥ १०४ ॥ नित्यानित्यविहारिण्यो नित्यकेलिभुवस्वराः। एषा पूर्णरसा देवी एषा च रसमञ्जरा ॥ १०५ ॥ एषा रसालया नाम एषा च रसवल्लरी। रसपीयूषधारेयमेषा रसतरङ्गिणी ॥ १०६ ॥ रसकल्लोलिनी चैषा इयञ्च रसवापिका। अनङ्गसेना एषैव इयञ्चानङ्गमालिनी ॥ १०७ ॥ मदयन्ती इयं बाला एषा च रसविह्वला। इयञ्च ललिता नाम इयं ललितयौवना ॥ १०८ ॥ अनङ्गकुसुमा चैषा इयं मदनमञ्जरी। एषा कलावती नाम इयं रतिकला स्मृता ॥ १०९ ॥ इयं कामकला नाम इयं हि कामदायिनी। रतिलोला इयं बाला इयं बाला रतोत्सुका ॥ ११० ॥ एषा च रतिसर्व्वस्वा रतिचिन्तामणिस्त्वसौ। नित्यानन्दाः काश्चिदेता नित्यप्रेमरसप्रदाः ॥ १११ ॥ अतःपरं श्रुति-

---

बताती हूं ॥ १०४ ॥ इस सब नित्य हैं, नित्य-विहारिणी हैं, सदा केलिभूमिमें भ्रमण करती हैं। इस देवीका नाम पूर्णरसा है, यह रसमञ्जरा है ॥ १०५ ॥ इसका नाम रसालया है, यह रस-वल्लरी है, यह रस-पीयूषधारा है, यह रस-तरङ्गिणी है ॥ १०६ ॥ यह रस-कल्लोलिनी है, यह रस-वापिका है, यह अनङ्ग-सेना है, यह अनङ्ग-मालिनी है ॥ १०७ ॥ यह मदयन्ती है, यह बाला है, यह रस-विह्वला है, इसका नाम ललिता है, यह ललितयौवना है ॥ १०८ ॥ यह अनङ्गकुसुमा है, यह मदनमञ्जरी है, यह कलावती है, यह रति-कला कहलाती है ॥ १०९ ॥ यह कामकला है, यह कामदायिनी है, यह युवती रति-लोला और यह रमणी रतोत्सुका है ॥ ११० ॥ यह रति-सर्वस्वा, यह रतिचिन्तामणि, यह नित्यानन्दा, यह नित्य-

गणास्तासां काश्चिदिमाः शृणु । उद्गीतैषा सुगीतेयं कलगीता त्वियं प्रिया ॥ ११२ ॥ एषा कलस्वरा ख्याता बालेयं कलकण्ठिका । विपञ्चीयं क्रमपदा एषा बहुश्रुता मता ॥ ११३ ॥ एषा बहुप्रयोगेयं ख्याता बहुकलावला । इयं कलावती ख्याता मता चैषा क्रियावती ॥ ११४ ॥ अतःपरं मुनिगणास्तासां कतिपया इह । इयमुग्रतपा नाम एषा बहुगुणा स्मृता ॥११५॥ एषा प्रियव्रता नाम सुव्रता च इयं मता । सुरेखेयं मता बाला सुपर्व्वेयं बहुप्रदा ॥११६॥ रत्नरेखा त्वियं ख्याता मणिग्रीवा त्वसौ मता । सुपर्णा चेयमाकल्पा सुकल्पा रत्नमालिका ॥ ११७॥ इयं सौदामिनी सुभ्रूरियञ्च कामदायिनी । एषा च भोगदाख्याता इयं विश्वमता सती ॥ ११८ ॥

प्रेमरसप्रदा हैं ॥ १११ ॥ इसके पश्चात् श्रुतियोंके समूह हैं, उनमेंसे भी विशेष विशेष सुनो; यह उद्गीता, यह सुगीता, यह प्यारी कलगीता है ॥ ११२ ॥ यह कलस्वरा कहलाती है, यह युवती कलकण्ठिका है; यह विपञ्ची है; यह क्रमपदा, यह बहुश्रुता है ॥ ११३ ॥ यह बहुप्रयोगा, यह बहुकलावला, यह कलावती, यह क्रियावती कहलाती है ॥ ११४ ॥ इसके पीछे मुनिगण हैं, उनमें विशेष ये हैं। इसका नाम उग्रतपा है, यह बहुगुणा है ॥ ११५ ॥ यह प्रियव्रता, यह सुव्रता मानी गई है। यह सुरेखा (पाठान्तरमें सुरसा), यह तरुणी बहुपर्वा है। यह बहुप्रदा है ॥ ११६ ॥ यह रत्नरेखा, यह मणिग्रीवा, यह सुपर्णा, ये आकल्पा, सुकल्पा और रत्नमालिका हैं ॥ ११७ ॥ ये सौदामिनी, सुभ्रू, कामदायिनी हैं। यह भोगदा कहलाती है, यह सती विश्वमता है ॥ ११८ ॥

एषा च धारिणी धात्री सुमेधाः कान्तिरप्यसौ। अपर्णेयं सुपर्णेषा मतैषा च सुलक्षणा ॥ ११९ ॥ सुदतीयं गुणवती चैषा सौकालिनी मता। एषा सुलोचना ख्याता इयञ्च सुमनाः स्मृता ॥१२०॥ अस्मृता च सुशीला च रतिसुखप्रदायिनी। अतःपरं गोपबाला वयमत्रागतास्तु याः ॥ १२१ ॥ तासाञ्च परिचीयन्तां काश्चिदम्बुरुहानने। असौ चन्द्रावली चैषा चन्द्रिकेयं शुभा मता ॥ १२२ ॥ एषा चन्द्रावती चन्द्ररेखेयं चन्द्रिकाप्यसौ। एषा ख्याता चन्द्रमाला मता चन्द्रालिका त्वियम् ॥१२३॥ एषा चन्द्रप्रभा चन्द्रकलेयमबला स्मृता। एषा वर्णावली वर्णमालेयं मणिमालिका ॥ १२४ ॥ वर्णप्रभा त्वनाख्याता सुप्रभेयं मणिप्रभा। इयं हारावली तारा मालिनीयं शुभा मता ॥ १२५ ॥ मालतीयमियं यूथी वासन्ती नवमल्लिका। लक्ष्मीयं

यह धारिणी, यह धात्री, यह सुमेधा, यह कान्ति है, यह अपर्णा, यह सुपर्णा, यह सुलक्षणा है ॥ ११९ ॥ यह सुदती, यह गुणवती, यह सौकलिनी, यह सुलोचना, यह सुमना कहलाती है ॥ १२० ॥ यह अस्मृता, यह सुशीला, यह रति-सुख-प्रदायिनी है। अतःपर हम जो यहाँ विद्यमान हैं, सो गोपकुमारी हैं ॥१२१॥ हे कमलमुखि! उनमें भी तुम किसी किसीको पहचानो, यह चन्द्रावली, यह चन्द्रिका, यह शुभा है ॥ १२२ ॥ यह चन्द्रावती, यह चन्द्ररेखा, यह चन्द्रिका है, यह चन्द्रमाला कहलाती है, यह चन्द्रालिका है ॥ १२३ ॥ यह चन्द्रप्रभा, यह अबला चन्द्रकला है। यह वर्णावली, यह वर्णमाला, यह मणिमालिका (पाठान्तरमें वनमालिका) है ॥ १२४ ॥ यह वर्णप्रभा, यह सुप्रभा, यह मणिप्रभा, यह हारावली, यह सुन्दरी तारामालिनी

नवमल्लीयमसौ शेफालिका मता ॥ १२६ ॥ सौगन्धिकेयं कस्तूरी पद्मिनीयं कुमुद्वती । एषैव हि रसोल्लासा चित्रवृन्दासमा त्वियम् ॥ १२७ ॥ रम्भेयमुर्व्वशी चैषा सुरेखा स्वर्णरेखिका । एषा काञ्चनमालेयं सत्यसन्ततिका परा ॥ १२८ ॥ एताः परिकृताः सर्व्वाः परिचेयाः परा अपि । सहिताभिरेताभिर्विहरिष्यसि भामिनि ॥ १२९ ॥ एहि पूर्व्वसरस्तीरे तत्र त्वां विधिवत् सखि । स्नापयित्वाथ दास्यामि मन्त्रं सिद्धिप्रदायकम् ॥१३०॥ इति तां सहसा नीत्वा स्नापयित्वा विधानतः । वृन्दावनकलानाथप्रेयस्या मन्त्रमुत्तमम् ॥ १३१ ॥ ग्राहयामास संक्षेपाद् दीक्षाविधिपुरःसरम् । परं वरुणबीजस्य वह्निबीजपुरस्कृतम् ॥ १३२ ॥ चतुर्थस्वरसंयुक्तं नाद-

---

है ॥ १२५ ॥ यह मालती, यह यूथी, यह वासन्ती, यह नवमल्लिका, यह मल्ली, यह नवमल्ली, यह शेफालिका है ॥ १२६ ॥ यह सौगन्धिका, यह कस्तूरी, यह पद्मिनी, यह कुमुद्वती, चित्रवृन्दाके साथ यह रसोल्लासा है ॥ १२७ ॥ यह रम्भा, यह उर्वशी, यह सुरेखा, यह स्वर्णरेखिका, यह काञ्चनमाला, यह युवती सत्यसन्ततिका है ॥ १२८ ॥ हे भामिनि ! तुमने ये सब देखीं, दूसरियोंको भी देखोगी । इन लोगोंके साथ तुम विहार करोगी ॥ १२९ ॥ हे सखि ! पूर्व्वकुण्डके घाट पर आओ । वहाँ तुम्हें विधिपूर्व्वक स्नान करके सिद्धि देनेवाला मन्त्र दूंगी ॥ १३० ॥ इतना कहके उस सखीने उस नवीनाको अपने साथ लिया और उसे विधिवत् स्नान कराया । और वृन्दावन-चन्द्रकी प्रियाका सर्वश्रेष्ठ मन्त्र दीक्षाकी विधिके साथ संक्षेपसे ग्रहण कराया । वह मन्त्र वरुण-बीजसे युक्त और अग्नि-बीजसे पुरस्कृत

बिन्दुविभूषितम्। पुटितं प्रणवाभ्यां च त्रैलोक्ये चातिदुर्लभम्॥१३३॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण सिद्धिः सर्वा प्रजायते। पुरश्चर्याविधिर्ध्यानं
होमसंख्या जपस्य च॥१३४॥ तप्तकाञ्चनगौराङ्गीं नानालङ्कार-
भूषिताम्। आश्चर्यरूपलावण्यां सुप्रसन्नां वरप्रदाम्॥१३५॥
कह्लारैः करवीराद्यैश्चम्पकैः कमलैरपि। सुगन्धकुसुमैरन्यैः
सौगन्धिकसमन्वितैः॥१३६॥ पाद्यार्घ्याचमनीयैश्च धूपदीपै-
र्मनोहरैः। नैवेद्यैर्विविधैर्दिव्यैः सखीवृन्दाहृतैर्मुदा॥१३७॥
सम्पूज्य विधिवद्देवीं जप्त्वा लक्षमनुं ततः। हुत्वा च विधिना
स्तुत्वा प्रणम्य दण्डवद्भुवि॥१३८॥ ततः सा संस्तुता देवी निमेष-

---

था॥१३१।१३२॥ वह चतुर्थ स्वरसे शोभित और नादबिन्दुसे विराजित, दो प्रणवोंसे (ओङ्कारों) पुटित होके त्रिलोकीमें अति दुर्लभ था॥१३३॥ मन्त्रके ग्रहण करने होसे सब सिद्धियां होती हैं। उन्होंने उस मन्त्रका पुरश्चरण, विधि, ध्यान, होम-संख्या, जपादिक भी बताये॥१३४॥ अर्जुनीने तप्त-काञ्चनकी न्याईं दीप्त शरीरवाली, सर्व भूषणोंसे भूषित, अद्भुत रूप और लावण्यसे आढ्य, वर देनेवाली, सुप्रसन्न-मुखी देवीका ध्यान धरा॥१३५॥ कह्लार, करवीरादि चम्पक, कमल, अन्यान्य सुगन्ध पुष्प, भांति भांतिके मनोहर गन्धादिक, पाद्य, अर्घ्य, आचमन, मनोहर धूप, दीप, सखियों द्वारा हर्षपूर्वक लाये विविध प्रकारके नैवेद्य आदिकसे विधिवत् देवीकी पूजा की और लाख मनुमन्त्र जपे। विधानपूर्वक होम किया और स्तुति करके लकुटवत् धर्त्तीमें सिरके प्रणाम किया॥१३६—१३८॥ एक निमेष झपकने न पावे, इतनी देरमें अपनी इच्छावश निज साथ साक्षात्-

स्थितान्तरा। परिकल्प्य निजां छायां माययात्मसमीहया ॥
१३९ ॥ पार्श्वस्थ प्रेयसीं तत्र स्थापयित्वा बलादिव । सखीभिरा
वृता हृष्टा शुद्धैः पूजाजपादिभिः ॥ १४० ॥ स्तवैर्भक्त्या प्रणामैश्च
कृपयाविरभूत् तदा । हेमचम्पकवर्णाभा विचित्राभरणोज्ज्वला ॥
१४१ ॥ अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यलालित्यमधुराकृतिः । निष्कलङ्कशरत्-
पूर्णकलानाथशुभानना ॥ १४२ ॥ स्निग्धमुग्धस्मितालोकजगत्त्रय-
मनोहरा । निजया प्रभयात्यन्तं द्योतयन्ती दिशो दश ॥ १४३ ॥
अब्रवीदथ सा देवी वरदा भक्तवत्सला । देव्युवाच । मत्सखीनां वचः
सत्यं तेन त्वं मे प्रिया सखी ॥ १४४ ॥ समुत्तिष्ठ समागच्छ कामं ते
साधयास्यहम् । अर्ज्जुनी सा वचो देव्याः श्रुत्वा चात्ममनीषितम् ॥१४५

भात कल्पित करके वह स्तुति की हुई, देवी प्रकट हुई ॥ १३९ ॥
अपनी पासवाली सखीको बलसे वहां सिंहासनमें बैठा दिया और पूजा
जप आदिसे प्रसन्न होके सखियोंसे घिरी हुई, प्रकट हुई ॥ १४० ॥ स्वर्ण
अथवा चम्पक पुष्पके रङ्ग जैसी आभासे मण्डित, विचित्र आभूषणोंसे
देदीप्यमान, देवी भक्ति, स्तुति, प्रणति पर प्रसन्न होके कृपा पूर्व्वक
प्रकटित हुई ॥१४१॥ उनके अङ्ग प्रत्यङ्गमें लावण्य था, उनके लालित्यसे
उनका मधुर वेष था। निष्कलङ्क शरद् ऋतुके पूर्णचन्द्रकी न्याईं
उनका मुख उज्ज्वल था ॥ १४२ ॥ स्नेह और मोह-भरी उनकी
मुसकान थी; वह तिलोकीके मनको मोहती और अपनी प्रभासे दशों
दिशाओंको अत्यन्त उज्ज्वल करती थीं ॥ १४३ ॥ वरदायिनी, भक्त-
वत्सला देवीने तब यह कहा। देवी बोलीं; मेरी सखियोंके वचन सत्य
हैं, सो तू भी मेरी प्यारी सखी है ॥ १४४ ॥ उठ और चल, तेरे

पुलकाङ्कुरसुग्धाङ्गी वाष्पाकुलविलोचना। पपात चरणे देव्याः पुनश्च प्रेमविह्वला॥ १४६ ॥ ततः प्रियंवदां देवीं समुवाच सखीमिमाम्। पाणौ गृहीत्वा मत्सङ्गे समाश्वास्य समानय ॥१४७॥ ततः प्रियंवदा देव्या आज्ञया जातसम्भ्रमा। तां तथैव समादाय सङ्गे देव्या जगाम ह॥ १४८ ॥ गत्वोत्तरसरस्तीरे स्नापयित्वा विधानतः। सङ्कल्पादिकपूर्व्वन्तु पूजयित्वा यथाविधि॥ १४९ ॥ श्रीगोकुलकलानाथमन्त्रं तत्र सुसिद्धिदम्। ग्राहयामास तां देवी कृपया हरिवल्लभा॥ १५० ॥ व्रतं गोकुलनाथाख्यं पूर्व्वं मोहन-भूषितम्। सर्व्वसिद्धिप्रदं मन्त्रं सर्व्वतन्त्रेषु गोपितम्॥ १५१ ॥ गोविन्देरितविज्ञासौ ददौ भक्तिमचञ्चलाम्। ध्यानञ्च कथितं तस्यै

मनोरथको पूर्ण करें। अपनी मनोवाञ्छाकी बात देवीके सुखसे सुनके अर्ज्जुनीका शरीर हर्षसे रोमाञ्चित और सुग्ध हुआ। उसके नेत्रोंमें प्रेमके आंसू आये, वह प्रेमसे विह्वल होके देवीके चरणोंमें गिर पड़ी॥ १४५। १४६॥ तब देवीने अपनी प्रियम्वदा सखीसे कहा, इसको धैर्य दे और इसके हाथ पकड़के मेरे साथ ले आ॥ १४७॥ देवीकी आज्ञासे सम्भ्रम-सहित तब प्रियम्वदा अर्ज्जुनीको लेकर देवीके साथ गई॥ १४८॥ उत्तरी कुण्डके तीरपर जाके, विधिपूर्व्वक स्नान करके, सङ्कल्प आदिसे युक्त यथा विधि पूजा की॥ १४९॥ श्रीराधा देवीने कृपापूर्व्वक अर्ज्जुनीको सर्व्वसिद्धिप्रद श्रीगोकुलनाथ मन्त्र दिया॥ १५०॥ यह सब सिद्धियोंका देनेवाला मन्त्र सब तन्त्रोंमें गोपित है और मोहन मन्त्रसे भूषित गोकुलनाथ नामे व्रत भी अपूर्व्व है॥१५१॥ देवीने गोविन्दके मनोरथको जानकर उसको निश्चला भक्ति दी और

मन्त्रराजञ्च मोहनम् ॥ १५२ ॥ उक्तञ्च मोहने तन्त्रे स्मृतिरस्यस्य सिद्धिदा । नीलोत्पलदलश्यामं नानालङ्कारभूषितम् ॥ १५३ ॥ कोटिकन्दर्पलावण्यं ध्यायेद्रासरसाकुलम् । प्रियंवदामुवाचेदं रहस्यं पावनेच्छया ॥ १५४ ॥ श्रीराधिकोवाच । अस्या यावद्भवेत् पूर्णं पुरश्चरणमुत्तमम् । तावद्धि पालयैनां त्वं सावधाना सखी-भिः ॥ १५५ ॥ इत्युक्त्वा सा ययौ कृष्णपादाम्बुजसन्निधिम् ॥ छायामात्मभवां स्वात्मप्रेयसीनां निधाय च ॥ १५६ ॥ तस्थौ तत्र यथा पूर्वं राधिका कृष्णवल्लभा । अत्र प्रियंवदादेशात् पद्ममष्ट-दलं शुभम् ॥ १५७ ॥ गोरोचनाभिर्निर्माय कुङ्कुमेनापि चन्दनैः ।

उस मोहन मन्त्रराजका ध्यान बताया ॥ १५२ ॥ मोहन तन्त्रमें वह ध्यान कहा गया है, वह स्मरण मात्र सिद्धियोंको देता है ध्यान यों है, कृष्ण नीलकमलकी पङ्खड़ीकी नाईं सांवले हैं, नानाप्रकारके आभूषणोंसे भूषित हैं, करोड़ों कामदेवोंका सा उनका सौन्दर्य है, वह रासके रससे आकुल हैं, उन्हींका ध्यान धरे। अर्ज्जुनीको पवित्र करनेकी इच्छासे राधिका जीने यह रहस्य प्रियम्वदासे कहा ॥ १५३ । १५४ ॥ श्रीराधिकाजी बोलीं, हे सखी ! जबतक इसका उत्तम पुरश्चरण पूरा हो, तबतक सखियोंके साथ तुम इसका पालन करो ॥ १५५ ॥ इतना कहके राधा अपनी और अपनी सखियोंकी छायाको निज शरीरमें लीन करके कृष्णके चरणकमलोंके पास गईं ॥ १५६ ॥ आगेकी तरह कृष्णकी प्यारी राधिका स्थित हुईं । तब प्रियम्वदाकी आज्ञासे अर्ज्जुनाने गोरोचनसे सुन्दर अष्टदल पद्म बनाया और केशर, चन्दन आदि नानाप्रकारके द्रव्योंको मिलाके अद्भुत

एभिर्नानाविधैर्द्रव्यैः संमिश्रैः सिद्धिदायकम्॥ १५८ ॥ लिखिला यन्त्रराजञ्च शुद्धं मन्त्रं तदद्भुतम्। कृत्वा न्यासादिकं पाद्यमर्घ्यञ्चापि यथाविधि॥ १५९ ॥ नानर्तुसम्भवैः पुष्पैः कुङ्कुमैरपि चन्दनैः। धूपदीपैश्च नैवेद्यैस्ताम्बूलैस्सुखवासदैः॥ १६० ॥ वासोऽलङ्कारमाल्यैश्च सम्पूज्य नन्दनन्दनम्। परिवारैः समं सर्व्वैः सायुधञ्च सवाहनम्॥ १६१ ॥ स्तुत्वा प्रणम्य विधिवच्चेतसा स्मरणं ययौ। ततो भक्तिवशो देवो यशोदानन्दनः प्रभुः॥ १६२ ॥ स्मितावलोकितापाङ्गतरङ्गिततरेङ्गितम्। उवाच राधिकां देवीं तामानय द्रुताशु च॥ १६३ ॥ आज्ञप्ता चैव सा देवी प्रस्थाप्य शारदां सखीम्। तामानिनाय सहसा पुरो वासुरमात्मनः॥१६४॥ श्रीकृष्णस्य पुरस्तात् सा समेत्य प्रेमविह्वला। पपात काञ्चनीभूमौ पश्यन्ती सर्व्वमद्भुतम्॥१६५

शुद्ध, सिद्धिका देनेवाला, यन्त्रोंका राजा मन्त्र लिखा। यथाविधि उसका न्यास, अर्घ्य और पाद्य किया॥ १५७—१५९॥ नाना ऋतुओंके फूलोंसे, केशरसे, चन्दनसे, धूपसे, दीपसे, नैवेद्यसे, सुखके शुद्ध करनेवाले पानसे॥ १६०॥ वस्त्र, भूषण, मालाओंसे परिवार, आयुध; और वाहनों सहित नन्दनन्दनकी भली भांति पूजा की॥ १६१॥ विधिपूर्व्वक स्तुति; प्रणाम आदि द्वारा भगवान्‌का ध्यान किया। तब जगन्नाथ, यशोदानन्दन श्रीकृष्णदेव भक्तिके वश हुए॥ १६२॥ सुन्दर रापटसे कटाक्षों द्वारा प्रयोजन-सहित देखते हुए श्रीकृष्ण राधिकासे बोले, "यहां अर्ज्जुनीको लाओ"॥ १६३॥ यह सुनके राधिका जीने शारदा सखीको भेजके शीघ्र ही उसे श्रीकृष्णके आगे विद्यमान किया॥ १६४॥ अर्ज्जुनी प्रेमसे विकल होकर श्रीकृष्णके आगे आई और सब वस्तुओंको

दुःखात् कथञ्चिदुत्थाय शनैरुन्मील्य लोचने। स्वेदाश्रुःपुल-कोत्कम्पभावभाराकुला सती॥ १६६॥ ददर्श प्रथमं तत्र स्थलं चित्रं मनोरमम्। ततः कल्पतरुस्तत्र लसन्मरकतच्छदः॥ १६७॥ प्रवालपल्लवैर्युक्तः कोमलो हेमदण्डकः। स्फटिकप्रवालमूलश्च कामदः कामवस्यदाम्॥ १६८॥ प्रार्थकाभीष्टफलदस्तस्याधो रत्नमन्दिरम्। रत्नसिंहासनं तत्र तत्राष्टदलपद्मकम्॥ १६९॥ शङ्खपद्मनिधी तत्र सव्यापसव्यसंस्थितौ। चतुर्दिक्षु यथास्थानं स्थिताः कामधेनवः॥ १७०॥ परितो नन्दनोद्यानं मलयानिलसेवितम्। ऋतूनाञ्चैव सर्व्वेषां कुसुमानां मनोहरः॥ १७१॥ आमोदैर्वासितं सर्व्वं काला-

---

अलौकिक देखकर सुवर्णमय पृथ्वीपर गिर पड़ी॥ १६५॥ कष्टसे किसी तरह उठके उसने अपनी दोनों आंखें खोलीं। उस सतीके पसीना आगया था, रोमाञ्च और कम्पके भावसे वह युक्त हो गई थी॥ १६६॥ पहले उसने मनोहर, विचित्र स्थान देखा। फिर कल्प-वृक्ष देखा, उसके पत्ते मरकत मणिके थे॥ १६७॥ नई कोंपले मूङ्गेकी थीं, धड़ सोनेका होनेपर कोमल था। जड़ स्फटिक और विद्रुमकी थी। कामनावालोंको वह मनोवाञ्छित वरोंका देनेवाला था॥ १६८॥ मांगनेवालोंके इच्छित फलोंको देता था। उसके नीचे रत्नका मन्दिर था। वहां रत्न हीका सिंहासन था, उसपर अष्टदल पद्म था॥ १६९॥ उसके दाहिनी और बांई ओर शङ्ख और पद्म, दो निधियां थीं। चारों दिशाओंमें उचित स्थानोंपर कामधेनु थीं॥ १७०॥ चारों ओर नन्दनवन था। उसमें मलयाचलकी पवन चल रही थी, सब ऋतुओंके मनोहर पुष्प फल रहे थे॥ १७१॥ उनकी सुगन्धसे वह उद्यान अगरकी सुगन्धको

सुरपराजितम्। मकरन्दकणावृष्टिशीतलं सुमनोहरम्॥ १७२॥
मकरन्दरसास्वादमत्तानां भृङ्गयोषिताम्। वृन्दशो झङ्कृतैः शश्व-
च्चैवं मुखरितान्तरम्॥ १७३॥ कलकण्ठीकपोतानां सारिका-
शुकयोषिताम्। अन्यासां पक्षिकान्तानां कलनादैर्निनादितम्॥
१७४॥ नृत्यैर्मत्तमयूराणामाकुलं स्मरवर्द्धनम्। रसाम्बुसेकसंस्पृष्ट-
तमाङ्कनतनुद्युतिम्॥ १७५॥ सुस्निग्धनीलकुटिलकषायावासित-
कुन्तलम्। मदमत्तमयूराद्यशिखण्डाबद्धचूडकम्॥ १७६॥ भृङ्ग-
सेवितसव्योपन्नमपुष्पावतंसकम्। लोलालकालिविलसत्कपोला-
दर्शकाशितम्॥ १७७॥ विचित्र-तिलकोद्दामभालशोभाविरा-
जितम्। तिलपुष्पपतङ्गेशचञ्चुमञ्जुलनासिकम्॥ १७८॥ चारु-

पराजित कर रहा था। उसमें फूलोंके रसके कणोंकी ठण्डी और मनोहर वर्षा हो रही थी॥ १७२॥ परागके रसके स्वादसे मत्त होके भ्रमरियोंके समूह झङ्कार कर रहे थे। वह शब्द इधर उधर गूञ्ज रहा था॥ १७३॥ कोयल, कपोत, मैना, शुकी और अन्य पक्षियोंका सुन्दर निनाद वहां गूञ्ज रहा था॥ १७४॥ मत्त मयूर वहां नाचते थे, मेघकी बूंदोंकी उत्कण्ठासे उनकी द्युति आकुल और कामदेवकी बढ़ानेवाली थी॥ १७५॥ वहां सिंहासनपर कृष्णकी मूर्त्ति स्थित थी, वह चिकने, काले और घूंवराले बालोंसे युक्त थी। उनपर लाल टोपी थी। मदमत्त मयूरोंके सुन्दर पङ्खोंका चूड़ा बना था॥ १७६॥ फूलोंसे गूंथी हुई, भ्रमरपङ्क्तिकी नाईं दर्पणवत् कपोलोंकी दाहिनी ओर चञ्चल लट छूट रही थी॥ १७७॥ विचित्र तिलकोंके उठानसे उसका मस्तक शोभित था। उसकी नासिका तिलके फूल

बिम्बाधरं मन्दस्मितदीपितमन्मथम् । वन्यप्रसूनसङ्काशग्रैवेयक-
मनोहरम् ॥ १७९ ॥ मदोन्मत्तभ्रमद्भृङ्गीसहस्रकृतसेवया । सुर-
द्रुमस्रजा राजत्पुष्टपीनांसकद्वयम् ॥ १८० ॥ मुक्ताहारस्फुर-
द्वक्षःस्थलकौस्तुभभूषितम् । श्रीवत्सलक्षणं जानुलम्बिबाहुमनो-
हरम् ॥ १८१ ॥ गम्भीरनाभि पञ्चास्यमध्यमध्यातिसुन्दरम् ।
सुजातद्रुमसद्वृत्तमद्भुरजानुमञ्जुलम् ॥ १८२ ॥ कङ्कणाङ्गदमञ्जीरै-
र्भूषितं भूषणैः परैः । पीतांशुकलयाविष्टनितम्बघटनायकम् ॥१८३॥
लावण्यैरपि सौन्दर्य्यैजितकोटिमनोभवम् । वेणुप्रवर्त्तितैर्गीतरागै-
रपि मनोहरैः ॥ १८४ ॥ मोहयन्तं सुखाम्भोधौ मज्जयन्तं जगत्-

अथवा गरुड़की चोंचकी नाईं सुन्दर थी ॥ १७८ ॥ सुन्दर बिम्बफलकी नाईं होठोंपर मन्द मुसकान कामदेवको उद्दीपन करती थी। वनके फूल, तुलसी आदिसे युक्त मनोहर कण्ठी थी ॥ १७९ ॥ उस मूर्त्तिके मोह बढ़ानेवाली, दोनों पुष्ट कन्धोंपर कल्पवृक्षके फूलोंकी माला शोभायमान थीं, उस मालापर मदमत्त सैकड़ों भ्रमर गुञ्जार रहे थे ॥ १८० ॥ कौस्तुभ मणिसे जगमगाता हुआ तथा श्रीवत्ससे चिन्हित उसके सुन्दर वक्षःस्थल पर मोतियोंका हार शोभित था। मनोहर भुजा जानु तक लम्बी थी ॥ १८१ ॥ नाभि गम्भीर थी। कटिप्रदेश सिंहकी कटिकी नाईं सुन्दर था। सुन्दर जानु सुजातद्रुमसे गोल शोभित थी ॥ १८२ ॥ वह प्रतिमा सोनेके भुजबन्ध, कङ्कण और नूपुरोंसे शोभित थी। पुष्ट घटराजके सदृश नितम्बोंपर पीताम्बर शोभायमान था ॥ १८३ ॥ लावण्यसे वह मूर्त्ति सुन्दरतामें कोटि कामको जीतती थी। मनोहर रागयुक्त गीत गानेको वह वेणु

लयम्। प्रत्यङ्गमदनावेशधरं रासरसालसम्॥ १८५॥ चामरं व्यजनं माल्यं गन्धं चन्दनमेव च। ताम्बूलं दर्पणं पानपात्रं चर्व्वितपात्रकम्॥ १८६॥ अन्यत् क्रीड़ाभवं यद्यत् तत्सर्व्वञ्च पृथक् पृथक्। रसालं विविधं यन्त्रं कलयन्तीभिरादरात्॥१८७॥ यथास्थाननियुक्ताभिः पश्यन्तीभिस्तदिङ्गितम्। तन्मुखाम्भोजदत्ताक्षिचञ्चलाभिरनुक्रमात्॥ १८८॥ श्रीमत्या राधिकादेव्या वामभागे ससम्भ्रमम्। आराधयन्त्या ताम्बूलमर्पयन्त्या शुचिस्मितम्॥ १८९॥ समालोक्यार्जुनीयासौ मदनावेशविह्वला। ततस्ताञ्च तथा ज्ञात्वा हृषीकेशोऽपि सर्व्ववित्॥ १९०॥ तस्याः पाणिं गृहीत्वैव सर्व्व-

---

बजानेमें तत्पर थी॥ १८४॥ उसके प्रत्यङ्गमें कामदेवका आवेश था, वह रासके रससे आलस्य-युक्त थी। त्रिलोकीको मोहके वह ब्रह्माण्डको सुख-समुद्रमें मग्न करती थी॥ १८५॥ उसके चारो ओर सखियां थीं। कोई चमर, कोई व्यजन, कोई माला, कोई सुगन्धि द्रव्य, कोई चन्दन, कोई ताम्बूल, कोई दर्पण, कोई चषक, कोई पीकदान, वे सखियां विविध प्रकारके अन्य क्रीड़ाके योग्य वस्तुओं तथा सुन्दर पात्रोंको पृथक् पृथक् ग्रहण किये हुए थीं॥ १८६। १८७॥ वे सब यथोचित स्थानोंपर नियत थीं और कृष्णके इशारे होकी ओर देखती थीं। वे चञ्चला युवतियां कृष्णके ही मुखकमलको एकटक अनुक्रमसे देख रही थीं॥ १८८॥ कृष्णके बांये भागमें श्रीमती राधिका देवी संभ्रम-सहित बैठी थीं। वह स्वयं ताम्बूल खाये हुए थीं और सुन्दर मुसकाके कृष्णको पान दे रही थीं॥ १८९॥ कामदेवके आवेशसे विकल होके अर्जुनीने वह सब रहस्य देखा। सर्व्वज्ञ

क्रीड़ावनान्तरे। यथाकामं रहो रेमे महायोगेश्वरो विभुः ॥१९१॥ ततस्तस्याः स्कन्धदेशे प्रदत्तभुजपल्लवः। आगत्य शारदां प्राह पश्चिमेऽस्मिन् सरोवरे ॥ १९२ ॥ शीघ्रं स्नापय तन्वङ्गीं क्रीड़ाश्रान्तां मृदुस्मिताम्। ततस्तां शारदादेवी तस्मिन् क्रीड़ासरोवरे ॥ १९३ ॥ स्नानं कुर्व्वित्युवाचैनां सा च श्रान्ता तथाकरोत्। जलाभ्यन्तर-माप्तासौ पुनरर्ज्जुनतां गतः ॥ १९४ ॥ उत्तस्थौ यत्र देवेशः श्रीम-द्वैकुण्ठनायकः। दृष्ट्वा तमर्ज्जुनं कृष्णो विषण्णं भग्नमानसम् ॥१९५॥ मायया पाणिना स्पृष्ट्वा प्रकृतं विदधे पुनः। श्रीकृष्ण उवाच। धनञ्जय त्वामाशंसे भवान् प्रियसखो मम ॥१९६॥ त्वत्समो नास्ति

भगवान् श्रीकृष्णने भी उसे कामपीड़िताबस्थामें जाना ॥ १९० ॥ महा-योगेश्वर, जगन्नाथ श्रीकृष्णने उसका हाथ पकड़के सर्व्व क्रीड़ावनकी रहस्यसे उसके साथ यथेच्छ विहार किया ॥ १९१ ॥ तब उसके कन्धोंपर भुजपल्लवको रखा और शारदा सखीको बुलाके कहा, "इस सून्ध्राङ्गीको शीघ्र ही पश्चिमके कुण्डमें स्नान कराओ। यह मृदु मुसकानेवाली विहारमें थक गई है।" शारदा सखी तब उसे उस क्रीड़ा-कुण्डमें ले गई और अर्ज्जुनीसे कहा, "उसमें स्नान करो।" उस थकी हुईने भी वैसा ही किया। जलके भीतर पहुंचके अर्ज्जुनी फिर अर्ज्जुन हुई ॥ १९२—१९४ ॥ उठके देखते हैं, तो वह देवेश्वर, श्रीमान् वैकुण्ठनाथ, कृष्ण बैठे हैं। उन्होंने विषादयुक्त, टूटे हृदयवाले अर्ज्जुनको ॥ १९५ ॥ मायाद्वारा हाथसे पकड़ा और फिर संज्ञा कराई। श्रीभगवान् बोले, हे अर्ज्जुन! तुम्हारी हम प्रशंसा करते हैं, तुम्हीं हमारे प्रिय सखा हो ॥ १९६ ॥ तुम्हारे समान तीनों लोकोंमें मेरा रहस्य

वे कोऽपि इहोवेत्ता जगन्ती। यद्रहस्यं त्वया पृष्टमनुभूतञ्च तत् पुनः॥ १९७॥ आख्याते यदि तत् कस्मै शपसे मां तदार्जुन। सनत्कुमार उवाच। इति प्रसादमासाद्य शपथैर्जातनिर्णयः॥१९८॥ ययौ कृष्णपदास्तुत्यात् कथाशाद्भुतवर्त्मनिः। इति ते कथितं सर्वं रहो यद्नोदरं मम॥ १९९॥ गोविन्दस्य तथा वाले कथने शपथ-स्तव। ईश्वर उवाच। इति श्रुत्वा वचस्तस्य सिद्धिलाभपरिगतः॥ २००॥ नरनारायणावासे वृन्दारण्यमुपाव्रजत्। तत्रास्तेऽद्यापि कृष्णस्य नित्यलीलाविहारवित्॥ २०१॥ नारदेनापि पृष्टोऽहं नाब्रवं तद्रहस्यकम्। प्राप्तं तथापि तेनेदं प्रणतिमुपेत्य च॥२०२॥ तुभ्यं यत् तु मया प्रोक्तं रहस्यं स्नेहकारणात्। तन्न कस्मैचिदा-

---

जाननेवाला कोई नहीं है। और जो गुप्त तत्त्व तुमने पूछा और अनुभूत किया॥ १९७॥ यदि किसी अपात्रसे कहोगे, तो हे अर्ज्जुन! मानों हमें शाप दोगे। सनत्कुमार बोले, इस भांति भगवान्‌की प्रसन्नता प्राप्त करके और शपथसे बातका निश्चय करके, प्रसन्नचित्त अर्ज्जुन इस तत्त्वके अद्भुत भाव स्मरणपूर्व्वक अपने घर गये। जो मुझे विदित था, सो मैंने तुमसे कहा॥ १९८। १९९॥ उसी भांति तुम्हें भी इनके कहनेमें गोविन्दकी शपथ है। महादेवजी बोले, उसके ऐसे वचन सुनके उसे उपगति सिद्धि हुई॥ २००॥ नरनारायणके वास श्रीवदरी क्षेत्रसे वह वृन्दावनको आये। वहीं वह कृष्णकी नित्य लीला केलियोंका जाननेवाले रहते हैं॥ २०१॥ नारदने भी मुझसे यह तत्त्व पूछा था, मैंने उनसे भी न कहा। पर नारदने भी धैर्य और संज्ञा धारण करके इसे पाया॥ २०२॥ प्रेमसे यह तुमसे जो

ख्येयं त्वया भद्रे स्वयोनिवत् ॥ २०३ ॥ इमं श्रीभगवद्भक्तमहिमा-
ध्यायमद्भुतम् । यः पठेत शृणुयाद्वापि स रतिं विन्दते हरौ ॥२०४॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

पार्वत्युवाच । वृन्दावनरहस्यञ्च बहुधा कथितं विभो । केन
पुण्यविशेषेण नारदः प्रकृतिं गतः ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच । एकदा-
श्चर्यवृत्तान्तं मया जिज्ञासितं पुरा । ब्रह्मणा कथितं गुह्यं श्रुतं
कृष्णमुखाम्बुजात् ॥२॥ नारदः पृष्टवान् सद्यं तदाहं प्राप्तवानिदम् ।

मैंने यह रहस्य कहा है, किसीसे भी न कहना। हे भद्रे !
स्वजातिकासा कार्य मत करना ॥ २०३ ॥ श्रीमान् भगवान्के भक्तोंकी
महिमाका यह अद्भुत अध्याय है। जो इसे पढ़ता है वा सुनता है,
वह कृष्णमें भक्ति पाता है ॥ २०४ ॥

छठवां अध्याय समाप्त।

पार्वती जी बोलीं, हे विभो ! वृन्दावनका रहस्य तो आपने बहुत
बार कहा। अब यह कहिये, कि फिर नारदने किस पुण्य विशेषसे
संज्ञा प्राप्त की ॥ १ ॥ महादेव जी बोले, पहले एकबार मैंने ब्रह्मासे
अद्भुत वृत्तान्त पूछा था। ब्रह्माने वह तत्त्व कृष्णके मुखारविन्दसे
सुना था। उन्होंने मुझसे कहा ॥ २ ॥ जब नारदने मुझसे यह प्रश्न

अहं वक्तुं न शक्नोमि तन्माहात्म्यं कथञ्चन ॥३॥ किं कुर्व्वे भपनं तस्य स्मृत्वा सीदामि मानसे। इति श्रुत्वा मम वचो दुर्म्मनाः सोऽभवद् यदा ॥ ४ ॥ तदा ब्रह्माणमाहूय अहमादिष्टवान् प्रिये। त्वया यत् कथितं मह्यं नारदाय वदस्व तत् ॥ ५ ॥ ब्रह्मा तदा मम वचो निशम्य सहनारदः। जगाम कृष्णासविधं नत्वापृच्छत् तदैव तु ॥६॥ ब्रह्मोवाच। किमिदं द्वात्रिंशद्वनं वृन्दारण्यं विशाम्पते। श्रोतुमिच्छामि भगवन् यदि योग्योऽस्मि मे वद ॥७॥ श्रीभगवानुवाच। इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम्। यत्रेमे पशवः साक्षाद् वृक्षाः कीटा नरामराः ॥ ८ ॥ ये वसन्ति ममांस्ते ते मृता यान्ति ममान्तिकम्। अत्र या गोपपत्न्यश्च निवसन्ति ममालये ॥९॥ योगिन्य-

---

पूछा था, तभी यह तत्त्व हमने जाना था। क्योंकि मैं तो उसका माहात्म्य किसी भांति न कह सका ॥ ३ ॥ मैं क्या करूं ? उस तत्त्वके कहनेके आपको स्मरण करके मुझे कष्ट होता है। मेरे इस वचनको सुनके उनका मन बिगड़ा ॥ ४ ॥ हे प्रिये तब मैंने ब्रह्माको बुलाके सब वृत्तान्त कहा, कि आपने जो मुझसे कहा है, सो नारदसे कहिये ॥ ५ तब ब्रह्मा मेरे वचनोंको सुनके नारदके साथ कृष्णके पास गये और नमस्कार करके उनसे पूछा ॥ ६ ॥ ब्रह्मा बोले, हे भगवन्! हे भक्तोंके नाथ! यह बत्तीस वनोंसे युक्त वृन्दावन क्या है ? मैं इसे सुनना चाहता हूं; जो मैं इस रहस्यके योग्य हूं, तो मुझसे कहिये ॥ ७ ॥ श्रीभगवान् बोले, यह रमणीय वृन्दावन है, सो केवल मेरा धाम है। यहां मेरे पशु, वृक्ष, कीट, नरादि साक्षात् देव हैं ॥ ८ ॥ जो मेरे ही शरणमें रहते हैं, वे मरके मेरी ही शरणको जाते हैं।

स्तास्तु एवं हि मम देवाः परायणाः। पञ्चयोजनमेवं हि वनं मे देवरूपकम् ॥ १० ॥ कालिन्दीयं सुषुम्णाख्या परमामृतवाहिनी ॥ यत्र देवाश्च भूतानि वर्त्तन्ते सूक्ष्मरूपतः ॥ ११ ॥ सर्व्वतो व्यापकश्चाहं न त्यक्ष्यामि वनं क्वचित्। आविर्भावस्तिरोभावो भवेदत्र युगे युगे ॥ १२ ॥ तेजोमयमिदं स्थानमदृश्यं चर्म्मचक्षुषाम्। रहस्यं मे प्रभावञ्च पश्य वृन्दावनं युगे ॥ १३ ॥ ब्रह्मादीनां देवतानां न दृश्यं तत् कथञ्चन। ईश्वर उवाच। तच्छ्रुत्वा नारदो नत्वा कृष्णं ब्रह्माणमेव च ॥ १४ ॥ आजगाम ह भूर्लोके मिश्रकं नैमिषं वनम्। तत्रासौ सत्कृतश्चापि शौनकाद्यैर्मुनीश्वरैः ॥ १५ ॥ पृष्टश्चाप्यागतो

इस मेरे परम धाममें जो गोपियां बसती हैं ॥ ९ ॥ वो योगिनियां और तपस्विनियां हैं। उन तपः-परायणोंका मैं ही देव हूं। साक्षात् कृष्णरूपी यह मेरा वन पांच योजन है ॥ १० ॥ यह जो यमुना जी हैं, वो सुषुम्ना नाम अमृतवाहिनी नाड़ी हैं। जिसमें देव और समस्त भूतगण सूक्ष्मरूपसे वर्त्तते हैं ॥ ११ ॥ मैं सब ठौर व्यापक हूं, इस वनको मैं नहीं छोड़ता। युग युगमें मेरा यहां आविर्भाव और तिरोभाव अर्थात् अवतार और परम धाम गमन होता है ॥ १२ ॥ यह स्थान तेजोमय है। मानवी चर्म्म-निर्म्मित आंखोंसे यह नहीं दीख सकता। मेरे रहस्य और प्रभाव, वृन्दावनको तुम इस युगमें देखो ॥ १३ ॥ ब्रह्मा आदि देवताओंसे भी वह किसी प्रकार दृश्य नहीं है। महादेव बोले, नारदने यह सुनके कृष्ण तथा ब्रह्माको नमस्कार किया ॥ १४ ॥ और मर्त्यलोकमें नैमिषारण्य मिश्रकके भीतर आये। वहां शौनक आदि मुनिवरोंने उनका सत्कार किया ॥ १५ ॥

ब्रह्मन् कुतस्त्वमधुना वद। तच्छ्रुत्वा नारदः प्राह गोलोकादागतो-
ऽस्म्यहम् ॥ १६ ॥ श्रुत्वा कृष्णमुखाम्भोजाद् वृन्दावनरहस्यकम्।
नारद उवाच। तत्र नानाविधाः प्रश्नाः कृताश्चैव पुनःपुनः ॥ १७ ॥
समस्ता मन्त्रवस्तत्र योगाश्चैव मया श्रुताः। तानेव कथयिष्यामि
यथाप्रश्नञ्च तत्त्वतः॥ १८ ॥ शौनकादय ऊचुः। वृन्दारण्य-
रहस्यं हि यदुक्तं ब्रह्मणा त्वयि। तदस्माकं समाचक्ष्व यद्यस्मासु
कृपा तव ॥ १९ ॥ नारद उवाच। कदाचित् सरयूतीरे दृष्टो-
ऽस्माभिश्च गौतमः। मनस्वी च महादुःखी चिन्ताकुलितचेतनः ॥२०॥
मां दृष्ट्वा गौतमो देवः पपात धरणीतले। उत्तिष्ठ वत्स वत्सेति
तमुवाचाहमेव हि ॥ २१ ॥ कथं भवान् मनस्वीति प्रोच्यतां यदि

और उनसे यह पूछा, हे ब्रह्मन्! इस समय आप कहांसे आये हैं, सो कहिये। इतना सुनके नारद बोले, कि मैं गोलोकसे आता हूं॥ १६॥ कृष्णके मुखारविन्दसे वहां मैंने वृन्दावनका रहस्य सुना था। नारद बोले, वहां विविध प्रकारसे प्रश्न बारम्बार किये गये थे॥ १७॥ समस्त मनुमन्त्र और योग, मैंने वहां सुने। उन सबको जैसे जैसे पूछोगे, वैसे वैसे तत्त्वसे मैं कहूंगा॥ १८॥ शौनक आदि बोले, आपसे ब्रह्माने जो वृन्दावनका रहस्य कहा है, यदि हम पर कृपा है, तो हमसे कहिये॥ १९॥ नारद बोले, एक समय सरयूके तीरपर हमने महादुःखसे युक्त, चिन्तासे विकल हृदयवाले, महात्मा गौतम मुनिको देखा॥२०॥ मुझे देखके गौतम देव धरतीतल पर गिर पड़े। मैंने उनसे कहा, हे वत्स उठो! हे वत्स उठो॥ २१॥ आप महात्मा इस अवस्थामें क्यों हैं? जो आपको रुचे, सो कहिये। गौतम बोले.

रोचते । गौतम उवाच । श्रुतं तव मुखादेव कृष्णतत्त्वञ्च तादृशम् ॥
२२॥ द्वारकाख्यं माथुराख्यं रहस्यं बहुशो मया । वृन्दावनरहस्यन्तु
न श्रुतं त्वन्मुखाम्बुजात् ॥ २३ ॥ यतो मे मनसः स्थैर्य्यं भविष्यति च
सद्गुरो । नारद उवाच । इदन्तु परमं गुह्यं रहस्यातिरहस्यकम् ॥
२४ ॥ पुरा मे ब्रह्मणा प्रोक्तं तादृग् वृन्दावनोद्भवम् । रहस्यं वद
देवेश वृन्दारण्यस्य मे पितः ॥ २५ ॥ इति जिज्ञासितं श्रुत्वा क्षणं
मौनी स चाभवत् । ततो माह महाविष्णुं गच्छ वत्स प्रभुं मम ॥२६॥
मयापि तत्र गन्तव्यं त्वया सह न संशयः । इत्युक्त्वा मां गृहीत्वा
च गतो विष्णोश्च धामनि ॥ २७ ॥ महाविष्णौ च कथितं मयोक्तं
यत् तदेव हि । तच्छ्रुत्वा च महाविष्णुः स्वयम्भुवमथाब्रवीत् ॥२८॥

आपके मुखसे उस प्रकारका कृष्णचरित्र हमने सुना ॥ २२ ॥ कोई
चरित्र द्वारका विषयक, कोई मथुराके नामवाला—ये चरित्र हमने
कई बार सुने, पर आपके मुखारविन्दसे वृन्दावनका रहस्य नहीं
सुना ॥ २३ ॥ हे गुरो ! वही कहिये, जिससे मेरे व्याकुल मनको
स्थिरता हो । नारद बोले, यह विषय परम गोपनीय और रहस्योंका
भी रहस्य है ॥ २४ ॥ मैंने पहले उस प्रकारके वृन्दावनोत्पन्न रहस्यको
ब्रह्मासे पूछा था, हे मेरे पितः, हे देवेश ! मुझसे वृन्दावनका रहस्य
कहिये ॥ २५ ॥ मेरे ऐसे प्रश्नको सुनके वह क्षण भर मौन धरके रह
गये । फिर मुझसे कहा, हे वत्स ! हमारे प्रभु विष्णुके पास जाओ ॥
२६ ॥ मैं भी निस्सन्देह वहां तेरे साथ चलूंगा । इतना कहके और
मुझे पकड़के वह विष्णुके धामको गये ॥ २७ ॥ मैंने जो कुछ ब्रह्मासे
कहा था, सो ही उन्होंने महाविष्णुसे कहा । महाविष्णुने वह सब

त्वमेवाहिगतो मद्धं नोत्वा वै नारदं मुनिम्। स्नानाय विनि-युङ्क्षासुं सरस्यमृतसंज्ञके ॥ २८ ॥ महाविष्णुसमादिष्टः स्वयम्भूर्मां तथाकरोत्। ततोऽमृतसरस्याहं प्रविश्य स्नानमाचरम् ॥ ३० ॥ तत्क्षणात् तत्सरःपारे योषितां सविधेऽभवम्। सर्व्वलक्षणा-सम्पन्ना योषिद्रूपातिविस्मिता ॥ ३१ ॥ मां दृष्ट्वा ताः समायान्ती-मपृच्छंश्च मुहुर्मुहुः। स्त्रिय ऊचुः। का त्वं कुतः समायाता कथ-मात्मविचेष्टितम् ॥ ३२ ॥ तासां प्रियकथां श्रुत्वा मयोक्तं तन्निशा-मय। कुतः कोऽहं समायातः कथं वा योषिदाकृतिः ॥३३॥ स्वप्नवद्‌ दृश्यते सर्व्वं किं वा मुग्धोऽस्मि भूतले। तच्छ्रुत्वा मधुरो देवी प्रोवाच

सुनके स्वयम्भू ब्रह्मासे कहा ॥ २८ ॥ तुम हमारे कहनेसे इन नारद मुनिको ले जाओ और अमृत कुण्ड नामे सरोवरमें इसे स्नानके अर्थ नियुक्त करो ॥ २९ ॥ महाविष्णुसे आज्ञा पाके ब्रह्माने मुझे उसी प्रकार नहानेको नियुक्त किया। उस अमृत-सरोवरमें मैंने प्रवेश करके स्नानका आचरण किया ॥ ३० ॥ उसी क्षण उस कुण्डकी तीरपर मैंने स्त्रियोंका रूप धारण किया। मैं सब लक्षणोंसे संयुक्त, अति अद्भुत युवतीरूपका हुआ ॥ ३१ ॥ उधरसे कई स्त्रियां आती थीं। मुझे देखके उन्होंने वारम्वार कई प्रश्न किये। स्त्रियां बोलीं, तू कौन है? कहांसे आई हो? तुम्हारा चरित्र कैसा अद्भुत है ॥ ३२ ॥ उनकी प्यारी वाणीको सुनके, जो मैंने कहा, सो भी सुनो। मैं कौन हूं, कहांसे आई हूं, कैसा मेरा युवती-वेष है— यह सब मुझे स्वप्नवत् दिखाई देता है। मैं इस धरणी-तलमें केवल मूढ़ हूं। मेरे ऐसे वचनोंको सुनके एक देवीने मुझसे मधुर

मधुरस्वनैः॥ ३४॥ वृन्दानाम्नी पुरी चेयं कृष्णचन्द्रप्रिया सदा। अहञ्च ललिता देवी तुर्य्यातीता च निष्कला॥ ३५॥ इत्युक्ता च महादेवी करुणासान्द्रमानसा। मां प्रत्याह पुनर्देवी समागच्छ मया सह॥ ३६॥ अन्याश्च योषितः सर्व्वाः कृष्णपादपरायणाः। ताश्च मां प्रवदन्त्येवं समागच्छानया सह॥ ३७॥ ततो तु कृष्ण-चन्द्रस्य चतुर्द्दशाक्षरो मनुः। कृपया कथितस्तस्या देव्याश्चापि महात्मनः॥ ३८॥ तत्क्षणादेव तत्साम्यमलभं विविधोपमम्। ताभिः सह गतास्तत्र यत्र कृष्णः सनातनः॥ ३९॥ केवलं सच्चिदा-नन्दः स्वयं योषिन्मयः प्रभुः। योषिदानन्दहृदयो दृष्ट्वा मां प्राब्रवी-च्छनैः॥ ४०॥ समागच्छ प्रिये कान्ते भक्त्या मां परिरभ्य।

स्वरसे कहा॥ ३३। ३४॥ यह वृन्दावन नाम्नी पुरी सर्व्वदा कृष्णकी अति प्यारी है। तुर्यसे अतीत, निश्चेष्ट मैं ललिता देवी हूं॥ ३५॥ वह घनी करुणासे संयुक्त हृदयवाली महादेवी इतना कहके मुझसे बोली, तुम मेरे साथ आओ॥ ३६॥ कृष्णके चरणारविन्दोंकी भक्त अन्यान्य देवीयोंने भी मुझसे कहा, तुम इसके साथ जाओ॥ ३७॥ तब उसने कृपापूर्व्वक महात्मा, कृष्णचन्द्र और महादेवी राधिकाका चतुर्दशाक्षर मन्त्र कहा॥ ३८॥ उसी क्षण मैंने विविध प्रकारकी उपमाओंके योग्य उस देवीका समानत्व पाया। मैं उन स्त्रियोंके साथ वहां गया, जहां सनातन श्रीकृष्ण थे॥ ३९॥ त्रिगुणरहित, केवल सच्चिदानन्द, स्वयं स्त्रीरूपी प्रकृतिसे युक्त, गोपस्त्रियोंके आनन्दसे युक्त हृदयवाले, जगन्नाथ श्रीकृष्णने मुझे देखके धीरेसे कहा॥ ४०॥ हे प्रिये. हे सुन्दरि! आओ, मुझे

रेमे वर्षप्रमाणेन तत्र चैव द्विजोत्तम ॥ ४१ ॥ तदोक्तं रमणेनेन तां देवीं राधिकां प्रति। इयं मे प्रकृतिस्तत्र चासीन्नारदरूपधृक् ॥ ४२ ॥ नीलामृतसरो रम्यं स्नानार्थं सन्नियोजय। तदा मे रमणान्ते गदितं प्रियभाषितम् ॥ ४३ ॥ अहञ्च ललिता देवी राधिका या च गीयते। अहञ्च वासुदेवाख्यो नित्यं कामकलात्मकः ॥ ४४ ॥ सत्यं योषित्स्वरूपोऽहं योषिच्चाहं सनातनी। अहञ्च ललिता देवी पुंरूपा कृष्णविग्रहा ॥ ४५ ॥ आवयोरन्तरं नास्ति सत्यं सत्यं हि नारद। एवं यो वेत्ति मे तत्त्वं समयञ्च तथा मनुम् ॥ ४६ ॥ सप्तमाचारसङ्केतं ललितावत् स मे प्रियः। इदं वृन्दावनं नाम रहस्यं मम वै स्फुटम् ॥४७॥ न प्रकाश्यं कदा कुत्र वक्तव्यं न पशौ क्वचित्।

प्रीतिसे आलिङ्गन करो। हे द्विजोत्तम! मैंने वहां एक वर्षतक रमण किया ॥ ४१ ॥ तब रमणेश श्रीकृष्णने उन्हीं राधिका देवीसे कहा, यह मेरी प्रकृति है, यही नारदका रूप धारण करनेवाली थी ॥ ४२ ॥ इसको रमणीय अमृत-सरोवरपर ले जाके स्नानके लिये सन्नियुक्त करो। रमणके अन्तमें देवीने मुझसे प्रिय सम्भाषण किया ॥ ४३ ॥ मैं ललिता देवी हूं। मैं ही राधिका कहके गाई जाती हूं। कामकी कलाओंसे संयुक्त होके मैं ही वासुदेव श्रीकृष्ण कहके प्रसिद्ध हूं ॥ ४४ ॥ मैं सत्य हूं, मैं स्त्री-स्वरूपिणी हूं, मैं सनातनी स्त्रीरूप प्रकृति हूं, मैं ललिता देवी हूं, मैं ही पुरुष-वेषमें कृष्ण-स्वरूप हूं ॥ ४५ ॥ हे नारद! सत्य सत्य ही हम दोनोंका अन्तर नहीं। भगवान् बोले, इस समय, मनुमन्त्रको पूरे आचारके चिन्ह समेत जो जानता है, सो मुझे ललिताकी नाईं प्रिय है। यह वृन्दावन नामसे रहस्य निश्चय ही मेरा

ततो नु राधिका देवी मां नीत्वा तत्सरोवरे ॥ ४८ ॥ स्थिता सा कृष्णचन्द्रस्य चरणान्ते गता पुनः । ततो निमज्जनादेव नारदोऽह-मुपागतः ॥ ४९ ॥ वीणाहस्तो गानपरस्तद्रहस्यं मुहुर्मुदा । स्वय-म्भुवं नमस्कृत्य तत्रागां विष्णुपार्षदम् ॥ ५० ॥ स्वयम्भुवा तथा दृष्टं नोक्तं किञ्चित् तदा पुनः । इति ते कथितं वत्स सुगोप्यञ्च मया त्वयि ॥५१॥ त्वयापि कृष्णचन्द्रस्य केवलं धाम चित्कलम् । गोपनीयं प्रयत्नेन मातुर्जार इव प्रियम् ॥ ५२ ॥ यथा प्रोक्तं मया शिष्ये गौतमे सरहस्यकम् । तथा भवत्सु कार्त्स्न्येन कथितञ्चातिगोपि-तम् ॥ ५३ ॥ यत्र कुत्र कदाचित् तु प्रकाश्यं मुनिपुङ्गवाः । तदा

धर है ॥ ४६ । ४७ ॥ कभी, कहीं यह प्रकाशके योग्य नहीं । यह कभी पशु अर्थात् अपात्रसे कहने योग्य नहीं । तब राधिका देवी मुझे उस सरोवरके तटपर ले गईं ॥ ४८ ॥ वह देवी तो वहां ठहरके श्रीकृष्णके पास चली गईं और मैं मज्जन करते ही नारदका नारद हो गया ॥ ४९ ॥ मैं वीणा हाथमें लेके सहर्ष उस रहस्यका धीरे धीरे गान करने लगा । ब्रह्माको नमस्कार करके मैं विष्णुलोकको चल दिया ॥ ५० ॥ ब्रह्माने भी वह रहस्य देखा, पर फिर किसीसे कहा नहीं । हे वत्स ! यह सुगुप्त विषय मैंने तुमसे कहा ॥ ५१ ॥ तुम भी श्रीकृष्णके इस केवल धाम, चित्-कलासे युक्त प्रिय वृन्दावनका रहस्य माताके जारकी नाईं छिपाना ॥ ५२ ॥ जैसे मैंने शिष्य गौतमसे रहस्ययुक्त यह चरित्र कहा, वैसे ही सुन्दर थोड़ी रीतिसे भी यह गुप्त वचन गोपनीय है ॥ ५३ ॥ हे मुनिवरो ! हे विप्रो ! जो इसे जहां

भापो भवेद्दिप्राः कृष्णचन्द्रस्य निश्चितम्॥ ५४ ॥ इदं कृष्णस्य लीलाभियुतमध्यायमुत्तमम्। यः पठेच्छृणुयाद्वापि स याति परमं पदम्॥५५॥ (ईश्वर उवाच। अत्र शिशुपालं निहतं श्रुत्वा दन्तवक्त्रः कृष्णेन योद्धुं मथुरामाजगाम॥ १ ॥ कृष्णस्तु तच्छ्रुत्वा रथमास्थ तेन सह मथुरामाययौ ॥२॥ अथ तं हत्वा यमुनामुत्तीर्थ्य नन्दव्रजं गत्वा पितरावभिवाद्याश्वास्य ताभ्यामालिङ्गितः सकलगोपवृद्धान् परिष्वज्य तानाश्वास्य बहुवस्त्राभरणादिभिस्तत्रस्थान् सर्व्वान् सन्तर्पयामास॥ ३ ॥ कालिन्द्याः पुलिने रम्ये पुण्यवृक्षसमाकीर्णे गोपस्त्रीभिरहर्निशं क्रीड़ासुखेन त्रिरात्रं तत्र समुवास॥ ४ ॥ तत्र स्थले नन्दगोपादयः सर्व्वे जनाः पुत्रदारसहिताः पशुपक्षिमृगा-

---

कहीं, कभी प्रकाश करोगे, तो निश्चय ही श्रीकृष्णका शाप होगा॥ ५४॥ कृष्णकी लीलाओंसे युक्त इस अद्भुत अध्यायको जो पढ़ता अथवा सुनता है, सो परमपद पाता है॥ ५५॥ (महादेव जी बोले, इस समय शिशुपालको मरा हुआ सुनके, दन्तवक्त्र कृष्णसे लड़नेको मथुरामें आया॥ १॥ कृष्ण भी यह सुनके रथपर चढ़ उससे लड़नेको मथुरामें आये॥ २ ॥ और उसे मारके, यमुना उतरके, नन्दके व्रजमें जाके, माता-पिता नन्द-यशोदाको नमस्कार करके, उनसे आलिङ्गित होके, सब बूढ़े गोपोंसे मिलके उन्हें धैर्य देके, बहुतसे वस्त्र आभूषणोंसे वहांके समस्त निवासियोंको सन्तुष्ट किया॥ ३॥ कृष्णने यमुनाके सुन्दर, पवित्र वृक्षोंसे परिपूर्ण वनमें गोप-वधूटियोंके साथ रात्रि दिनकी क्रीड़ाके सुखसे तीन रात दिन वहां विश्राम किया॥ ४॥ उस स्थानमें पुत्र स्त्रियोंके सहित नन्द,

तेऽपि वासुदेवप्रसादेन दिव्यरूपधरा विमानसमारूढ़ाः परमं लोकं वैकुण्ठमवापुः ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णस्तु नन्दगोपव्रजौकसां सर्व्वेषां निरामयं स्वपदं दत्त्वा देवगणैः स्तूयमानः श्रीमतीं द्वारावतीं विवेश ॥ ६ ॥ तत्र वसुदेवोग्रसेनसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धाक्रूरादिभिः प्रत्यहं संपूजितः षोड़शसहस्राष्टाधिकमहिषीभिश्च विश्वरूपधरो दिव्यरत्नमयलतागृहान्तरेषु सुरतरुकुसुमाचितस्वच्छतरपर्य्यङ्केषु रमयामास ॥ ७ ॥ एवं हितार्थाय सर्व्वदेवानां समस्तभूभार-विनाशाय यदुवंशेऽवतीर्य्य सकलराक्षसविनाशं कृत्वा महान्तमुर्व्वी-भारं नाशयित्वा नन्दव्रजद्वारकावासिनः स्थावरजङ्गमान् भवबन्ध-नान्मोचयित्वा परमे शाश्वते योगिध्येये रम्ये धाम्नि संस्थाप्य नित्यं

गोप आदि सबजन तथा पशु, पक्षी मृग आदि भी, श्रीकृष्णके प्रसादसे दिव्यरूप धारण करके और विमानोंपर बैठके परमलोक वैकुण्ठको गये ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णने भी नन्द गोप आदि सब व्रज-वासियोंको रोगदोषहीन निज धाम देके, देवगणसे स्तुति किये जाते हुए, श्रीमती द्वारका नगरीमें प्रवेश किया ॥ ६ ॥ वहां वसुदेव, उग्रसेन, बलदेव, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अक्रूर आदिकसे प्रतिदिन भक्ति किये जाके, दिव्य रत्नोंसे मण्डित लता-मण्डपके भीतर, कल्पवृक्षके पुष्पोंसे चितित विचित्र पलङ्कके ऊपर, दिव्यरूप धरके सोलह सहस्र एकसौ आठ रानियोंके साथ रमण करते रहे ॥ ७ ॥ इस भांति सब देवताओंके हितके लिये और समस्त पृथ्वीके भारके विनाशके अर्थ यदुवंशमें अवतार धरके, सब राक्षसोंका विनाश करके, पृथ्वीके महान् भारको ध्वंस करके, नन्दके व्रज तथा द्वारकाके रहनेवाले चराचर

दिव्यमहिष्यादिभिः संसेव्यमानो वासुदेवोऽखिलेषूवाच॥ ८ ॥ आसीदव्याकृतं ब्रह्म करकाघृतयोरिव। प्रकृतिस्थो गुणान्मुक्तो द्रवीभूत्वा दिवं गतः॥ ९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे पातालखण्डे वृन्दावनमाहात्म्ये पार्व्वतीशिवसंवादे षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥)

इति सप्तमोऽध्यायः॥ ७ ॥

जीवोंको सवबन्धनसे छुड़ाके और सवको परम सनातन योगियोंके ध्यानके योग्य वैकुण्ठ लोकमें पहुंचाके, नित्य रानियोंसे भली भांति सेवित होके, भगवान्‌ने सबसे कहा॥ ८ ॥ ब्रह्म ओले अथवा घृतकी नाईं अव्याकृत, अव्यय था। प्रकृतिमें स्थित होके, त्रिगुणसे छूटके जब द्रव हो गया, तो परम धाममें लीन हुआ॥ ९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणके पातालखण्डान्तर्गत वृन्दावन-माहात्म्यमें पार्व्वती-शिव संवादका ७६ वां अध्याय।)

सातवां अध्याय समाप्त।

अष्टमोऽध्यायः।

पार्व्वत्युवाच। विस्तरेण समाचक्ष्व नामार्थपदगौरवम्।
ईश्वरस्य स्वरूपञ्च तत्स्थानानां विभूतयः॥ १॥ तद्विष्णोः परमं
धाम व्यूहभेदास्तथा हरेः। निर्व्वाणाख्या हि तत्त्वेन मम सर्व्वं
सुरेश्वर॥ २॥ ईश्वर उवाच। सारे वृन्दावने कृष्णं गोपीकोटिभि-
रावृतम्। तत्र गङ्गा परा शक्तिस्तत्स्थमानन्दकाननम्॥ ३॥
नानाकुसुमामोदसमीरसुरभीकृतम्। कलिन्दतनयादिव्यतरङ्ग-
रागशीतलम्॥४॥ सनकाद्यैर्भागवतैः संसृष्टं मुनिपुङ्गवैः। आह्लादि-
मधुरारावैर्गोवृन्दैरभिमण्डितम्॥ ५॥ रम्यस्रग्भूषणोपेतैर्नृत्यद्भि-
र्बालकैर्वृतम्। तत्र श्रीमान् कल्पतरुर्जाम्बूनदपरिच्छदः॥६॥ नाना-

---

पार्वती जी बोलीं, हे महादेव! नामके अर्थके पदका गौरव, विष्णुका स्वरूप और उनके स्थानोंकी विभूतियोंको विस्तारसे कहिये॥ १ हे देवदेव! विष्णुके परम धाम, विष्णुके व्यूह भेद आदि और निर्वाण आख्य विषयोंको मुझसे तत्त्वपूर्व्वक कहिये॥ २॥ महादेव जी बोले, संसार-सार वृन्दावनमें कृष्ण कोटि गोपियोंसे आवृत हैं। वहां गङ्गा परा शक्ति है। वहीं आनन्द-वन है॥ ३॥ वह स्थान विचित्र प्रकारके फूलोंकी सुगन्धसे संयुक्त वायुसे सुवासित है। वह वन यमुना जीकी दिव्य लहरोंके अनुरागसे शीतल है॥ ४॥ सनकादि वैष्णव मुनिवरोंसे सेवित है। मधुर शब्दोंसे गूञ्ज रहा है और गायोंके समूहसे मण्डित है॥ ५॥ रमणीय माला और भूषणोंसे धारण करनेवाले बालकोंसे वेष्टित, काञ्चनके पत्तोंसे मण्डित वहां

रत्नप्रवालाढ्यो नानामणिफलोज्ज्वलः । तस्य मूले रत्नवेदी रत्न-दीधितिदीपिता ॥ ७ ॥ तत्र त्रयीमयं रत्नसिंहासनमनुत्तमम् । तत्रासीनं जगन्नाथं त्रिगुणातीतमव्ययम् ॥ ८ ॥ कोटिचन्द्रप्रतीकाशं कोटिभास्करभास्वरम् । कोटिकन्दर्पलावण्यं भासयन्तं दिशो दश ॥ ९ ॥ त्रिनेत्रं द्विभुजं गौरं तप्तजाम्बूनदप्रभम् । श्लिष्यमाणमङ्ग-नाभिः सदामानञ्च सर्व्वशः ॥ १० ॥ ब्रह्माद्यैः सनकाद्यैश्च ध्येयं भक्तवशीकृतम् । सदाघूर्णितनेत्राभिर्नृत्यन्तीभिर्महोत्सवैः ॥ ११ ॥ चुम्बन्तीभिर्हसन्तीभिः श्लिष्यन्तीभिर्मुहुर्मुहुः । अवाप्तगोपीदेहाभिः श्रुतिभिः कोटिकोटिभिः ॥ १२ ॥ तत्पादाम्बुजमाध्वीकचित्ताभिः

एक कल्पवृक्ष है ॥ ६ ॥ वह नाना प्रकारके रत्न और विद्रुमसे आढ्य है, फलरूपी नाना मणियोंसे देदीप्यमान है । उसके मूलमें रत्न-ज्योतिसे जगमगाती हुई रत्नोंकी वेदी है ॥ ७ ॥ वहां अति उत्तम रत्नका सिंहासन है । उसपर त्रयीमय, सत्त्व, रज, तम, इन तीनों गुणोंसे अतीत, अव्यय जगन्नाथ श्रीकृष्ण हैं ॥ ८ ॥ उनकी कान्ति करोड़ चन्द्रोंके समान और तेज करोड़ सूर्यों के समान है । वह कामदेवके समान सौन्दर्यसे दशो दिशाओंको उज्ज्वल कर रहे हैं ॥ ९ ॥ उस अद्भुत स्वरूपके तीन नेत्र हैं, दो भुजायें हैं, तप्त जाम्बूनदकी कान्ति जैसा गौर-स्वरूप है । वह सदा मानसे युक्त हैं और सब गोप स्त्रियोंसे आलिङ्गित हैं ॥ १० ॥ वह भक्तोंके वशीभूत भगवान् ब्रह्मा-सनकादिसे ध्येय हैं । वे स्त्रियां करोड़ों श्रुति ही हैं, उन्होंने गोपियोंकी देहमात्र धारण की है । उनके नयन सदा घूर्णित हैं, वे महा उत्सवसे नृत्य करती हैं । वह श्रीकृष्णको चूमती हैं,

परितो वृतम् । तासान्तु मध्ये या देवी तप्तचामीकरप्रभा ॥ १३ ॥
द्योतमाना दिशः सर्व्वाः कुर्व्वती विद्युदुज्ज्वलाः । प्रधानं या भगवती यया सर्व्वमिदं ततम् ॥१४॥ सृष्टिस्थित्यन्तरूपा या विद्याविद्या त्रयी परा । स्वरूपा शक्तिरूपा च मायारूपा च चिन्मयी ॥ १५ ॥
ब्रह्मविष्णुशिवादीनां देहकारणकारणम् । चराचरं जगत्सर्व्वं यन्मायापरिरम्भितम् ॥ १६ ॥ वृन्दावनेश्वरी नाम्ना राधा धात्रानुकारणात् । तामालिङ्ग्य वसन्तं तं मुदा वृन्दावनेश्वरम् ॥ १७ ॥
अन्योन्यचुम्बनाश्लेषमदाविष्टविघूर्णितम् । ध्यायेद्देवं कृष्णदेवं स च सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१८॥ मन्त्रराजमिमं गुह्यं तस्य मन्त्रज्ञः मन्त्रवित् ।

और उनसे हंसती हैं ॥ ११ । १२ ॥ कृष्णके चरणकमलके परागमें उन गोपियोंका चित्त लगा है, उन्हींसे वह घिरे हैं। उनके बीचमें जो तप्त सुवर्णकी प्रभावाली देवी है ॥ १३ ॥ जो बिजलीके प्रकाशकी नाईं सब दिशाओंको प्रदीप्त कर रही है, जो भगवती प्रधान हैं, जिससे यह संसार है ॥ १४ ॥ जो संसारकी सृष्टि, स्थिति, प्रलयका कारणरूपी है, जो विद्या है, जो परम त्रयीविद्या हैं, जो आत्मारूपा है, जो शक्तिरूपा है, जो मायारूपा है, जो चित्से मया है ॥ १५ ॥ जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदिकी देहोंके कारणका कारण है। जिसकी मायामें चराचरसे युक्त सर्व्व जगत् मुग्ध है। वह वृन्दावनकी ईश्वरी है, इसी कारण वह राधानामसे प्रख्यात हैं। वृन्दावननाथ श्रीकृष्ण सहर्ष उसीका आलिङ्गन करते रहते हैं ॥ १६ । १७॥ परस्परके चुम्बन, आलिङ्गनसे दोनोंकी आंखें मदसे घूमने लगी हैं,—इस भांति जो कृष्ण देवका ध्यान करता है, वह सिद्धिको पाता है ॥ १८ ॥ उन

यो जपेच्छृणुयाद्वापि स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥ राधिका चित्ररेखा च चन्द्रा मदनसुन्दरी । श्रीप्रिया श्रीमधुमती शशिरेखा हरिप्रिया ॥२०॥ सुवर्णशोभा संमोहा प्रेमरोमाञ्चराजिता । वैवर्ण्य-स्वेदसंयुक्ता भावासक्ता प्रियंवदा ॥ २१ ॥ सुवर्णमालिनी शान्ता सुरानन्दलिका तथा । सर्वस्त्रीजीवना दीनवत्सला विमलाशया ॥२२ निपीतनामपीयूषा सा राधा परिकीर्त्तिता । सुदीर्घस्मितसंयुक्ता तप्तचामीकरप्रभा ॥२३॥ मूर्च्छाप्रेमनदी राधा वरा लोचनाञ्जना । मायामात्सर्यसंयुक्ता दानसाम्राज्यजीवना ॥ २४ ॥ सुरतोत्सव-

---

भगवान् श्रीकृष्णका यह मन्त्र मन्त्रोंका राजा, परम गोपनीय है, जो मनुष्य इसे जपता वा सुनता है, वही दुर्लभ महात्मा है ॥ १९ ॥ राधिका, चित्ररेखा (पाठान्तरमें चन्द्ररेखा), चन्द्रा, मदनसुन्दरी, श्रीप्रिया, श्रीमधुमती, शशिरेखा, येही हरिकी प्रिया हैं ॥ २० ॥ सुवर्णकी शोभासे सोहनेवाली, प्रेमके रोमहर्षणसे शोभित, रतिके कोपसे विवर्ण और पसीनेसे युक्त मुखवाली, भावमें आसक्त प्रियम्वदा सखी है ॥ २१ ॥ सुवर्ण-मालिनी सखी शान्तिसे युक्त, सुराके कारण मदन्द, सब गोपस्त्रियोंका जीवन-स्वरूप, दीनोंको पालनेवाली और विमल हृदयवाली है ॥ २२ ॥ कृष्ण नामके अमृतको जो पीती है, सो ही राधा नामसे परिकीर्त्तित है । वह तपाये सुवर्णकी कान्तिवाली दीर्घ मुसकराहटसे संयुक्त है ॥ २३ ॥ वह राधा प्रेमकी मूर्च्छाकी नदी और बड़े बड़े नेत्रोंमें अञ्जन लगाये है । माया और मत्सरतासे युक्त, दान और महाराज्यकी जीवन-स्वरूपा है ॥ २४ ॥ कृष्णके सुरतकी

संग्रामा चित्ररेखा प्रकीर्त्तिता। गौराङ्गी नातिदीर्घा च सदावादन-
तत्परा ॥ २५ ॥ दैन्यानुरागनटना मूर्च्छारोमाञ्चविह्वला। हरि-
दक्षिणपार्श्वस्था सर्व्वमन्त्रप्रिया तथा ॥ २६ ॥ अनङ्गलोभमाधुर्य्या
चन्द्रा सा परिकीर्त्तिता। सलीलमन्थरगतिर्मञ्जुमुद्रितलोचना॥
२७ ॥ प्रेमधारोज्ज्वलाकीर्णा दलिताञ्जनशोभना। कृष्णानुराग-
रसिका रासध्वनिसमुत्सुका ॥२८॥ अहङ्कारसमायुक्ता मुखनिन्दित-
चन्द्रमाः। मधुरालापचतुरा जितेन्द्रियशिरोमणिः॥ २९ ॥ सुन्दर-
स्मितसंयुक्ता सा वै मदनसुन्दरी। विविक्तरासरसिका श्यामा
श्याममनोहरा ॥ ३० ॥ प्रेम्णा प्रेमकटाक्षेण हरेश्चित्तविमोहनी।

उत्सवमें संग्राम करनेवाली चित्ररेखा कहलाती है। उसका अङ्ग
गौर है। वह बहुत लम्बी नहीं, सदा बाजे बजानेमें तत्पर है॥ २५ ॥
प्यारेके आगे दीनताके अनुरागसे नाचनेवाली, मूर्च्छा और रोमाञ्चसे
विकल, श्रीकृष्णकी दाहिनी ओर बैठनेवाली, सब मन्त्रोंकी प्रिया ॥ २६ ॥
और कामदेवके लोभसे जो मधुर है, वो चन्द्रा कहलाती है। लीलाके
साथ जो मन्द मन्द चलती है, सुन्दर आँखें जिसकी मुद्रित हैं॥ २७ ॥
प्रेमकी धाराओंसे जो उज्ज्वल है, जिसके बड़े बड़े नेत्र श्याम अञ्जनसे
सुशोभित हैं, जो कृष्णके अनुरागकी रसिका है, जो रासध्वनिमें उत्साह-
शील है ॥ २८ ॥ जो अहङ्कारसे संयुक्त है, जिसका मुख चन्द्रमाको
भी निन्दित करता है। जो मधुर आलाप करनेमें निपुण है,
इन्द्रियोंके जीतनेवालोंमें जो शिरोमणि है॥ २९ ॥ जो सुन्दर मुसकरा-
हटसे शोभित है, वही मदन-सुन्दरी है। विवेकियोंसे आदरणीय
रासमें जो रसिक है, जो राधा और कृष्णके मनको हरनेवाली है॥ ३०

जितेन्द्रिया जितक्रोधा सा प्रिया परिकीर्त्तिता ॥ ३१ ॥ सुतप्तस्वर्ण-गौराङ्गी लीलाम्लानसुन्दरी। स्मरोत्थप्रेमरोमाञ्चवैचित्र्यमधुरा-कृतिः ॥ ३२॥ मन्दस्मितसंयुक्त-मुखनिन्दितचन्द्रमाः। मधुरालाप-चतुरा जितेन्द्रियशिरोमणिः ॥ ३३ ॥ कीर्त्तिता सा मधुमती प्रेम-साधनतत्परा। कम्पोहज्वररोमाञ्चप्रेमधारासमन्विता ॥ ३४ ॥ दानधूलिविनोदा च रासध्वनिमहानटी। शशिरेखा च विज्ञेया गोपालप्रेयसी सदा ॥ ३५ ॥ कृष्णात्मा षोडशा श्यामा मधुपिङ्गल-लोचना। तत्पादप्रेमसम्मोहात् क्वचित् पुलकचुम्बिता ॥ ३६ ॥

प्रेमसे और प्रेमके कटाक्षोंसे जो हरिके चित्तको मोहती है, जिसने इन्द्रियोंको जीता है, जिसने क्रोधको जीता है, वही प्रिया कहलाती है ॥ ३१ ॥ तप्त काञ्चनकी न्याईं जो गौर अङ्गवाली है, लीलाके साथ जो सुन्दर चाल चलती है। कामदेव और प्रेमके कारण जिसके रोमटे उठे हैं। जो विचित्र और मधुर शरीरवाली है ॥ ३२ ॥ सुन्दर मुसकराहटसे संयुक्त मुखसे जो चन्द्रमाको निन्दित करती है। जो मधुर वार्त्तालापमें चतुर है, जो जितेन्द्रियोंकी शिरोमणि है ॥ ३३ ॥ वही प्रेमकी साधनामें तत्पर मधुमती कहलाती है। मोह, ज्वर, रोमाञ्च और प्रेमकी धारासे जो संयुक्त है ॥ ३४ ॥ जो दानकी धूलिमें विनोद मानती है, जो रासकी ध्वनिमें महानृत्य करती है, वही सर्व्वदा गोपालकी प्यारी शशिरेखा नामसे ज्ञेय है ॥ ३५ ॥ कृष्ण ही जिसकी आत्मा हैं, जो सर्व्वदा सोलह वर्षकी श्यामा युवती है, मधुसे जिसके नेत्र पीले हैं, कृष्णके चरण कमलोंको प्रेम-मोहके वश होके जो पुलकित होके कभी कभी चूमने लगती हैं ॥ ३६ ॥ शिवकुण्ड, शिवानन्दा,

शिवकुण्डे शिवानन्दा नन्दिनी देहिकातटे। रुक्मिणी द्वारवत्यान्तु राधा वृन्दावने वने॥ ३७॥ देवकी मथुरायान्तु जाता मे परमेश्वरी। चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्यनिवासिनी॥ ३८॥ वाराणस्यां विशालाक्षी विमला पुरुषोत्तमे। वृन्दावनाधिपत्यञ्च दत्तं तस्यै प्रतोदता॥३९॥ कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने। नित्यानन्दतनुः शौरिर्योऽशरीरीति भाष्यते॥ ४०॥ वाय्वग्निनाकभूमीनामङ्गाधिष्ठितदेवता। निरूप्यते ब्रह्मणोऽपि तथा गोविन्द-विग्रहः॥ ४१॥ सेन्द्रियोऽपि यथा सूर्य्यस्तेजसा नोपलक्ष्यते। तथा कान्तियुतः कृष्णः कालं मोहयति ध्रुवम्॥ ४२॥ न तस्य

नन्दिनी अथवा देहिकाके (पाठान्तरमें देविकाके) तटपर, सो ही द्वारकामें रुक्मिणी और वृन्दावन नाम वनमें राधिका हैं॥ ३७॥ मथुरामें सोही परमेश्वरी देवकी होके जन्मी हैं, चन्द्रकूट (पाठान्तरमें चित्रकूट) में सो ही सीता और विन्ध्याचलमें सो ही विन्ध्यवासिनी देवी हैं॥ ३८॥ काशीमें सो ही विशालाक्षी और पुरुषोत्तम जगन्नाथ क्षेत्रमें सो ही विमला देवी हैं। पर कृष्णने प्रसन्न होके राधाको वृन्दावनका आधिपत्य दिया है॥ ३९॥ हे कृष्णे! देवी अन्यत्र ऐसी नहीं, जैसी वृन्दावनमें राधिका। उनका शरीर नित्यानन्दसे युक्त है। साक्षात् श्रीकृष्ण ही मानो वह रूप धारण किये हुए हैं॥ ४०॥ वायु, अग्नि, आकाश, भूमि, जल आदिके अङ्गोंके अधिष्ठाता देवता, ब्रह्माने भी इन सबका श्रीकृष्ण मूर्त्ति हीमें निरूपण किया है॥ ४१॥ इन्द्रियोंसे युक्त सूर्य्य जैसे तेजवालोंको दिखाई देता है, वैसे ही कान्ति-युत श्रीकृष्ण भी निश्चय ही कालको मोहते हैं॥ ४२॥ उनकी

प्राकृती मूर्त्तिर्मेदोमांसास्थिसंभवा। योगी चैवेश्वरश्चात्मा सर्वात्मा नित्यविग्रहः॥ ४३॥ काठिन्यं दैवयोगेन करकाष्टतयोरिव। कृष्णस्यामिततत्त्वस्य पादपृष्ठं न देवता॥ ४४॥ वृन्दावनरजोवृन्दे तत्र सुर्विष्णुकोटयः। आनन्दकिरणो वृन्दव्याप्तविश्वकलानिधिः॥ ४५॥ गुणात्मतात्मनि यथा जीवास्तत्किरणाङ्ककाः। भुजद्वयवृतः कृष्णो न कदाचिच्चतुर्भुजः॥ ४६॥ गोप्यैकया वृतस्तत्र परिक्रीडति सर्वदा। गोविन्द एव पुरुषो ब्रह्माद्याः स्त्रिय एव च॥ ४७॥ तत एव स्वभावोऽयं प्रकृतेर्भाव ईश्वरः। पुरुषः प्रकृतिराद्यौ राधावृन्दावनेश्वरौ॥ ४८॥ प्रकृतेर्विकृतं सर्वं विना

प्राकृती मूर्त्ति मेद, मांस, अस्थिकी बनी हुई नहीं है। ऐसा न होनेपर भी मेद, मांस, अस्थि, पत्थर आदि कठिन वस्तुओंसे वह ओला और घीकी तरह दैवयोगसे जमती है। वह साक्षात् योगी हैं, सर्वात्मा हैं, नित्य अविनाशी मूर्त्तिके धारण करनेवाले ईश्वर हैं, ऐसे अमित तत्त्ववाले श्रीकृष्णके पैरसे छुई हुई वस्तु भी क्या देवता नहीं है॥ ४३। ४४॥ वृन्दावनकी धूलिके ढेरमें करोड़ों विष्णु हैं। वहां सबका चन्द्रमा श्रीकृष्ण आनन्दकी किरणोंमें व्याप्त है॥ ४५॥ अपनी गुणात्मासे जैसे वह स्वशरीरमें प्रकाशवान् हैं, वैसे ही इतर जीवोंमें उनकी किरणें हैं। प्रकाश रूपमें कृष्णके दोही भुजा हैं, वह कभी चतुर्भुज नहीं हैं॥ ४६॥ एक गोपीसे वह वेष्टित होके सदा उसके साथ क्रीड़ा करते हैं। गोविन्द ही पुरुष हैं, ब्रह्मा आदि सब स्त्रियां हैं॥ ४७॥ क्योंकि ईश्वर है, सो प्रकृतिका भाव मात्र है। और राधा तथा वृन्दावनके ईश्वर श्रीकृष्ण दोनों ही

वृन्दावनेश्वरम् ॥ ४९ ॥ समुद्भवेनैव समुद्भवेदिदं भेदे गते तस्य विनाशनं हि । स्वर्णस्य नाशो न हि विद्यते तथा मत्स्यादिनाशेऽपि न कृष्णविच्युतिः ॥ ५० ॥ त्रिगुणादिप्रपञ्चोऽयं वृन्दावनविहारिणः । अस्मीवाब्धेस्तरङ्गस्य यथाब्धिनैव जायते ॥ ५१ ॥ न राधिकासमा नारी न कृष्णसदृशः पुमान् । वयः परं न कैशोरात् स्वभावः प्रकृतेः परः ॥ ५२ ॥ ध्येयं कैशोरकं ध्येयं वनं वृन्दावनं वनम् ॥ श्याममेव परं रूपमादिदेवं परो रसः ॥ ५३ ॥ बाल्यं पञ्चमवर्षान्तं पौगण्डं दशमावधि । षष्ठपञ्चककैशोरं सीमा पञ्चदशावधि ॥ ५४ ॥ यौवनोद्भिन्नकैशोरं नवयौवनमुच्यते । तद्वयस्तस्य सर्वस्वं प्रपञ्चमितर-

---

आदि और प्रकृति हैं ॥ ४८ ॥ प्रकृतिके विकृत होनेपर वृन्दावनेश्वर सर्व्वहीन हैं ॥ ४९ ॥ समुद्भव कारणसे ही यह जगत् उत्पन्न होता है। वह भेद चले जाने पर ही उसका नाश होता है। सुवर्णके भूषणादि बनने पर भी सुवर्णका नाश नहीं होता है, उसी भांति मत्स्य आदि रूप धारण करके फिर कृष्णमें लीन होने पर भी कृष्णका नाश नहीं ॥ ५० ॥ यह जगत् वृन्दावन-विहारीका त्रिगुणादि-निर्म्मित प्रपञ्च है, जैसे समुद्रकी तरङ्गोंको समुद्र ही उत्पन्न करता है ॥ ५१ ॥ राधिकाके समान कोई स्त्री नहीं, कृष्णके समान कोई पुरुष नहीं। किशोर अवस्थासे बढ़के और कोई अवस्था नहीं, स्वभाव प्रकृतिसे अलग नहीं ॥ ५२ ॥ सो किशोर अवस्थावाले नन्दनन्दनका ध्यान करो, वृन्दावन वनका ध्यान करो। वह नन्दकिशोर सांवले हैं, उनका सुन्दर रूप है, वह आदिदेव हैं, उनका परम रस है ॥ ५३ ॥ उनका बालरूप पांच वर्ष तकका और पौगण्ड दस वर्षतक है। उनकी

हय: ॥ ५५ ॥ बाल्यपौगण्डकैशोरं वयो वन्दे मनोहरम्। बाल-गोपालगोपालं स्मरगोपालरूपिणम् ॥ ५६ ॥ वन्दे मदनगोपालं कैशोराकारमद्भुतम्। यमाहुर्यौवनोद्भिन्नश्रीमन्मदनमोहनम् ॥५७॥ अखण्डातुलपीयूष-रसानन्दमहार्णवम्। जयति श्रीपतेर्गूढं वपुः कैशोररूपिणः ॥ ५८ ॥ एकमप्यव्ययं पूर्व्वं बल्लवीवृन्दमध्यगम्। ध्यानगम्यं प्रपश्यन्ति रुचिभेदात् पृथग्धियः ॥ ५९ ॥ यन्नखेन्दु-रुचिर्ब्रह्म ध्येयं ब्रह्मादिभिः सुरैः। गुणत्रयमतीतं तं वन्दे वृन्दावनेश्वरम् ॥ ६० ॥ वृन्दावनपरित्यागो गोविन्दस्य न विद्यते।

कैशोर अवस्था तेरह, पर उसकी सीमा पन्द्रह वर्ष तककी है ॥ ५४ ॥ यौवनावस्थासे न्यारी किशोरावस्था नई तरुणाई कहलाती है, वही अवस्था श्रीकृष्णका सर्व्वस्व है। शेषकी दो प्रपञ्च-कल्पित हैं ॥ ५५ ॥ बालगोपाल ग्वालको भजो, पौगण्डके ध्यानमें ग्वालवेषधारी गोपालको भजो ॥ ५६ ॥ और अद्भुत कैशोर-रूपको मदनगोपाल कहके मैं भजता हूं। तरुणतासे भिन्न कैशोरावस्थासे सम्पन्न उन्हींको श्रीमान् मदनमोहन कहते हैं ॥ ५७ ॥ वही अखण्डित और अतुलित आनन्द रसके अमृतके महासागर हैं। कैशोररूपी रहस्यमय देह-वाले श्रीपतिकी जय हो ॥ ५८ ॥ अनादि, अव्यय, गोपिकागण मध्यचारी, एक ही कृष्णको बुद्धिमान् ध्यानकी पहुंचसे उक्त तीन अवस्थाओंमें पृथक् पृथक् देखते हैं ॥ ५९ ॥ जिनके नखरूपी चन्द्रमाकी ज्योतिको ब्रह्मा भी ध्यान करता है, चतुरानन आदि देव भी जिसे भजते हैं, जो त्रिगुणसे अतीत है, मैं उसी वृन्दावनेश्वरको भजता हूं ॥ ६० ॥ वृन्दावनको छोड़के श्रीकृष्ण कदापि कहीं नहीं जाते।

अन्यत्र यद्गुरुस्तत् तु कृत्रिमं तन्न संशयः॥ ६१॥ सुलभं व्रज-नारीणां दुर्लभं तन्मुमुक्षुणाम्। तं भजे नन्दसूनुं यन्नखतेजः परं मनुः॥ ६२॥ पार्व्वत्युवाच। भुक्तिमुक्तिस्पृहा यावत् पिशाची हृदि वर्त्तते। तावत् प्रेमसुखस्यात्र कथमभ्युदयो भवेत्॥ ६३॥ ईश्वर उवाच। साधु पृष्टं त्वया भद्रे यन्मे मनसि वर्त्तते। तत्सर्व्वं कथयिष्यामि सावधाना निशामय॥ ६४॥ स्मृत्वा गुणान् स्मरन् नाम गानं वा मनरञ्जनम। बोधयत्यात्मनात्मानं सततं प्रेम्णि लीयते॥ ६५॥

इत्यष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

अन्यत्र जो स्फूर्त्ति है, सो कृत्रिम है, इसमें सन्देह नहीं॥ ६१॥ जो ब्रजकी गोपियोंको सुलभ है और मोक्ष प्रार्थियोंको दुर्लभ है, मैं उन्हीं गोविन्दको भजता हूं, जिनके नखका परम तेज मनु है॥ ६२॥ पार्वती बोलीं, जबतक इस हृदय, भोग-मोक्षादिकी लालसा पिशाचीकी न्याईं रहती है, तबतक इसमें प्रेमके सुखका अभ्युदय कैसे हो॥ ६३॥ महादेव बोले, हे भद्रे! तुमने भली बात पूछी, जो मेरे हृदयमें है सो सब मैं कहता हूं, सावधान होके सुनो॥ ६४॥ भगवान्‌के गुणोंका स्मरण करके, उनका नाम स्मरण करके, वा मनोरञ्जन कृष्णके गीत गाके, आप ही अपनेको समझावे, तो मनुष्य प्रेममें लीन होता है॥ ६५॥

अष्टम अध्याय समाप्त।

नवमोऽध्यायः ।

पार्व्वत्युवाच । वैष्णवानाञ्च यद्धर्म्मं सर्व्वं तथ्यञ्च मे वद । यत् ज्ञात्वा मानवाः सर्व्वे भवाम्भोधिं तरन्ति हि ॥ १ ॥ ईश्वर उवाच । अथ द्वादशधा शुद्धिर्वैष्णवानामिहोच्यते । गृहोपलेपनञ्चैव तथानुगमनं हरेः ॥२॥ भक्त्या प्रदक्षिणञ्चैव पादयोः शोधनं पुनः । पूजार्थं पत्र-पुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः ॥३॥ करयोः सर्व्वशुद्धीनामियं शुद्धि-र्विशिष्यते । तन्नामकीर्त्तनञ्चैव गुणानामपि कीर्त्तनम् ॥ ४ ॥ भक्त्या श्रीकृष्णदेवस्य वचसः शुद्धिरिष्यते । तत्कथाश्रवणञ्चैव तस्योत्सवनिरीक्षणात् ॥५॥ श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते । पादोदकञ्च निर्माल्यं मालानामपि धारणम् ॥६॥ उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य

पार्वती जी बोलीं, वैष्णवोंके जो यथायोग्य धर्म्म हैं, सो तत्त्व समेत मुझसे कहो । उनको करके निश्चय ही सब मनुष्य संसार-समुद्रसे पार जाते हैं ॥ १ ॥ महादेव जी बोले, अब हम यहाँ वैष्णवोंकी बारह प्रकारकी शुद्धि कहते हैं । घरका लीपना, श्रीकृष्णका अनुगमन, सेवन आदि ॥ २ ॥ भक्तिसे परिक्रमा करना, दोनों पैरका धोना, श्रीकृष्णकी पूजाके लिये भक्तिसे तुलसीदल और पुष्पोंका तोड़ना ॥ ३ ॥ दोनों हाथोंकी शुद्धि, श्रीकृष्णके नामका कीर्त्तन तथा उनके गुणोंका कीर्त्तन सब शुद्धियोंमें यही शुद्धि बड़ी भारी कही गई है ॥ ४ ॥ भक्तिसे श्रीकृष्णके गुणगानसे वाणी शुद्ध होती है । श्रीकृष्णकी कथाका सुनना और हरिकी लीलाके उत्सव, आदिको देखना ॥ ५ ॥ इनसे दोनों कान तथा आंखोंकी पूरि शुद्धि कही गई । चरणामृत और

हरेः पुरः। आघ्राणं तस्य पुष्पादेर्निर्म्माल्यस्य तथा प्रिये ॥ ७ ॥ विशुद्धिः स्यादन्तरस्य घ्राणस्यापि विधीयते। यत्र पुष्पादिकं यच्च कृष्णपादयुगार्पितम् ॥८॥ तदेकं पावनं लोके तद्धि सर्व्वं विशोधयेत्। पूजा च पञ्चधा प्रोक्ता तासां भेदं शृणुष्व मे ॥९॥ अभिगमनमुपादानं योगः स्वाध्याय एव च। इज्या पञ्चप्रकारार्च्चा क्रमेण कथयामि ते ॥ १० ॥ तत्राभिगमनं नाम देवतास्थानमार्ज्जनम्। उपलेपञ्च निर्म्माल्यदूरीकरणमेव च ॥ ११ ॥ उपादानं नाम गन्धपुष्पादिचयनं तथा। योगो नाम स्वदेवस्य स्वात्मनैवात्मभावना ॥ १२ ॥ स्वाध्यायो नाम मन्त्रार्थानुसन्धापूर्व्वको जपः।

उतरी हुई माला आदिको धारण करना ॥ ६ ॥ हरिके आगे नमस्कार करनेसे शिरकी शुद्धि होती है। हे प्रिये! श्रीकृष्णके निर्म्माल्यको पुष्प आदिकका सूंघना ॥ ७ ॥ इससे नासिका-अन्तःकरणकी शुद्धिका विधान होता है। जहां श्रीकृष्णके दोनों चरणारविन्दमें चढ़ा हुआ, पुष्पादिक है ॥ ८ ॥ वह एक ही संसारमें पवित्र है, वही सबको शुद्ध करता है। पूजा पांच प्रकारकी कही गई है, उनके भेद भी हमसे सुनो ॥ ६ ॥ प्रथम अभिगमन, द्वितीय उपादान, तृतीय योग, चतुर्थ स्वाध्याय, पञ्चम इज्या—इन पांचों प्रकारोंको मैं तुमसे क्रमानुसार कहता हूं ॥ १० ॥ देवताके स्थानको शोधन करते रहनेका नाम अभिगमन तत्त्व है। इसी भांति इष्टदेवके चढ़े हुए पुष्पादिका विधिवत् दूर करना, और नया उपलेपन करना ॥ ११ ॥ गन्ध, पुष्प आदिको चुनके रखनेका नाम उपादान है। अपने इष्टदेव और अपनी आत्माका एकीभाव समझनेका नाम योग है ॥ १२ ॥ मन्त्रोंको अर्था-

स्तुतिस्तोत्रादिपाठश्च हरेः सङ्कीर्त्तनं तथा ॥ १३ ॥ तत्त्वादिशास्त्राभ्यासश्च स्वाध्यायः परिकीर्त्तितः। इज्या नाम स्वदेवस्य पूजनञ्च यथार्थतः ॥ १४ ॥ इति पञ्चप्रकारार्च्चा कथिता तव सुव्रते। सार्ष्टि-सामीप्यसालोक्य-सायुज्यसारूप्यदा क्रमात् ॥ १५ ॥ प्रसङ्गात् कथयिष्यामि शालग्रामशिलार्च्चनम्। केशवादिचतुर्बाहोर्दक्षिणोर्द्ध-करक्रमात् ॥ १६ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मी केशवाख्यो गदाधरः। नारायणः पद्मगदाचक्रशङ्खायुधैः क्रमात् ॥ १७ ॥ माधवश्चक्र-शङ्खाभ्यां पद्मेन गदया भवेत्। गदाब्जशङ्खचक्री च गोविन्दाख्यो गदाधरः ॥ १८ ॥ पद्मशङ्खारिगदिने विष्णुरूपाय ते नमः। स शङ्खाब्जगदाचक्र-मधुसूदनमूर्त्तये ॥ १९ ॥ नमो गदारिशङ्खाब्जयुतः

पूर्वक, जप, स्तुति और स्तोत्र आदिका पाठ, श्रीहरिका सङ्कीर्त्तन और तत्त्व आदि शास्त्रोंका अभ्यास, यह स्वाध्यायके नामसे परिकीर्त्तित है। यथार्थसे अपने इष्टदेवकी पूजा करनेका नाम इज्या है ॥ १३। १४ ॥ हे सुव्रते! इस प्रकार हमने तुमसे पूजाके पांचो प्रकार कहे। ये क्रमसे सार्ष्टि, सामीप्य, सालोक्य, सायुज्य और सारूप्य धामकी गतियोंके देनेवाले हैं ॥ १५ ॥ प्रसङ्गसे मैं तुमसे शालग्राम शिलाकी पूजाकी विधि कहता हूं। शालग्रामके केशव आदिरूप चारों भुजाओंके दाहिने और ऊर्द्ध क्रमसे कहता हूं ॥ १६ ॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्मके धारण करनेवाले गदाधर केशव हैं। पद्म, गदा, चक्र, शङ्ख, इन आयुधोंको, उक्त क्रमसे धारण करनेवाले ही नारायण हैं ॥ १७ ॥ चक्र और शङ्ख, पद्म और गदासे शोभित माधव हैं। गदा और पद्म, शङ्ख और चक्रसे युक्त गदाधर गोविन्द हैं ॥ १८ ॥ पद्म, शङ्ख, चक्र

त्रिविक्रमाय च। शारिकौमोदकीपद्मशङ्खवामनमूर्त्तये॥ २०॥
चक्राब्जशङ्खगदिने नमः श्रीधरमूर्त्तये। हृषीकेश शारिगदाशङ्ख-
पद्मिन् नमोऽस्तु ते॥ २१॥ शाब्जशङ्खगदाचक्रापद्मनाभ स्वमूर्त्तये।
दामोदर शङ्खगदाचक्रपद्मिन् नमोऽस्तु ते॥ २२॥ शङ्खाब्जचक्रगदिने
नमः सङ्कर्षणाय च। शारिशङ्खगदाब्जाय वासुदेव नमोऽस्तु ते॥२३॥
शङ्खचक्रगदाब्जाय च्युतप्रद्युम्नमूर्त्तये। नमोऽनिरुद्धाय गदाशङ्खाब्जारि-
विधारिणे॥ २४॥ शाब्जशङ्खगदाचक्रापुरुषोत्तममूर्त्तये। नमोऽ-
धोक्षजरूपाय गदाशङ्खारिपद्मिने॥ २५॥ नृसिंहमूर्त्तये पद्म-

और गदाके धारण करनेवाले विष्णुरूपी शालग्रामको नमस्कार है।
शङ्ख, पद्म, गदा, चक्रसे युक्त मधुसूदन शालग्रामको नमस्कार है॥ १६॥
गदा, चक्र, शङ्ख और पद्मसे युक्त त्रिविक्रम शालग्रामको नमस्कार
है। चक्र, गदा, पद्म, शङ्खसे शोभित वामन मूर्त्तिको नमस्कार
है॥ २०॥ चक्र, पद्म, शङ्ख, गदासे युक्त श्रीधर मूर्त्तिको नमस्कार है।
चक्र, गदा, शङ्ख, पद्मके धारण करनेवाले, हे हृषीकेश! तुमको नमस्कार
है॥ २१॥ पद्म, शङ्ख, गदा, चक्रसे युक्त पद्मनाभको नमस्कार है।
शङ्ख, गदा, चक्र, पद्मसे विभूषित दामोदरको नमस्कार है॥ २२॥ शङ्ख,
पद्म, चक्र, गदासे भूषित संकर्षणको नमस्कार है। चक्र, शङ्ख, गदा,
पद्मसे विराजित वासुदेवको नमस्कार है॥ २३॥ शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म
धारण करनेवाले प्रद्युम्न मूर्त्तिको नमस्कार है। गदा, शङ्ख, पद्म, चक्रको
क्रमसे धारण करनेवाले अनिरुद्धको नमस्कार है॥ २४॥ पद्म, शङ्ख,
गदा, चक्रको उक्त क्रमसे धारण करनेवाले पुरुषोत्तम मूर्त्तिको नमस्कार
है। गदा, शङ्ख, चक्र, पद्मके धारण करनेवाले अधोक्षज शालग्रामको

गदाशङ्खारिधारिणे । पद्मारिशङ्खगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ॥२६॥ सगदाब्जारिशङ्खाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये । शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृक् ॥ २७ ॥ शुक्लाभरेखः शोभाढ्यः स देवः श्रीगदाधरः । लग्नद्विचक्रो रक्ताभः पूर्व्वभागस्तु पुष्कलः ॥२८॥ सङ्कर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः । सुदीर्घसुषिरच्छिद्रो ह्यनिरुद्धस्तु वर्त्तुलः ॥२९॥ नीलो द्वारे त्रिरेखश्च अथ नारायणोऽसितः । मध्ये गदाकृती रेखा नाभिपद्मं महोन्नतम् ॥३०॥ पृथुचक्रो नृसिंहो यः कपिलो यस्त्रिबिन्दुकः । अथवा पञ्चबिन्दोस्तु पूजनं ब्रह्मचारिणः ॥३१॥ वराहः स त्रिलोङ्गो यो विषमद्वयचक्रकः । नील-

---

नमस्कार है ॥ २५ ॥ पद्म, गदा, शंख, चक्रके धारण करनेवाले नृसिंहको नमस्कार है। पद्म, चक्र, शङ्ख, गदासे विराजित अच्युतको नमस्कार है ॥ २६ ॥ गदा, पद्म, चक्र, शङ्खको धारण करनेवाले श्रीकृष्णरूपी शालग्रामको नमस्कार है। श्रीकृष्ण मूर्त्ति शालग्राम-शिलाके द्वारसे लगे हुए दो चक्रको धारण करनेवाली है ॥ २७ ॥ जिसमें लाल वर्णके दो चक्र लगे हों, अगाड़ीका भाग पुष्कल हो, श्वेत रेखासे मण्डित हो, वही शोभाढ्य स्वरूप श्रीगदाधर देवका है ॥ २८ ॥ जिनके चक्र छोटे हों और पीले रंगके हों वही सङ्कर्षण और प्रद्युम्न हैं। दीर्घ और अर्द्ध अण्डाकृति सूक्ष्म छिद्रवाले अनिरुद्ध हैं ॥ २९ ॥ बीचमें गदाके आकारकी रेखा हो, नाभिमें ऊंचा पद्म हो, द्वारपर नीली तीन लकीरें हों, वह श्याम मूर्त्ति ही नारायण हैं ॥ ३० ॥ मोटे चक्रसे युक्त, तीन अथवा पांच बिन्दुओंसे शोभित, पीले रंगकी ही नृसिंह मूर्त्ति है, वह ब्रह्मचारियोंकी भी पूज्य है ॥ ३१ ॥ दो विषम चक्रसे युक्त,

स्त्रिरेखः स्थूलोऽथ कूर्ममूर्त्तिः सबिन्दुकः ॥३२॥ कृष्णः स वर्त्तुला-वर्त्तपाण्डुरो धृतपृष्ठकः। श्रीधरः पञ्चरेखश्च वनमाली गदाङ्कितः॥३३॥ वामनो वर्त्तुलो नाम मध्यचक्रः सनीलकः। नानावर्णानेक-मूर्त्तिनागभोगी त्वनन्तकः॥ ३४॥ स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्रः सनीलकः। सङ्कर्षणद्वारकोऽव्यादथ ब्रह्मा सुलोहितः॥३५॥ सुदीर्घरेखासुषिर एकचक्राम्बुजः पृथुः। पृथुचक्रः स्थूलच्छिद्रः कृष्णो बिन्दुश्च बिन्दुमान्॥ ३६॥ हयग्रीवोऽङ्कुशाकारपञ्चरेखः सकौस्तुभः। वैकुण्ठोऽमलवर्णाति एकचक्रमयोऽसितः॥३७॥ मत्स्यो दीर्घाम्बुजाकारो दीर्घरेखश्च पाण्डुरः। रामचन्द्रो दक्षरेखो यः

तीन चिन्होंसे शोभित वराह मूर्त्ति है। नीली तीन रेखाओंसे लक्षित, बिन्दुसहित स्थूल मूर्त्ति ही कूर्म्म है॥३२॥ पीठको धरे हुए, लंबे आवर्त्तोंसे शोभित पांडर वर्णके शालग्राम ही कृष्ण हैं। पांच रेखा-वाले श्रीधर और गदासे अलंकृत वनमाली हैं॥३३॥ खर्व अखाकृत बीचमें नीले चक्रवाले ही वामन हैं। नाना रङ्गोंकी अनेक मूर्त्तियां नामसे चिन्हित ही अनन्तक हैं॥३४॥ बीचमें नीले चक्रवाली, स्थूल नीली मूर्त्ति ही दामोदरकी है। द्वारसे युक्त सङ्कर्षण और लोहित वर्णके ब्रह्मारूपी शालग्राम जगतकी रक्षा करे॥३५॥ दीर्घ रेखावाली सुन्दर एक एक चक्र और कमलसे शोभित, मोटे चक्रवाली, मोटे छिद्रवाली श्याम बिन्दुसे शोभित मोटी मूर्त्ति बिन्दुमान्की है॥३६॥ कौस्तुभ-सहित पांच रेखाओंसे युक्त, अङ्कुशाकार ही हयग्रीव हैं। एक चक्रसे शोभित श्याम निर्म्मल मूर्त्ति वैकुण्ठकी है॥३७॥ दीर्घ रेखावाली, दीर्घ कमलके आकारवाली पाण्डुर

श्यामः स त्रिविक्रमः ॥ ३८ ॥ शालग्राम द्वारकायां स्थिताय गदिने नमः। एकेन लक्षितो योऽव्याद् गदाधारी सुदर्शनः ॥३९॥ लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्यां त्रिभिश्चैव त्रिविक्रमः। चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्च पञ्चभिः ॥ ४० ॥ प्रद्युम्नः षड्भिरेवाव्यात् सङ्कर्षणश्च सप्तभिः। पुरुषोत्तमोऽष्टभिश्च स्यान्नवव्यूहो नवोदितः ॥ ४१ ॥ दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतारश्च। द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्द्ध्वमनन्तकः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुस्रगुन्नतः। महेश्वरः पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वजः ॥ ४३ ॥ यथायुधस्तथा गौरी चण्डिका च सरस्वती। महालक्ष्मीर्मातरश्च पद्महस्तो दिवाकरः ॥ ४४ ॥ गजास्यश्च गजस्कन्धः षण्मुखोऽनेकधा गणाः। एते स्थिताः

मूर्त्ति मत्स्यकी है। दाहिने भागमें चक्रसे युक्त, वही रेखासे मण्डित श्याम त्रिविक्रम मूर्त्ति श्रीरामकी है ॥ ३८ ॥ शालग्रामके द्वारमें स्थित गदाधारीको नमस्कार है। उनके ऊपर एक रेखा है, वही सुदर्शन नामे गदाधारी शालग्राम जगत्की रक्षा करें ॥ ३९ ॥ लक्ष्मीनारायण दो रेखाओंसे, त्रिविक्रम तीनसे, चतुर्व्यूह चारसे, वासुदेव पांचसे ॥४०॥ प्रद्युम्न छःसे, सङ्कर्षण सातसे, पुरुषोत्तम आठसे, और नवसे व्यूह नौ रेखाओंसे युक्त होके रक्षा करें। ४१ ॥ दसवें अनिरुद्धके सहित दसों अवतार रक्षा करें। ये बारहो, द्वादश आत्मा हैं, इनके पर अनन्तक है ॥ ४२ ॥ ब्रह्मा चतुर्मुख, दण्डी और कमण्डलुको उठानेवाले हैं। महादेव वृषध्वज पञ्चमुख और दशभुज हैं ॥ ४३ ॥ जैसे जिसको आयुध हैं, वैसेही चण्डी गौरी, सरस्वती, महालक्ष्मी माता हैं। सूर्य हाथमें कमल लिये हुए हैं ॥ ४४ ॥ गणेश हाथीके मुखवाले हैं,

स्थापिताः स्युः प्रासादे वाथ पूजिताः ॥ ४५ ॥ धर्म्मार्थकाममोक्षा
ह्वि प्राप्यन्ते पुरुषेण च ॥ ४६ ॥

इति नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

ईश्वर उवाच। शालग्रामे मणौ यन्त्रे मण्डले प्रतिमासु च। नित्यन्तु श्रीहरेः पूजा केवले भवने न तु ॥ १ ॥ गण्डक्यामेकदेशे तु शालग्रामस्थलं महत्। पाषाणं तद्भवं प्रातु शालग्राममिति स्थितम् ॥ २ ॥ शालग्रामशिलास्पर्शात् कोटिजन्माघनाशनम्। किं पुनः पूजनं तत्र हरेः सान्निध्यकारणम् ॥ ३ ॥ शालग्रामैकयजना-

---

कार्त्तिकेय गणोंके सेनापति हैं। इनको भी स्थित और स्थापित करके सुन्दर मन्दिरमें पूजे ॥ ४५ ॥ क्योंकि मनुष्य ही धर्म, अर्थ, काम मोक्षको पाते हैं ॥ ४६ ॥

नवम अध्याय समाप्त हुआ ॥

महादेव जी बोले, शालग्राममें, मणिमें, यन्त्रमें, मण्डलमें, प्रतिमामें, केवल भवनहीमें नहीं, श्रीहरिकी पूजा तो सर्व्वत्र नित्य कर्त्तव्य है ॥ १ ॥ गण्डकी नदीके एकदेशमें विशाल शालग्रामका स्थल है। वहांसे उत्पन्न शालग्राम नामसे स्थित शिला सबकी रक्षा करे ॥ २ ॥ शालग्रामकी शिलाके स्पर्शमात्रसे करोड़ों जन्मके अघनाश होते हैं, फिर पूजनकी तो कहें ही क्या? वह हरिकी सामीप्य मोक्ष देता है ॥३॥

च्छतलिङ्गफलं लभेत्। बहुभिर्जन्मभिः पुण्यैर्यदि कृष्णाशिलां लभेत् ॥ ४ ॥ गोष्पदेन च चिह्नेन जनुस्तेन समाप्यते। आदौ शिलां परीक्षेत स्निग्धां श्रेष्ठाञ्च मेचकाम् ॥ ५ ॥ आकृष्णा मध्यमा प्रोक्ता मिश्रा मिश्रफलप्रदा। सदा काष्ठे स्थितो वह्निर्मथनेन प्रकाश्यते ॥ ६ ॥ यथा तथा हरिर्व्यापी शालग्रामे प्रतीयते। प्रत्यहं द्वादश शिलाः शालग्रामस्य योऽर्च्चयेत् ॥ ७ ॥ द्वारवत्याः शिलायुक्ताः स वैकुण्ठे महीयते। शालग्रामशिलायान्तु गह्वरं लक्षते नरः ॥८॥ पितरस्तस्य तिष्ठन्ति तृप्ताः कल्पान्तकं दिवि। वैकुण्ठभवनं तत्र यत्र द्वारावती-शिला ॥९॥ मृतो विष्णुपुरं याति तत् तीर्थं योजनत्रयम्। जपः पूजा च होमश्च सर्व्वं कोटिगुणं भवेत् ॥ १० ॥

यदि बहुत जन्मोंके पुण्योंसे कृष्णरूपी शालग्राम शिला मिल जाय, तो एक शालग्राम हीके पूजनेसे शतलिङ्गोंका फल पाता है ॥ ४ ॥ वह शिला गायके खुरसे चिन्हित हो, तो पूजकका जन्म फिर नहीं होता। पहले चिकनी, सुन्दर, काली शिलाको परखे ॥ ५ ॥ मध्यमा, पर सांवली शिला मिश्रामिश्र फलकी देनेवाली होती है। ये गुण-दोष शिलामें गुप्त रहते हैं, जैसे काष्ठमें अग्नि, वह केवल मथनसे ही प्रकाशित होती है ॥ ६ ॥ शालग्राममें यथा तथा विष्णु ही व्याप्त हैं, सो प्रतिदिन शालग्रामकी द्वादश शिलाओंको जो पूजता है ॥ ७ ॥ वे शिलायें द्वारावतीकी शिलाओंसे युक्त हों, तो वह वैकुण्ठको जाता है। मनुष्य शालग्राम शिलामें जो गह्वर देखता है ॥८॥ वैसी द्वारावती शिला ही जहां हो, वहीं वैकुण्ठलोक है। पूजनेवालेके पितर कल्पके अन्ततक स्वर्गमें तृप्त होके रहते हैं ॥ ९ ॥ पूजक मृत होके विष्णु-

मनस्कामसमाप्नोति कोटिशः फलमाप्नुयात्, कीटकोऽपि मृतिं याति वैकुण्ठभवनं यतः ॥ ११ ॥ शालग्रामशिलायां यो मूल्यमुद्घाटयेन्नरः। विक्रेता चानुमन्ता च यः परीक्षानुमोदकः ॥ १२ ॥ सर्वे ते नरकं यान्ति यावत् सूर्यस्य सम्भवः। अतस्तद्वर्जयेद्देवि चक्रक्रयविक्रयम् ॥ १३ ॥ शालग्रामोद्भवो देवो यो देवो द्वारकोद्भवः। उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥ १४ ॥ द्वारकोद्भवचक्राढ्यो बहुचक्रेण चिह्नितः। चक्रासनशिलाकारश्चित्स्वरूपो निरञ्जनः ॥ १५ ॥ नमोऽस्त्वोङ्काररूपाय सदानन्दस्वरूपिणे। शालग्राम महाभाग भक्तस्यानुग्रहं कुरु ॥ १६ ॥ तवानुग्रहकामस्य

पुरीको जाता है। उस शिलासे तीन योजनतक भूमि तीर्थ होती है। वहां जप, पूजा, होम आदि सबका करोड़ गुण फल होता है ॥ १० ॥ इसमें संशय नहीं, कि उस स्थानसे कोस भरकी दूरीसे कीट भी मरके वैकुण्ठ लोकको जाता है ॥ ११ ॥ शालग्रामकी शिलाका जो मनुष्य मूल्य करता है, जो बेचनेवाला बीचमें हांहां करनेवाला और परीक्षा करनेवाला, जबतक सूर्य हैं और जबतक प्रलय होगी, तबतक नरकमें वास करेंगे। हे देवि! शालग्राम चक्रका बेचना और मोल लेना दोनों वर्जन करे ॥ १२ । १३ ॥ शालग्रामवासी देव और द्वारावतीवासी देव, जहां दोनोंका सङ्गम है, वहीं मुक्ति है, इसमें सन्देह नहीं ॥ १४ ॥ द्वारावतीसे उत्पन्न चक्रसे युक्त देव बहुत चक्रोंसे शोभित होते हैं। वही चक्र आसनसे युक्त शिलाकार देव चित्स्वरूप निरञ्जन हैं ॥ १५ ॥ पूजक कहे, "तुम ओङ्काररूपी, सदानन्द-स्वरूपीको नमस्कार है। हे शाल-

ऋणग्रस्तस्य मे प्रभो। अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलकस्य विधिं मुदा ॥ १७ ॥ यच्छ्रुत्वा मानवाः सर्व्वे विष्णुसायुज्यमाप्नुयुः। ललाटे केशवं विद्यात् कण्ठे श्रीपुरुषोत्तमम् ॥ १८ ॥ नाभौ नारायणं देवं वैकुण्ठं हृदये तथा। दामोदरं वामपार्श्वे दक्षिणे च त्रिविक्रमम् ॥ १९ ॥ मूर्द्ध्नि चैव हृषीकेशं पद्मनाभञ्च पृष्ठतः। कर्णयोर्यमुनां गङ्गां बाह्वोः कृष्णं हरिं तथा ॥ २० ॥ यथास्थानेषु तुष्यन्ति देवता द्वादश स्मृताः। द्वादशैतानि नामानि कर्त्तव्ये तिलके पठेत् ॥ २१ ॥ सर्व्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति। ऊर्द्ध्वपुण्ड्रमूर्द्ध्वरेखं ललाटे यस्य दृश्यते ॥ २२ ॥ चण्डालोऽपि स शुद्धात्मा पूज्य एव न संशयः। यस्योर्द्ध्वपुण्ड्रं दृश्येत न ललाटे नरस्य हि ॥ २३

माना। हे महाभाग। भक्तपर कृपा करो ॥ १६ ॥ हे प्रभो! तुम्हारे सहवासकी ही मुझे कामना है, मैं ऋणग्रस्त हूं।" अब मैं सबपर होके तिलककी विधि कहता हूं ॥ १७ ॥ इस विधिको सुनके सब मनुष्य विष्णुका सायुज्य पाते हैं। ललाटमें केशवको जाने, कण्ठमें पुरुषोत्तमको जाने ॥ १८ ॥ नाभिमें नारायण देवको जाने, हृदयमें वैकुण्ठको, बाम पार्श्वमें दामोदरको, दाहिनेमें त्रिविक्रमको ॥ १९ ॥ शिरमें हृषीकेशको, पीठमें पद्मनाभको। दोनों कानोंमें यमुना और गङ्गाको, दोनों भुजाओंमें कृष्ण और हरिको ॥ २० ॥ ये बारहों देवता स्मरण करनेसे यथास्थानमें सन्तुष्ट होते हैं। तिलक करते समय यह बारहो नाम जो कहे ॥ २१ ॥ सो सब पापोंसे विशुद्ध होके विष्णुलोकको जाता है। जिसके ललाटमें ऊपरको रेखावाला ऊर्द्ध्वपुण्ड्र दिखाई देता है ॥२२॥ वह शुद्धात्मा चाण्डाल भी हो, तो पूज्य है; इसमें

तद्दर्शनं न कर्त्तव्यं दृष्ट्वा सूर्य्यं निरीक्षयेत्। त्रिपुण्ड्रं यस्य विप्रस्य ऊर्द्धपुण्ड्रं न दृश्यते ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वाप्यथवा स्पृष्ट्वा सचैलं स्नानमाचरेत्। सान्तरालं प्रकर्त्तव्यं पुण्ड्रं हरिपदाकृति ॥ २५ ॥ निरन्तरालं यः कुर्यादूर्द्धपुण्ड्रं द्विजाधमः॥ ललाटे तस्य सततं शुनः पादो न संशयः ॥ २६ ॥ नासादिकेशपर्य्यन्तमूर्द्धपुण्ड्रं सुशोभनम्। मध्ये छिद्रसमायुक्तं तं विद्याद्धरिमन्दिरम् ॥ २७ ॥ वामभागे स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु सदाशिवः। मध्ये विष्णुं विजानीयात् तस्मान्मध्यं न लेपयेत् ॥ २८ ॥ वीक्ष्यादर्शे जले वापि यो विदध्यात् प्रयत्नतः। ऊर्द्धपुण्ड्रं महाभाग स याति परमां गतिम् ॥ २९ ॥ अग्निरापश्च वेदाश्च चन्द्रादित्यौ तथानिलः। विप्राणां

सन्देह नहीं। जिस मनुष्यके ललाटमें ऊर्द्धपुण्ड्र न दिखलाई दे ॥ २३ ॥ उसके दर्शन न करें; करे तो सूर्यको देखे। और जिस विप्रके मस्तकमें त्रिपुण्ड्र हो और ऊर्द्धपुण्ड्र न दिखाई दे ॥२४॥ उसको देखके अथवा छूके वस्त्रसहित स्नान करे। रेखाओंके बीचमें हरिके चरणके आकारका ऊर्द्धपुण्ड्र लगावे ॥ २५ ॥ जो द्विजाधम बिना रेखाओंमें स्थान छोड़े ऊर्द्धपुण्ड्र लगाता है, इसमें सन्देह नहीं, कि उस मनुष्यके ललाटपर सर्वदा कुत्तेका पैर है ॥ २६ ॥ नासासे आरम्भ करके केशोंतक सुन्दर ऊर्द्धपुण्ड्रको लगावे। बीचमें छिद्रसे युक्त रखे। उसे हरिका मन्दिर समझे ॥ २७ ॥ वामभागमें ब्रह्माको स्थित जाने, दाहिनेमें सदाशिवको, मध्यमें विष्णुको जाने—इसी लिये मध्यभागको कदापि न लेपे ॥ २८ ॥ दर्पणमें न हो तो जलहीमें, मुंह देखके जो महाभाग यत्नसे ऊर्द्धपुण्ड्र लगाता है, सो परमगतिको पाता है ॥ २९ ॥

निवसेति हि कर्णे तिष्ठन्ति दक्षिणे ॥ ३० ॥ गङ्गा च दक्षिणे श्रोत्रे नासिकायां हुताशनः। उभयोरपि संस्पर्शात् तत्क्षणादेव शुध्यति ॥ ३१ ॥ कृत्वा चैवोदकं शङ्खे वैष्णवानां महात्मनाम्। तुलसीमिश्रितं दद्यात् शिरेणैवाभिवन्दयेत् ॥ ३२ ॥ प्राशयेत् मोक्षयेद्देहं पुत्रमित्रपरिग्रहम्। विष्णोः पादोदकं पीतं कोटि-जन्माघनाशनम् ॥ ३३ ॥ तदेवाष्टगुणं पापं भूमौ बिन्दुनिपातनात्। जलशङ्ख करे कृत्वा स्तुत्वा नत्वा प्रदक्षिणम् ॥ ३४ ॥ सततं धार्यते वारि तेनाप्तं जन्मनः फलम्। शङ्खो यस्य गृहे नास्ति घण्टा वा गरुड़ान्विता ॥ ३५ ॥ पुरतो वासुदेवस्य न स भागवतः कलौ।

अग्नि, जल, वेद, चन्द्र, सूर्य्य, वायु—सब ब्राह्मणोंके कानमें स्थित रहते हैं ॥ ३० ॥ दाहिने कानमें गङ्गा स्थित हैं. नासिकामें अग्नि,। इन दोनोंके स्पर्शसे मनुष्य उसी क्षण शुद्ध होता है ॥ ३१ ॥ महात्मा वैष्णव लोगोंके शङ्खमें तुलसी मिश्रित जलको देनेपर ग्रहण करे। पहले उस जलको शिरसे नमस्कार करे ॥ ३२ ॥ फिर उसे पान करे, उसे देहपर, पुत्र, मित्र, स्त्रीपर छिड़के, विष्णुका चरणामृत पीके कोटि-जन्मके पापोंका नाश होता है ॥ ३३ ॥ पर चरणामृतको एक भी बूंद धरतीमें डालनेसे उसीसे अठगुना पाप होता है। जलके शङ्खको हाथमें करके, उसीकी स्तुति करके, नमस्कार करके, तथा उसीकी प्रदक्षिणा करके ॥ ३४ ॥ जो सदा जलको धारण करता है, वह जन्मका फल पाता है। जिनके घरमें शङ्ख नहीं, अथवा गरुड़की मूर्त्तिसे शोभित घण्टा ॥ ३५ ॥ भगवान् शालग्रामके आगे नहीं है, कलियुगमें वह वैष्णव नहीं है।—सवारीपर चढ़के अथवा जूता पहिरके भगवान्के

यानैर्वा पादुकाभिर्वा यानं भगवतो गृहे ॥ ३६ ॥ देवोत्सवेष्वसेवा च अप्रणामस्तदग्रतः । उच्छिष्टे चैव चाशौचे भगवद्वन्दनादिकम् ॥ ३७ ॥ एकहस्तप्रणामश्च तत्पुरस्तात् प्रदक्षिणम । पादप्रसारणञ्चाग्रे तथा पर्य्यङ्कसेवनम ॥ ३८ ॥ शयनं भक्षणञ्चापि मिथ्याभाषणमेव च । उच्चैर्भाषा मिथो जल्पो रोदनानि च विग्रहः ॥ ३९ ॥ निग्रहानुग्रहौ चैव स्त्रीषु च क्रूरभाषणम । कैवलावरणञ्चैव परनिन्दा परस्तुतिः ॥ ४० ॥ अश्लीलभाषणञ्चैव अधोवायुविमोक्षणम् । शक्तौ गौणोपचारश्च अनिवेदितभक्षणम् ॥ ४१ ॥ तत्तत्कालोद्भवानाञ्च फलादीनामनर्पणम् । विनियुक्तावशिष्टस्य

मन्दिरमें जल पीना, उत्सवके समय भगवान्की सेवा न करना और उनके आगे प्रणाम न करना । जूठे मुंह अथवा अशौचावस्थासे भगवान्की वन्दना आदि करना ॥ ३६ । ३७ ॥ एक हाथसे (सलामकी नाईं) प्रणाम करना, ठाकुर जीके आगेसे निकल जाना, ठाकुर जीके आगे टांग पसारना अथवा पलङ्गपर सोना ॥ ३८ ॥ सोना, भक्षण करना, झूठ बोलना, उच्चैःस्वरसे चिल्लाना, दो जनोंमें चुपके चुपके बातें करना, रोना, झगड़ना ॥ ३९ ॥ किसीको धमकाना, किसीपर अत्यन्त प्रीति जनाना, स्त्रियोंसे क्रूरवाणी बोलना, एक मात्र वस्त्र पहनना, पराई निन्दा करना, ठाकुर जीको छोड़के अन्यकी प्रशंसा करना ॥ ४० ॥ अश्लीलभाषा बकना भूसना अपान वायु छोड़ना, छिपाके बुरा काम करनेकी शक्ति रखना, भगवान्पर बिना चढ़ाये किसी वस्तुका खाजाना ॥ ४१ ॥ जिस समयमें जो जो फल आदि उत्पन्न हों, उनको ठाकुर जीको अर्पण न करना । भगवान्के योग्य रसोईमेंसे बचे हुए

प्रदानं वञ्चनस्य च ॥४२॥ सष्टौच्च्याशनञ्चैव परनिन्दा परस्तुतिः । गुरौ मौनं निजस्तोत्रं देवतानिन्दनं तथा ॥ ४३ ॥ अपराधास्तथा विष्णोर्द्वात्रिंशत् परिकीर्त्तिताः ॥ ४४ ॥ अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया । तवाहमिति मां मत्वा क्षमस्व मधुसूदन ॥ ४५ ॥ इति मन्त्रं समुच्चार्य्य प्रणमेद् दण्डवद्भुवि । अपराधसहस्राणि क्षमते सर्व्वदा हरिः ॥ ४६ ॥ सायं प्रातर्द्विजातीनां श्रुत्युक्तमशनं तथा । विष्णुभक्तावशिष्टस्य दिनपापात् प्रमुच्यते ॥ ४७ ॥ अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुः खादयेत्तां समनुस्मरन् । एवं ज्ञात्वा तु यो भुङ्क्ते सोऽन्नदोषैर्न लिप्यते ॥ ४८ ॥ अलावुं वर्त्तुलाकारं मसूरञ्च सवल्कलम् । तालं शुक्लञ्च वृन्ताकं न खादेद्वैष्णवो नरः ॥४९॥ वटाश्वत्थार्कपत्रेषु कुम्भी-

---

वञ्चनकी जिद किसीको दे देना ॥ ४२ ॥ खुला खुली पेट भरना, परनिन्दा, परस्तुति, गुरुके चुप बैठे होनेपर अपनी डींग हांकना ॥४३॥ ये बत्तीस भगवानको अपराध कहे गये ॥ ४४ ॥ "मैं तो रात दिनमें ऐसे सहस्रों अपराध करता हूं । हे मधुसूदन ! मैं तेरा हूं, मेरी रक्षा करो" ॥ ४५ ॥ यह मन्त्र कहके जो लकुटवत् भूमिमें गिरके प्रणाम करता है, ठाकुर जी सर्व्वदा उसके सहस्रों अपराध क्षमा करते हैं ॥ ४६ ॥ सन्ध्या और सवेरे विष्णुभक्तके बचे हुएको ब्राह्मणोंके वेदोक्त रीतिसे खानेसे दिन भरके पापोंसे मुक्ति होती है ॥ ४७ ॥ अन्नही ब्रह्मा हैं, रस ही विष्णु हैं, भोजनकर्त्ता महेश्वर हैं, इस स्मृतिके वचनानुसार जो ब्रह्मा, विष्णु और मुझे स्मरण करे और ऐसा जानके भोजन करे, वह अन्नके दोषसे लिप्त नहीं होता है ॥ ४८ ॥ गोल, पर कुछ लम्बे आकारकी लौकी, छिलकेदार मसूर, ताल, श्वेत बैंगन,

तिन्दुकपत्रयोः । कोविदारे कदम्बे च न खादेद्वैष्णवो नरः ॥ ५० ॥ श्रावणे वर्जयेच्छाकं दधि भाद्रपदे त्यजेत् । आश्विने मासि दुग्धञ्च कार्त्तिके चामिषं त्यजेत् ॥ ५१ ॥ दग्धमन्नन्तु जम्बीरं यद्विष्णोरनिवेदितम् । वीजपूरञ्च शाकञ्च प्रत्यक्षलवणं तथा ॥ ५२ ॥ यदि दैवाच्च भुञ्जीत तदा तन्नाम संस्मरेत् । हैमन्तिकं सिताखिन्नं धान्यं मुद्गास्तिला यवाः ॥ ५३ ॥ कलापकङ्गुनीवाराः शाकञ्च हिलमोचिका । कालशाकञ्च वास्तूकं मूलकं रक्तेतरत् ॥ ५४ ॥ लवणे सिन्धुसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी । पयोऽनुद्धृतसारञ्च पनसाम्रहरीतकी ॥ ५५ ॥ पिप्पली जीरकञ्चैव नागरङ्गकतिन्तिड़ी । कदलीलवलीधात्रीफलानि गुड़मैक्षवम् ॥ ५६ ॥ अतैलपक्वं मुनयो

वैष्णव मनुष्य इतनी वस्तु न खाय ॥ ४९ ॥ बड़ पाक, पाटल, तेंदू, कचनार, कदम्ब, इनके पत्तोंपर वैष्णव भोजन न करे ॥ ५० ॥ श्रावणमें हरे शाकको छोड़ दे, भादोंमें दहीको, क्वारमें दूधको और कात्तिकमें मांसको छोड़ दे ॥ ५१ ॥ सेका हुआ अन्न, जम्भीरी, बिजौरा, शाक ये चीजे बिना विष्णुपर चढ़ाये अथवा नोनकी प्रत्यक्ष ककड़ी—जो दैवात् भक्षण करले ॥ ५२ ॥ तो भगवान्का नाम स्मरण करे । हिम-ऋतुका धान, शक्कर, पका अन्न, मूंग (पाठान्तरमें राई), तिल, यव ॥ ५३ ॥ कलाप, कङ्गनी, वनधान, हिलमोची, चूक, श्राद्धयोग्यकालशाक बथुआ मूली जो लाल न हो ॥ ५४ ॥ सेंधा और समुद्रके दोनों नमक दधि और घी दोनों गव्य बिना मथा हुआ दूध कटहल आम हड़ा ॥ ५५ ॥ छोटी पीपल जीरा नारङ्गी इमली केला लवली अर्थात सुगन्धमूला रास्ना आंवला अन्यगुड़ ईखका गुड़ ॥ ५६ ॥ जो

हविष्यान्नं प्रचक्षते। तुलसीपत्रपुष्पाद्यैर्माल्यं वहति यो नरः ॥५७॥ विष्णुं जानीहि तं विप्र सत्यं सत्यं न संशयः। धात्रीफलं ललाटेन विष्णुतुल्यो भवेन्नरः ॥ ५८ ॥ कुरुक्षेत्रं विजानीयात् सार्द्धं हस्तशतत्रयम्। तुलसीकाष्ठघटितै रुद्राक्षाकारकारितैः ॥ ५९ ॥ निर्मितां मालिकां कण्ठे निधायार्चनमारभेत्। तथामलकमालाञ्च सम्यक् पुष्करमालिकाम् ॥ ६० ॥ कदम्बमालां यत्नेन धारयेद्विष्णुपूजकः। निर्माल्यं तुलसीमालां शिरस्यपि च धारयेत् ॥ ६१ ॥ निर्माल्यचन्दनेनाङ्गमङ्कयेत् तस्य नामभिः। ललाटे च गदा धार्य्या मूर्ध्नि चापं शरस्तथा ॥ ६२ ॥ नन्दकञ्चैव हृन्मध्ये शङ्खं चक्रं

घृत तेलमें न पकी हो—इतनी वस्तुओंको मुनि लोग हविष्यान्न कहते हैं। तुलसी पत्रकी अथवा फूल आदिकी मालाको जो मनुष्य धारण करता है ॥ ५७ ॥ उसको भी विष्णु ही जाने, यह बात सत्य है फिर सत्य है। आंवलेके फलको लगाके मनुष्य विष्णुके तुल्य होता है ॥ ५८ ॥ उस स्थानसे साढ़े तीन सौ हाथ तक कुरुक्षेत्र तीर्थ होता है। तुलसी काठकी रची हुई, रुद्राक्षके आकारकी बनाई हुई ॥ ५९ ॥ मालाको निर्मित करे और उसे कंठमें धारण करके पूजा आरम्भ करे। उसी भांति आंवलेकी माला अथवा सुन्दर कमलकी मालाको ॥ ६० ॥ विष्णुपूजक यत्नसे इतनी (पाठान्तरमें कदम्बकी) मालाओंको कण्ठमें धारण करे। ठाकुर जीकी उतरी हुई वस्तु और तुलसीकी मालाको शिरपर धारण करे ॥ ६१ ॥ उतरे हुए चन्दनसे अपने शरीर पर श्रीकृष्णकी नामावली लिखे, ललाटमें गदा धारण करके, शिरपर धनु

भुजद्वये । शङ्खचक्रान्वितो विप्रः श्मशाने म्रियते यदि ॥ ६३ ॥ प्रयागे या गतिः प्रोक्ता सा गतिस्तस्य निश्चिता । यो धृत्वा तुलसीपत्रं शिरसा विष्णुतत्परः ॥ ६४ ॥ करोति सर्व्वकार्य्याणि फलमाप्नोति चाक्षयम् । तुलसीकाष्ठमालाभिर्भूषितः कर्म्म आचरन् ॥ ६५ ॥ पितृणां देवतानाञ्च शतं कोटिगुणं भवेत् । निवेद्य केशवे मालां तुलसीकाष्ठनिर्म्मिताम् ॥ ६६ ॥ धारयेद्यो नरो भक्त्या तस्य नश्यति पातकम् । पाद्यादिभिरथाभ्यर्च्य इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ ६७॥ या दृष्टा निखिलाघसंघशमनी स्पृष्टा वपुःपावनी रोगाणामभिवन्दिता निरसनी सिक्तान्तकत्रासिनी । प्रत्यासत्तिविधायिनी भग-

---

वाण ॥ ६२ ॥ हृदयमें नन्दक दोनों भुजाओंमें शङ्ख और चक्र धरे । शङ्ख, चक्रसे युक्त विप्र यदि श्मशानमें मरे ॥ ६३ ॥ तो प्रयागमें जो गति कही गई है, निश्चय वही गति उसकी हो । जो विष्णु-परायण शिर पर तुलसी पत्र धारण करके ॥ ६४ ॥ सब कार्य्य करता है, वह अक्षय फल पाता है । तुलसी काष्ठकी मालासे जो मनुष्य भूषित हो काम करता है ॥ ६५ ॥ उसका पितृकर्म्म तथा देवपूजन कोटिगुण होता है । तुलसीमालाको पहले केशवको निवेदन करके ॥ ६६ ॥ जो मनुष्य भक्तिपूर्व्वक धारण करता है, उसके पाप नाश होते हैं, अतः उसे अर्घ पाद्यादिसे पूजके यह मन्त्र उच्चारण करे ॥ ६७ ॥ जो देखने मात्रसे समस्त पापोंका नाश करती है, छूनेसे शरीरको पवित्र करती है, नमस्कार करनेसे रोगोंको ध्वंस करती है, जल चढ़ानेसे यमराजको भी डराती है, संरोपण करनेसे भगवान् श्रीकृष्णका

व्रतः कृष्णस्य संरोपिता न्यस्ता तच्चरणे विमुक्तिफलदा तस्यै तुलस्यै नमः॥ ६८॥

इति दशमोऽध्यायः॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः।

पार्व्वत्युवाच। घोरे कलियुगे प्राप्ते विषयग्राहसङ्कुले। पुत्र-दारधनाद्यार्त्तौ तत् कथं धार्य्यते विभो॥ १॥ तदुपायं महादेव कथयस्व कृपानिधे॥ ईश्वर उवाच। हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्॥ २॥ हरे राम हरे कृष्ण कृष्ण कृष्णेति मङ्गलम्। एवं वदन्ति ये नित्यं न हि तान् बाधते कलिः॥ ३॥ अन्तरान्तर-

---

सामीप्य देती है, रखनेसे उनके चरणारविन्दमें प्रीति देके मुक्तिके फलको देती है. ऐसी देवी तुलसीको नमस्कार है॥ ६८॥

दशम अध्याय समाप्त।

पार्वती बोली, विषयरूपी भयङ्कर जलजन्तुओंसे पूर्ण घोर कलियुग समुद्रके प्राप्त होने पर मनुष्य पुत्र, स्त्री, धन आदिकी आर्त्तिमें फंसके उस मोहको कैसे धारण करेंगे? हे विभो। हे महादेव। हे कृपा-निधे। वह उपाय कहिये। महादेव बोले, हरिका नाम, हरिका नाम, एक मात्र हरिका नाम॥ १।२॥ हे हरे! हे राम! हे हरे-कृष्ण! हे कृष्ण! हे कृष्ण!—इस प्रकार इन मङ्गलोंको जो नित्य रटता है, उसको कलियुग बाधा नहीं देता॥ ३॥ अन्तरान्तर

कर्म्माणि कृत्वा नामानि च स्मरेत्। कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति कृष्णेत्याह पुनःपुनः॥ ४॥ मन्नाम चैव त्वन्नाम योजयित्वा व्यतिक्रमात्। सोऽपि प्रापात् प्रमुच्येत तूलराशेरिवानलः॥ जयाद्येतत् त्वया वाप्यथवा श्रीशब्दपूर्व्वकम्। तच्च मे मङ्गलं नाम जपन् पापात् प्रमुच्यते॥ ६॥ दिवा निशि च सन्ध्यायां सर्व्वकालेषु संस्मरेत्। अहर्निशं स्मरन् नामं कृष्णं पश्यति चक्षुषा॥७॥ अशुचिर्वा शुचिर्वापि सर्व्वकालेषु सर्व्वदा। नामसंस्मरणादेव संसारान्मुच्यते क्षणात्॥ ८॥ नानापराधयुक्तस्य नामापि च हरत्यघम्। यज्ञव्रततपोदानं साङ्गं नैव कलौ युगे॥ गङ्गास्नानं हरेर्नाम निर-

---

कर्म्मों को करके जो इन नामोंका स्मरण करता है। हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे कृष्ण! हे कृष्ण!—ऐसा बारम्बार कहे॥ ४॥ मेरा नाम और उसी भाँति तेरा नाम उलटे सीधे क्रमसे जोड़के जो मनुष्य जपता है, वह भी पापोंसे छूट जाता है, जैसे अग्निसे रूईका ढेर जल जाता है, उसी भाँति उसके पाप नष्ट होते हैं॥ ५॥ आदिमें जय शब्द करके फिर तुम्हारे नाम अथवा श्री शब्दपूर्व्वक जो मेरा पवित्र नाम जपता है, वह भी पापसे छूटता है॥ ६॥ दिनमें, रातमें, सन्ध्यामें, सर्व्वकालमें नामका स्मरण करे। रात दिन स्मरण करनेसे रामकृष्णके दर्शन आँखोंसे होने लगता है॥ ७॥ अशुद्ध अथवा शुद्ध होके सर्व्वदा सर्व्वकालमें, नामके स्मरण मात्रसे मनुष्य क्षण भरमें संसारसे छूट जाता है॥ ८॥ नाना भाँतिके अपराधोंसे युक्त मनुष्यके भी पापसमूह नामके स्मरणसे नष्ट होते हैं। कलियुगमें यज्ञ, व्रत, तप, दान—एक भी निर्व्विघ्न पूरा नहीं होता॥ ६॥ गङ्गाके स्नान और हरिका

पायमिदं द्वयम् ॥ १० ॥ हत्यायुतं पापसहस्रमुग्रं गुर्व्वङ्गनाकोटि-
निषेवणञ्च। स्तेयान्यथान्यानि हरेः प्रियेण गोविन्दनाम्ना न च
सन्ति भद्रे ॥ ११ ॥ अपवित्रः पवित्रो वा सर्व्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ १२ ॥ नाम-
संस्मरणादेव तथा तस्यार्थचिन्तनात्। सौवर्णीं राजतीं वापि
तथा पैष्टीं स्रगाकृतिम् ॥ १३ ॥ पादयोश्चिह्नितां कृत्वा पूजाञ्चैव
समारभेत्। दक्षिणस्य पदोऽङ्गुष्ठमूले चक्रं बिभर्त्ति यः ॥ १४ ॥ तत्र
नम्रजनस्यापि संसारच्छेदनाय च। मध्यमाङ्गुलिमूले तु धत्ते कमल-
मच्युतः ॥ १५ ॥ ध्यातृचित्तद्विरेफाणां लोभनायातिशोभनम्।
पद्मस्याधो ध्वजं धत्ते सर्व्वानर्थजयध्वजम् ॥ १६ ॥ कनिष्ठामूलतो

नाम, ये दोनों निर्व्विघ्न हैं ॥ १० ॥ हे भद्रे! अयुत हत्या, सहस्र
उग्रपाप, कोटि गुरुपत्नी गमन, चोरी और अन्यान्य पाप हरिके प्यारे
नामसे एक भी नहीं लगता ॥ ११ ॥ अपवित्र अवस्थामें वा पवित्र
अवस्थामें अधिक क्या सब अवस्थाओंमें भी जाके, जो भगवान् पुण्डरि-
काक्षका नाम सुमिरता है, उसकी बाहरी तथा भीतरी शुद्धि होती
है ॥ १२ ॥ नामके स्मरणसे अथवा उसका अर्थ चिन्तन पूर्व्वक, सुवर्ण,
चान्दी अथवा पीठीसे मालाकार ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णके दोनों पदोंको
बनाके चिन्हित करे; तब पूजाका आरम्भ करे। दाहिने पैरके
अंगूठेके मूलमें जो चक्र धारण करता है ॥ १४ ॥ भगवान् अच्युत भी
उस नम्रजनके संसारभयच्छेदनके अर्थ, मध्य अंगुलीके मूलमें कमल
धारण करते हैं ॥ १५ ॥ और पद्मके नीचे सब अनर्थोंके जीतनेवालोंमें
शिरोमणि, ध्यानार्थियोंके चित्तरूपी भमरोंको लोभनेके अर्थ, अति

वज्रं भक्तपापौघभेदनम । पार्श्वमध्येऽङ्कुशं भक्तचित्ते रभसकारणम् ॥ १७ ॥ भोगसम्पन्मयं धत्ते यवमङ्गुष्ठपर्व्वणि । मूले गदाञ्च पापाद्रिभेदनीं सर्व्वदेहिनाम् ॥ १८ ॥ सर्व्वविद्याप्रकाशाय धत्ते स भगवानजः । पद्मादीन्यपि चिह्नानि नव दक्षिणे यत् पुनः ॥१९॥ वामपादे वसेत् सोऽयं बिभर्त्ति करुणानिधिः । तस्माद् गोविन्द-माहात्म्यमानन्दरससुन्दरम् ॥ २० ॥ शृणुयात कीर्त्तयेन्नित्यं स निर्म्मुक्तो न संशयः । मासकृत्यं प्रवक्ष्यामि विष्णोः प्रीतिकरं परम् ॥ २१ ॥ ज्यैष्ठे तु स्नापनं कुर्य्याच्छ्रीविष्णोर्यत्नतः शुचिः । दैनन्दिनन्तु दुरितं पक्षमासर्त्तुवर्षजम् ॥ २२ ॥ ब्रह्महत्यासहस्राणि

सुन्दर ध्वज धारण करते हैं ॥ १६ ॥ भक्तोंके पापसमूहके भेदनेको कनिष्ठाके मूलमें वज्र धारण करते हैं । भक्तोंके चित्तमें प्रमोत्पादक अङ्कुश पार्श्वमें धारण करते हैं ॥ १७ ॥ अंगूठेके पर्वमें भोगकी सम्पत्तिसे युक्त यवाकृति चिन्ह धारण करते हैं । सब प्राणियोंके पापवृन्दको भेदनेवाली गदा मूलमें धारण करते हैं ॥ १८ ॥ दाहिने पैरमें अनादि भगवान् सर्व्वविद्या प्रकाशके अर्थ पद्म आदि सभी धारण करते हैं ॥ १९ ॥ फिर सो चिन्ह भगवान् करुणानिधि वाम पादमें भी धारण करते हैं । इसी लिये आनन्द और रससे सुशोभित गोविन्दके माहात्म्यको ॥ २० ॥ जो नित्य सुनता है वा कीर्त्तन करता है, वह संसारके आवागवनसे छूट जाता है, इसमें संशय नहीं । अब विष्णुके परम प्रीतिकर महीने महीनेका कृत्य कहता हूं ॥ २१ ॥ जेठमें सो यत्नसे दिन दिन विष्णुको पवित्र स्नान करावे । तो इससे दिन दिनके, पल पलके, मास मासके, ऋतु ऋतुके, वर्ष वर्षके पाप ॥ २२

ज्ञानाज्ञानकृतानि च । स्वर्णस्तेयसुरापानगुरुतल्पायुतानि च ॥२३॥
कोटिकोटिसहस्राणि उपपापानि यानि च । सर्वाण्यपि प्रणश्यन्ति
ज्यैष्ठमास्यान्तु वासरे ॥ २४ ॥ शालिग्रामेऽच्युतं मूर्द्ध्नि तदैतत्
स्नापयेत्ततः । पुरुषसूक्तेन मन्त्रेण पावमानीभिरेव च ॥ २५ ॥
नारिकेलोदकेनाथ तथा तालफलाम्बुना । इक्षूदकेन गन्धेन तथा
पुष्पोदकेन च ॥ २६ ॥ पञ्चोपचारैराराध्य यथाविभवविस्तरैः ।
घं घण्टायै नमः इति घण्टावाद्यं प्रदापयेत् ॥२७॥ पतितस्य महा-
ध्वानन्यस्य पातकसञ्चये । 'पाहि मां पापिनं घोरसंसारार्णवपाति-
तम् ॥ २८ ॥ य एवं कुरुते विद्वान् ब्राह्मणः श्रोत्रियः शुचिः ।

सहस्रों ब्रह्म हत्या ; सहस्रों जाने, बिना जाने किये हुए पाप, सहस्रों
सुवर्णकी चोरियां, सहस्रों सुरापान, अयुत गुरुपत्नी-गमन ॥ २३ ॥
कोटि कोटि सहस्र जो उपपाप हैं, सो सब जेठी पूर्णमासीके दिन
आपसे आप क्षयको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥ ठाकुरजीको शिरसे स्नान
करावे । पहले कलशको जलके पुरुषसूक्त मन्त्रसे और पावमानीसे
पवित्र करे ॥ २५ ॥ नारियलके जलसे और ताड़के फलके जलसे और
इक्षूदकसे ; गन्धसे तथा पुष्पोदकसे ॥२६॥ यथा सामर्थ्य व्यय आदि द्वारा
वैभव आदिसे युक्त पञ्चोपचारसे भगवान्‌की पूजा आराधना करे ।
"घं घण्टायै नमः" इस मन्त्रसे घण्टावाद्य निवेदन करे ॥ २७ ॥ हे
दीनबन्धु, प्रभो ! मुझ पतितका कल्याण करो, पापकी पूंजी जोड़े
हुए पर दया करो, घोर संसार-समुद्रमें गिर पड़े हुए मुझे बचाओ,
मेरी रक्षा करो, रक्षा करो ॥ २८ ॥ जो ब्राह्मण नित्य ऐसा ही करता
है, वही पवित्र विद्वान्, श्रोत्रिय सब पापोंसे छूटता और विष्णुलोकको

सर्व्वपापैः प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ॥ २९ ॥ आषाढ़-शुक्लैकादश्यां कुर्य्यात् स्वापमहोत्सवम् । आषाढ़े च रथं कुर्य्याच्छ्रावणे श्रवणाविधिम् ॥ ३० ॥ भाद्रे च जन्मदिवस उपवासपरो भवेत् । प्रसुप्तस्य परीवर्त्तमाश्विने मासि कारयेत् ॥ ३१ ॥ उत्थानं श्रीहरेः कुर्य्यादन्यथा विष्णुद्रोहकृत् । शुभे चैवाश्विने मासि महामायाञ्च पूजयेत् ॥ ३२ ॥ सौवर्णीं राजतीं वापि विष्णुरूपां बलिं विना । हिंसाद्वेषौ न कर्त्तव्यौ धर्म्मात्मा विष्णुपूजकः ॥ ३३ ॥ कार्त्तिके पुण्यमासे च कामतः पुण्यमाचरेत् । दामोदराय दीपञ्च प्रांशुस्थाने प्रदापयेत् ॥ ३४ ॥ सप्तवर्त्तिप्रमाणेन दीपः स्याच्चतुरङ्गुलः । पक्षान्ते च प्रकर्त्तव्या दीपमालावलिः शुभा ॥ ३५ ॥

जाता है ॥ २९ ॥ आषाढ़ शुक्ला एकादशीको देव-शयनका महाउत्सव करे । इसी आषाढ़ मासमें रथयात्रा भी करे, श्रावणमें श्रावणीकी विधि करे ॥ ३० ॥ भाद्रपदमें जन्माष्टमीके दिन उपवास परायण रहे । प्रसुप्त देवको आश्विन (पुराणान्तरमें कार्त्तिक) मासमें उठावे ॥ ३१ ॥ श्रीहरिका उत्थान देवठानीको अवश्य करे, न करे तो विष्णुका द्रोह करे । शुभ आश्विन मासमें महामाया भगवतीको भी पूजे ॥ ३२ ॥ वह देवी सुवर्णकी हो अथवा चांदीकी हो, वह विष्णुरूपा है । उसकी बिना बलिदानके पूजा करे । हिंसा और द्वेष दोनों अकर्त्तव्य हैं, और विष्णुका पूजक धर्म्मात्मा है ॥ ३३ ॥ कार्त्तिकमें और पूसमें हठ करके धर्म्म करे । दामोदरके निमित्त प्रांशु स्थानमें दीप जलावे ॥ ३४ ॥ दीपक चार अंगुलका हो और सात बत्तीके प्रमाणका हो । कार्त्तिकके प्रथम पक्षके अन्तमें सुन्दर दीपाली करे ॥ ३५ ॥

मार्गशीर्षे सिते षष्ठ्यां सम्यक् सितवस्त्रकैः। पूजयेज्जगदीशञ्च ब्रह्माणञ्च विशेषतः॥ ३६॥ पौषे पुष्पाभिषेकञ्च वर्ज्जयेच्चन्दनं तथा। संक्रान्त्यां माघमासे च वासिताक्षततण्डुलम्॥ ३७॥ नैवेद्यं विष्णवे दद्यान्मन्त्रमुच्चारयेत्। ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या देवदेवपुरःस्थितान्॥ ३८॥ अर्चयेद्भगवद्भक्तान् द्विजांश्च भगवद्धिया। एकस्मिन् भोजिते भक्ते कोटिर्भवति भोजिता॥ ३९॥ द्विजभोजनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं ध्रुवं भवेत्। पञ्चम्यां शुक्लपक्षे तु स्नापयित्वा च केशवम्॥४०॥ पूजयित्वा विधानेन चूतपल्लवसंयुतैः। फलचूर्णैश्च विविधैर्वासितैः पटच्छादितैः॥ ४१॥ काननं रमणीयञ्च प्रदीप्तं दीपदीपितम्। द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बीरनागरङ्गञ्च पूगकम्॥४२॥

अगहन सुदी छठको श्वेत वस्त्रोंसे जगदीशको, विशेषतः ब्रह्मा जीको पूजे॥ ३६॥ पूषमें पुष्पाभिषेक करे, तौभी चन्दनको छोड़ दे। माघ मासमें संक्रान्तिके दिन विष्णुपूजक सुगन्धित चांवलोंसे॥ ३७॥ विष्णुको नैवेद्य दे और यही मन्त्र उच्चारण करे। देवदेव श्रीकृष्णके आगे बिठाके भक्तिसे ब्राह्मणोंको भोजन दे॥ ३८॥ साक्षात् भगवान् ही जानके भगवद्भक्त ब्राह्मणोंको पूजे। एक भक्तके भोजनसे मानों करोड़ोंको भोजन दिया॥ ३९॥ ब्राह्मणको भोजन देने मात्रसे असंपूर्ण कृत्य निश्चय ही संपूर्ण होता है। शुक्लपक्षकी वसन्त पञ्चमीको केशवको स्नान कराके॥ ४०॥ विधानसे पूजन करे और आमके पत्तोंसे सज्जित, विविध प्रकारके सुगन्धित फूलोंके चूर्णसे सुवासित वस्त्रोंसे आच्छादित॥ ४१॥ रम्य वन बनावे, वह सुन्दर दीपकोंकी ज्योतिसे प्रदीप्त हो। दाख, ईख, केला, जम्भीरी, नारङ्गी, सुपारी॥ ४२॥

नारिकेरच धात्रीच पनसञ्च हरीतकीम्। अन्यैश्च वृक्ष-खण्डैश्च सर्व्वर्तुकुसुमान्वितैः॥ ४३॥ अन्यैश्च विविधैश्चैव फलपुष्प-समन्वितैः। वितानैः कुसुमोद्दामैर्वारिपूर्णघटैस्तथा॥ ४४॥ चूतशाखोपशाखाभिः शोभितं छत्रचामरैः। जय कृष्णेति संस्मृत्य प्रदक्षिणपुरःसरम्॥ ४५॥ विशेषतः कलियुगे दोलोत्सवो विधी-यते॥ फाल्गुने च चतुर्द्दश्यामष्टमे यामसंज्ञके॥ ४६॥ अथवा पौर्णमास्यान्तु प्रतिपत्सन्धिसंज्ञके। पूजयेद्विधिवद्भक्त्या फल्गु-चूर्णैश्चतुर्व्विधैः॥ ४७॥ सितरक्तोगौरपीतैः कर्पूरादिविमिश्रितैः। हरिद्रारागयोगाच्च रङ्गरूपैर्मनोहरैः॥ ४८॥ अन्यैर्वा रङ्गरूपैश्च प्रीणयेत्परमेश्वरम्। एकादश्यां समारभ्य पञ्चम्यान्तं समापयेत्॥४९

नारियल, आंवला, कटहल, हड़ तथा सब ऋतुओंके फूलोंसे लदे हुए अन्यान्य वृक्षके खण्डोंसे॥ ४३॥ अन्य नाना प्रकारके फल फूलोंसे सुशोभित मण्डप बनावे। उसमें फूलोंकी माला और जलपूर्ण घड़ोंसे॥ ४४॥ आमकी डाल टहनियों और छत्र चम्वरसे शोभाका आगार बनावे। जयकृष्ण, यह शब्द बारम्बार सुमिरके प्रदक्षिण परायण हो॥ ४५॥ विशेष करके कलियुगमें फागुनकी चौदसके अष्टम प्रहरमें, होलीका फूल डोल उत्सव करे॥ ४६॥ अथवा जब पूर्णमासीमें प्रतिपदाकी सन्धि हो तब करे। चारों भांतिके अबीर गुलालसे फाग मनावे और उसीसे भगवान्‌की पूजा करे॥ ४७॥ गुलाल श्वेत हो, लाल हो, गौर हो, पीला हो, कपूर आदि सुगन्ध द्रव्योंसे मिश्रित हो। हलदीके रङ्गके योगसे बने हुए नाना रङ्गरूपके मनोहर कुंकुमोंसे॥ ४८॥ अन्यान्य रङ्गरूपके चूर्णोंसे परमेश्वरको

मद्दन्यादि मध्यादि वा दोलोत्सवो विधीयते। दक्षिणाभिमुखं कृष्णं दोलास्थं यः प्रपश्यति ॥ ५० ॥ दुष्टापराधनिचयैर्मुक्तास्ते नात्र संशयः। लिखित्वा जलपात्रे च मासि माधवसंज्ञके ॥५१॥ सौवर्णे राजते वा ताम्रे वाप्यथ मृण्मये। तोयस्थं योऽर्चयेद्देवं शालग्रामसमुद्भवम् ॥५२॥ प्रतिमां वा महाभागे तस्य पुण्यं न गण्यते। दमनारोपणं कृत्वा श्रीविष्णोः च समर्पयेत् ॥ ५३ ॥ वैशाखे श्रावणे भाद्रे कर्त्तव्यं वातदर्पणम्। पूर्व्वं पूर्व्वं निवातस्थे दमनादिषु वस्तुषु ॥ ५४ ॥ प्रकर्त्तव्यं विधानेन अन्यथा निष्फलं भवेत्। वैशाखे च तृतीयायां जलमध्ये विशेषतः ॥ ५५ ॥ अथवा मण्डले

समाप्त करे। रङ्ग एकादशीसे आरम्भ करके चैत्र लगते रङ्ग पञ्चमी तक दोलीका उत्सव समाप्त करे ॥ ४६ ॥ पांच दिन अथवा तीन दिन दोलोत्सवका विधान करे। कृष्णको जो मनुष्य दक्षिणकी ओर मुंह करके झुलाता है, शीघ्र ही ॥ ५० ॥ दर्शन मात्रसे वह मनुष्य पाप-समूहसे छूट जाता है, इसमें सन्देह नहीं। वैशाख नामक महीनेमें जलके पात्रमें ठाकुरजी को धरे ॥ ५१ ॥ वह पात्र सोनेका हो, चान्दीका हो, तामेका हो अथवा मट्टीका हो। उसके जलमें स्थित शालग्राम देवको जो पूजता है ॥ ५२ ॥ अथवा ठाकुरजीकी अन्य प्रतिमाको पूजता है, हे महाभागे। उसके पुण्यकी कोई गिनती नहीं है। दौनेका आरोपण करके श्रीविष्णुको समर्पण करे ॥ ५३ ॥ वैशाखमें श्रावणमें अथवा भाद्रमें उसका अर्पण करे। वातस्थ दौने आदिके कामोंमें पूर्व्व पूर्व्वकी ओर ॥ ५४ ॥ विधान करे, अन्यथा निष्फल पूजा होती है। वैशाखकी तृतीयाको, विशेष करके जलके

कुर्य्यादरण्ये वा वृहद्वने। सुगन्धचन्दनेनाङ्गं सुपुष्टञ्च दिने दिने ॥ ५६ ॥ यथाप्रयत्नतः कुर्य्यात् कृष्णाङ्गस्यैव पुष्टिदम्। चन्दनागुरुकोवेरकृष्णाकुङ्कुमरोचना ॥ ५७ ॥ जटामांसी मुरा चैव विष्णोर्गन्धाष्टकं विदुः। तस्तैर्गन्धयुतैश्चापि विष्णोरङ्गानि लेपयेत् ॥ ५८ ॥ घृष्टञ्च तुलसीकाष्ठं कर्पूरागुरुयोगतः। अथवा केशरैर्योज्यं हरिचन्दनमुच्यते ॥ ५९ ॥ यात्राकाले च ये कृष्णं भक्त्या पश्यन्ति मानवाः। न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥ ६० ॥ सुगन्धमिश्रितैस्तोयैर्देवदेवं स्नपन्ति ये। अथवा पुष्पमध्ये तु स्थापयेज्जगदीश्वरम् ॥ ६१ ॥ वृन्दावनं तत्र गत्वा उपस्थाप्य फलानि च।

मध्य ॥ ५५ ॥ अथवा अरण्यमें वा बड़े वनमें पूजा करे। दिन दिन सुन्दर गन्धसे युक्त अङ्ग सुपुष्ट होता है ॥ ५६ ॥ जितने ही विधानसे चन्दनका विधान करो, उतने ही अनुक्रमसे कृष्ण अङ्गवालेको भी पुष्टि होती है। चन्दन, अगर, सुगन्धिवाला कालागुरु, केशर, गोरोचना ॥ ५७ ॥ जटा मांसी और मुरा, इन विष्णुके आठ गन्धोंका-समूह गन्धाष्टक नामसे जाना गया है। उन्हीं सब गन्ध द्रव्योंसे विष्णुके अङ्गोंको लेपन करे ॥ ५८ ॥ घिसे हुए तुलसी काष्ठमें कपूर और अगर मिलावे अथवा केशर जले, तो वह लेप हरिचन्दन कहलाता है ॥ ५९ ॥ यात्राके समय जो मनुष्य भक्तिपूर्व्वक कृष्णकी मूर्त्तिको देख लेते हैं, सौ करोड़ कल्पोंमें भी उनका पुनर्जन्म नहीं होता है ॥ ६० ॥ सुगन्ध-मिश्रित जलसे जो लोग देवदेवका स्नान कराते हैं। अथवा पुष्पोंके मध्यमें जगदीश्वरको स्थापित करे, सो अनन्त पुण्य पावे ॥ ६१ ॥ वृन्दावनमें जाके वहां फलोंको सञ्चित

विष्णुभक्तान् योग्येन भोजयेत् तदशेषतः ॥ ६२ ॥ नारिकेरं फलं बीजकोशञ्चोद्धृत्य दापयेत् । मोरण्टाफलञ्च पनसं कोशमुद्धृत्य दापयेत् ॥ ६३ ॥ दध्ना विमिश्रितञ्चान्नं घृतेनाप्लुत्य दापयेत् । पाचितं पिष्टकं पूपमष्टादशघृतेन च ॥ ६४ ॥ तैलेश्च तिल मिश्रैः फलं पक्वं प्रदापयेत् । यद्यदेवात्मनः प्रीतं तत्तदीशाय दापयेत् ॥ ६५ ॥ दत्त्वा नैवेद्यवस्त्रादि नाददीत कथञ्चन । त्यक्ताञ्च विष्णुमुद्दिश्य तद्भक्तेभ्यो विशेषतः ६६ ॥ इति ते कथितं किञ्चित् समासेन महेश्वरि । गोपनीयं प्रयत्नेन स्वयोनिरिव पार्व्वती ॥ ६७ ॥ श्रीकृष्णरूपगुणवर्णनशास्त्रवर्गबोधाधिकार इह चेदलमन्यपाठैः । तत्प्रेमभावरसभक्तिविलासनामहारेषु चेत् खलु मनः किमु

करे और सुयोग्य विष्णुभक्त उनका अशेष भोजन दान करे ॥ ६२ ॥ नारियल फलके गोलेको निकालके साधे । झड़बेरीके फलको और कठहलका गूदा निकालके विष्णुके अर्थ साधे ॥ ६३ ॥ दहीसे मिले हुए अन्न अथवा घृतमय द्रव्यकी भावना करे । घीसे अठारह पीढ़ीके पूए बनावे ॥ ६४ ॥ तिलके मिश्रित तेलमें पके फलको साधे । जिस जिस वस्तुमें अपनी रुचि हो, वही वही वस्तु श्रीकृष्णके अर्थ साधन करे ॥ ६५ ॥ उसे कभी आप न भक्षण करे, किन्तु नैवेद्य, वस्त्र आदिके सहित, विष्णुके उद्देश्यसे, विशेष करके उन्हींके भक्तोंको दान कर दे ॥ ६६ ॥ हे महेश्वरि ! यह हमने कुछ वृत्तान्त संक्षेपसे तुम्हें सुनाया । हे पार्वति ! इसे अपनी योनिकी भांति गुप्त रखना ॥ ६७ ॥ इसके पाठ करनेसे श्रीकृष्णके रूप और गुणोंके वर्णनसे युक्त अन्य शास्त्रोंके बोधका अधिकार होता है, अन्य पाठोंसे क्या है । हे

कामिनीभिः ॥६८॥ तच्चेतसा प्रभजतां व्रजबालकेन्द्रं वृन्दावनक्षिति-तलं यमुनाजलञ्च। तल्लोकनाथपदपङ्कजधूलिभिश्चलिप्तं वपुः किल वृथागुरुचन्दनाद्यैः ॥ ६९ ॥

इत्येकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः।

ऋषय ऊचुः। सूत जीव चिरं साधो श्रीकृष्णचरितामृतम्। त्वया प्रकाशितं सर्व्वं भक्तानां अवतारणम् ॥ १ ॥ श्रीकृष्णलीलां निखिलां ब्रूहि दैनन्दिनीं प्रभो। ययाकर्णितया साधो कृष्णे

मन! उस कृष्णके प्रेम, भाव, रस, विलास, नामकथा, भक्तिके हारमें लीन हो, सांसारिक स्त्रियोंमें क्या है ॥ ६८ ॥ इस लिये वृन्दावनके धरातल, यमुनाके पवित्र जल और व्रजबालकोंके शिरोमणि कृष्णको चित्तसे भजो। उन लोकनाथ श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी धूलि लेके शरीरमें लपेटो, चन्दन अगर सब वृथा हैं ॥ ६९ ॥

ग्यारहवां अध्याय समाप्त।

ऋषि लोग बोले, हे साधो, हे सूत! तुम बहुत जीओ, क्योंकि तुमने सब भक्तोंको संसार-समुद्रके पार लगानेके लिये श्रीकृष्ण-चरित्र-रूपी अमृत प्रकाशित किया ॥ १ ॥ हे साधो, हे प्रभो अब कृष्णकी दिन दिन की समस्त लीला कहो, जिसके सुननेसे कृष्णमें भक्ति बढ़ती

सिद्धिर्विवर्द्धते ॥ २ ॥ गुरोः शिष्यस्य मन्त्रस्य विधानं लक्षणं पृथक् । महात्मन् महाभाग त्वं हि नः परमः सुहृत् ॥ ३ ॥ सूत उवाच । एकदा यमुनातीरे समासीनं जगद्गुरुम् । नारदः प्रणिपत्याह देवदेवं सदाशिवम् ॥ ४ ॥ नारद उवाच । देवदेव महादेव सर्व्वज्ञ जगदीश्वर । भगवद्धर्मतत्त्वज्ञ कृष्णमन्त्रविदांवर ॥ ५ ॥ कृष्णमन्त्रा मया लब्धास्त्वत्तो ये च पितुः परे । ते सर्व्वे साधिता-स्तत्त्वादन्यमन्त्रराजादयो मया ॥ ६ ॥ बहुवर्षसहस्रैस्तु शाकमूल-फलाशिना । शुष्कपर्णाम्बुवाय्वादिभोजिना च निराशिना ॥ ७ ॥ स्त्रीणां सन्दर्शनालापवर्ज्जिना भूमिशायिना । कामादि षड्गुणां जित्वा वाह्येन्द्रियनियच्छता ॥ ८ ॥ एवं कृतेऽपि नैवात्मा सन्तुष्टो

है ॥ २ ॥ हे महाभाग ! तुम्हीं हमारे परम हितकामी हो, हमसे गुरु और शिष्यके मन्त्रका विधान और लक्षण पृथक् पृथक् कहिये ॥ ३ ॥ सूत बोले, एकबार यमुनाके तीरपर जगत्के गुरु, देवोंके देव महादेव, सदाशिव बैठे हुए थे । उनके आगे नारद मुनि दण्डवत् गिरके बोले ॥४॥ नारद बोले, हे देवदेव, महादेव, सर्व्वज्ञ, करुणाकी खानि, वैष्णव-धर्म्मके तत्त्वज्ञ, कृष्णके मन्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ ॥ ५ ॥ मैंने आपसे तथा पितामहाजीसे कृष्णके नाना मन्त्र पाये । वे सब तथा अन्यान्य मन्त्रराज आदि मैंने तत्त्वसे साधे ॥ ६ ॥ मैंने कई सहस्र वर्ष तो शाक, मूल और फल ही खाये । फिर सूखे पत्ते, जल, वायु आदिका ही भोजन किया, फिर भोजन छोड़ ही दिया ॥ ७ ॥ मैंने स्त्रियोंके दर्शन और आलाप छोड़ दिये, भूमि हीमें शयन किया । कामदेव आदि षड्-गुणको जीतके बाहरी इन्द्रियोंको भी नियमित किया ॥ ८ ॥ हे शङ्कर !

मेरा मन्त्र । तद्ब्रूहि यत् प्रसिध्येत संस्कारादैर्विना प्रभो ॥९॥
यदुच्चारणादेव ददाति फलमुत्तमम् । यदि योग्योऽस्मि देवेश
तदा मे कृपया वद ॥ १० ॥ शिव उवाच । साधु पृष्टं महाभाग
त्वया लोकहितैषिणा । सुगोप्यमपि वक्ष्यामि मन्त्रचिन्तामणिं तव ।
११ ॥ रहस्यानां रहस्यं यद्गुह्यानां गुह्यमुत्तमम् । न मया कथितं
देव्यै नाग्रजेभ्यः पुरा तव ॥ १२ ॥ वक्ष्यामि युगलं तुभ्यं कृष्णमन्त्र-
मनुत्तमम् । मन्त्रचिन्तामणिर्नाम युगलं द्वयमेव च ॥ १३ ॥ पर्यायो
ऽस्य मन्त्रस्य तथा पञ्चपदीति च । गोपीजनपदं वल्लभान्तन्तु
चरणानिति ॥ १४ ॥ शरणञ्च प्रपद्ये च एष पञ्चपदात्मकः । मन्त्र-

सेवा करने पर भी मेरी आत्मा सन्तुष्ट न हुई । हे प्रभो ! अब वह
बात कहो, जो बिना संस्कार आदिके सिद्ध हो ॥ ९ ॥ जो उच्चारण
करते होते उत्तम फलको दे । हे देवेश ! जो मैं योग्य हूं, तो कृपा
करके मुझसे कहिये ॥ १० ॥ महादेव बोले, हे महाभाग ! तुमने
संसारके हितकी कामनासे भली बात पूछी । तुमसे मैं सुगोपनीय
मन्त्र चिन्तामणि भी कहूंगा ॥ ११ ॥ जो रहस्योंका भी रहस्य है, जो
गोपनीयोंका भी गोपनीय है, तुमसे पहले जो उत्तम मन्त्र न मैंने कभी
पार्वतीसे और न अपनेसे पहले उत्पन्न हुए आदि सनकादिकसे
कहा ॥ १२ ॥ तुमसे मैं कृष्णका युगल-मन्त्र कहता हूं, उससे उत्तम
कोई नहीं । इस मन्त्र-चिन्तामणिका युगल-मन्त्र अथवा द्वयमन्त्र भी
नाम है ॥ १३ ॥ ये पर्याय तो हैं ही,—इसका पञ्चपदी भी नाम है ।
गोपी पद फिर जन पद, अन्तमें वल्लभ पद ॥ १४ ॥ फिर शरणं, फिर
प्रपद्ये, ऐसे पांच पद होनेसे यह पञ्चपदी कहलाता है । यहां मनुः

चिन्तामणिः प्रोक्तः षोडशार्णो महामनुः ॥ १५ ॥ नमो गोपीजने-त्युक्त्वा वल्लभाभ्यां वदेत् ततः । पदद्वयात्मको मन्त्रो दशार्णः खलु कथ्यते ॥ १६ ॥ एतां पञ्चपदीं जप्त्वा श्रद्धयाश्रद्धया सकृत् । कृष्णप्रियाणां सान्निध्यं गच्छत्येव न संशयः ॥ १७ ॥ न पुरश्चरणापेक्षा नास्ति न्यासविधिक्रमः । न देशकालनियमो नारिमित्रादिशोधनम् ॥ १८॥ सर्वेऽधिकारिणश्चात्र चण्डालान्ता मुनीश्वर । स्त्रियः शूद्रादय-श्चापि जड़मूकादिपङ्गवः ॥ १९ ॥ अन्ये हूणाः किरातश्च पुलिन्दाः पुक्कसास्तथा । आभीरा यवनाः कङ्काः खशाद्याः पापयोनयः ॥२०॥ दम्भाहङ्कारपरमाः पापाः पैशुन्यतत्पराः । गोब्राह्मणादिहन्तारो महोपपातकान्विताः ॥ २१ ॥ ज्ञानवैराग्यरहिताः श्रवणादि-

---

मन्त्र षोड़शवर्णयुक्त मन्त्र-चिन्तामणि कहलाता है ॥ १५ ॥ पहले "नमो गोपीजन" यह पद कहे फिर "वल्लभाभ्याम्" कहे । इन दो पदोंसे युक्त यह मन्त्र दशाक्षर कहलाता है ॥ १६ ॥ श्रद्धासे अथवा अश्रद्धासे एकबार इस पञ्चपदीको जपके मनुष्य कृष्णप्रिया गोपियोंके सामीप्यको पाता है, इसमें संशय नहीं ॥ १७ ॥ न इसमें पुरश्चरणकी अपेक्षा है, न न्यासकी विधिका क्रम है, न देश, कालादिका नियम है, न शत्रु-मित्रादिका शोधन है ॥ १८ ॥ हे मुनीश्वर ! नीच चण्डालतक, सब इसके अधिकारी हैं । स्त्री, शूद्रादि, जड़, गूंगे, लंगड़े, सभीको इसका अधिकार है ॥ १९ ॥ अन्य जो हूण, किरात, पुलिन्द, पुक्कस, आभीर, यवन, कङ्क, खस आदि पापजन्मा म्लेच्छ हैं, सोभी इसके अधिकारी हैं ॥ २० ॥ जो पापी परम दम्भ अहङ्कार आदिसे युक्त हैं, जो चुगली खाते हैं, जो गौ ब्राह्मण आदिके मारनेवाले हैं, जो महा-

विवर्ज्जिताः। एते चान्ये च सर्व्वे स्युर्मनोरस्याधिकारिणः ॥ २२ ॥ यदि भक्तिर्भवेदेषां कृष्णे सर्व्वेश्वरेश्वरे। तदाधिकारिणः सर्व्वे नान्यथा मुनिसत्तम ॥ २३ ॥ याज्ञिको दाननिरतः सर्व्वतन्त्रोपसेवकः। सत्यवादी यतिर्वापि वेदवेदाङ्गपारगः ॥ २४ ॥ ब्रह्मनिष्ठः कुलीनो वा तपस्वी व्रततत्परः। अत्राधिकारी न भवेत् कृष्णभक्तिविवर्ज्जितः ॥ २५ ॥ तस्मादकृष्णभक्ताय कृतघ्नाय न मानिने। न च श्रद्धाविहीनाय वक्तव्यं नास्तिकाय च ॥ २६ ॥ न चाशुश्रूषवे वाच्यं नासंवत्सरसेविने। श्रीकृष्णेऽनन्यभक्ताय दम्भलोभविवर्ज्जिने ॥२७॥ कामक्रोधविमुक्ताय देयमेतत् प्रयत्नतः। ऋषिस्त्वेवाहमेतस्य गायत्री

पाप और उपपातकोंसे संयुक्त हैं ॥ २१ ॥ जो ज्ञान तथा वैराग्यसे रहित हैं, जो श्रवण आदिसे वञ्चित हैं, ये तथा अन्यान्य पातकी भी इस मनुमन्त्रके अधिकारी हैं ॥ २२ ॥ हे मुनिसत्तम ! यदि इन सबकी सर्व्वेश्वरोंके ईश्वर कृष्णमें भक्ति है, तो ये सभी अधिकारी हैं, अन्यथा नहीं ॥ २३ ॥ यज्ञ करता हो, दानपरायण हो, चाहे सब तन्त्रोंका सेवक हो। सत्य बोलता हो, यती हो, चाहे वेद और वेदाङ्गका पारङ्गत हो ॥ २४ ॥ ब्रह्मनिष्ठ हो, कुलीन हो, तपस्वी हो, चाहे व्रतशाली हो। कुछ भी क्यों न हो, पर कृष्णकी भक्तिसे वञ्चित पुरुष इसका अधिकारी नहीं है ॥ २५ ॥ इसी लिये कृष्णके अभक्तको, कृतघ्नको, अभिमानीको, श्रद्धाविहीनको और नास्तिकको यह मन्त्र कदापि न बतावे ॥ २६ ॥ न बिना शुश्रूषाकारीको बतावे और न संवत्सरकी सेवा न करनेवालेको बतावे, पर श्रीकृष्णके अनन्य भक्तको बतावे, कृष्णभक्त दम्भ और लोभसे वर्ज्जित है ॥ २७ ॥ वह काम

च्छन्द उच्यते ॥ २८ ॥ देवता वल्लवीकान्तो मन्त्रस्य परिकीर्त्तितः । अभिप्रेतस्य हरेर्दास्ये विनियोग उदाहृतः ॥ २९ ॥ चक्राद्यै-स्तथा मन्त्रैः पञ्चाङ्गानि प्रकल्पयेत् । अथवापि स्वबीजेन कराङ्ग-न्यासकौ चरेत् ॥ ३० ॥ मन्त्रस्य प्रथमो वर्णो बिन्दुना मूर्द्धि-भूषितः । गमित्येवं सवीजं नमः शक्तिरिहोदिता ॥ ३१ ॥ मन्त्राक्षरैर्दशाङ्गानि तैरेव च तथार्चनम् । गन्धपुष्पादिभिस्तच्च जलैरेवाप्यसम्भवे ॥ ३२ ॥ न्यासपूर्व्वविधानेन कर्त्तव्यं हरितुष्टये । अतएवास्य मन्त्रस्य न्यासाद्यन्ये वदन्ति च ॥ ३३ ॥ सकृदुच्चारणा-देव कृतकृत्यत्वदायिनः । तथापि दशधा नित्यं जपाद्यर्थं प्रवि-न्यसेत् ॥ ३४ ॥ अथ ध्यानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रस्यास्य द्विजोत्तम ।

कोषसे छूटा हुआ है, उसीको यह मन्त्र प्रयत्नसे दे । इस मंत्रका ऋषि मैं हूं, गायत्री इसका छन्द है ॥ २८ ॥ इस मंत्रके देवता स्वयं गोपीवल्लभ कृष्ण परिकीर्त्तित किये गये हैं । प्रिया-सहित श्रीकृष्णके दास्य होमें इसका विनियोग कहा गया है ॥ २९ ॥ चक्र आदिसे प्रारम्भ होनेवाले मंत्रोंसे पांचो अङ्गोंकी कल्पना करे । अथवा स्व-बीजसे करन्यास और अङ्गन्यास करे ॥ ३० ॥ मंत्रका पहला वर्ण मूर्धामें बिन्दुसे भूषित है । वही " गं " ही बीज है, " नमः " ही इसमें शक्ति कही गई है ॥ ३१ ॥ मन्त्रके अक्षरों हीसे उसके दसो अङ्ग हैं, उन्हींसे उसकी अर्चना है । यह दोनों गन्ध पुष्प आदि तथा जल आदिसे भी असम्भव है ॥ ३२ ॥ हरिकी प्रसन्नताके अर्थ पूर्व्व विधानसे न्यास करे । इसी लिये कोई कोई इस मंत्रका न्यासादि कहते हैं ॥ ३३ ॥ एकबार उच्चारणसे ही यह कृतार्थता का देनेवाला है, तथापि इसे

पीताम्बरं घनश्यामं द्विभुजं वनमालिनम् ॥ ३५ ॥ बर्हिबर्हकृतो-त्तंसं शशिकोटिनिभाननम् । घूर्णायमाननयनं कर्णिकारावतंसिनम् ॥ ३६ ॥ अभितश्चन्दनेनाथ मध्ये कुङ्कुमबिन्दुना । रचितं तिलकं भाले बिभ्रतं मण्डलाकृतिम् ॥ ३७ ॥ तरुणादित्यसङ्काश-कुण्डलाभ्यां विराजितम् । घर्माम्बुकणिकाराजद्दर्पणाभकपोलकम् ॥ ३८ ॥ प्रियास्यन्यस्तनयनं लीलापाङ्गोन्नतभ्रुवम् । अग्र-भागन्यस्तमुक्ताविस्फुरत्प्रोच्चनासिकम् ॥ ३९ ॥ दशनज्योत्स्नया राजत्पक्वबिम्बफलाधरम् । केयूराङ्गदसद्रत्नमुद्रिकाभिर्लसत्-

---

दसबार नित्य जपे और अर्थका उपन्यास करे ॥ ३४ ॥ हे द्विजोत्तम ! अब इस मंत्रका ध्यान कहता हूं । ध्यान यों है, पीताम्बर धारण किये हुए नए बादलकी नाईं सांवले श्रीकृष्ण हैं । उनके दो भुजाएं हैं, वह बनमाला धारण किये हुए हैं ॥ ३५ ॥ मयूर-पंखका मुकुट बनाये हैं ; करोड़ चन्द्रमाकी प्रभाकी नाईं उनका मुख है, नेत्र उनके चञ्चल हैं, धनबहेड़ेके लोलक कानमें पहने हैं ॥३६॥ चारों ओर चन्दन और बीचमें केशरकी बिन्दुसे रचित, मस्तकमें मण्डलाकृति तिलक धारण किये हुए हैं ॥ ३७ ॥ मध्यान्हके सूर्य्यकी नाईं देदीप्यमान कुण्डलोंसे विराजित उनके दर्पण-सदृश कपोलोंपर पसीनेकी बूंदें शोभित हैं ॥ ३८ ॥ राधाजीके मुखारविन्दपर एकटक दृष्टि लगाये हुए हैं, लीलाके अपाङ्गसे उनकी भ्रूवल्ली उठी हुई हैं । सुन्दर ऊंची नासिकाके अग्रभागमें मोती झलझला रहा है ॥ ३९ ॥ पके हुए बिम्बाफलके सदृश लाल होटोंपर दांतोकी चांदनी पड़ रही है । पहुंची, भुजबन्ध, सुन्दर रत्नोंसे जड़ित मुद्रिकाने उनकी शुभा अंकित

करम् ॥ ४० ॥ बिभ्रतं मुरलीं वामे पाणौ पद्मं तथैव च । काञ्चीदामस्फुरन्मध्यं नूपुराभ्यां लसत्पदम् ॥ ४१ ॥ रतिकेलि-रसावेशचपलं चपलेक्षणम् । हसन्तं प्रियया सार्द्धं हासयन्तञ्च तां मुहुः ॥ ४२ ॥ इत्थं कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनोपरि । वृन्दारण्ये स्मरेत् कृष्णं संस्थितं प्रियया सह ॥ ४३ ॥ वामपार्श्वे स्थितां तस्य राधिकाञ्च स्मरेत् ततः । नीलचोलकसंवीतां तप्तहेमसम-प्रभाम् ॥ ४४ ॥ पट्टाञ्चलेनावृत्तार्द्धस्वेराननपङ्कजाम् । कान्त-वक्त्रे न्यस्तनेत्रां चकोरीचञ्चलेक्षणाम् ॥ ४५ ॥ अङ्गुष्ठतर्जनीभ्याञ्च निजकान्तमुखाम्बुजे । अर्पयन्तीं पूगफलं पर्णचूर्णसमन्वितम् ॥४६॥

है ॥ ४० ॥ वह मुरलीको धारण करे हुए हैं, बांए हाथमें पद्मको ग्रहण किये हैं। कटि प्रदेशमें काञ्चीदाम झनझना रहा है, पैरोंमें नूपुर शोभित हैं ॥ ४१ ॥ रति और केलिके रसमय प्रवेशसे चञ्चल हैं, सो वह चपल आंखोंसे इधर उधर देख रहे हैं। प्यारी जूके साथ हंस रहे हैं और उन्हें बारम्बार हंसा रहे हैं ॥ ४२ ॥ वृन्दावनमें कल्पवृक्षके नीचे रत्नसिंहासनके ऊपर प्यारी जूके साथ बैठे हुए इस भांति कृष्णका ध्यान धरे ॥ ४३ ॥ फिर उनकी बांई ओर बैठी हुई राधिकाको यों सुमिरे—वह नीली चोलीसे अङ्गको आवृत किये हैं, उनकी प्रभा तप्त काञ्चनकी नाईं है ॥ ४४ ॥ सुन्दर मुसकराते हुए आधे मुखारविन्दको घूंघटसे छिपाये हुए हैं। वह प्यारे श्रीकृष्णके मुखपर दृष्टि जमाये हैं, उनकी आंखें चकोरीकी नाईं चञ्चल हैं ॥ ४५ ॥ अंगूठे और तर्जनीसे पकड़के अपने प्यारे श्रीकृष्णके मुखमें चना, कत्था, सुपारी आदि अनेक वस्तुओंसे युक्त पान दे रही हैं ॥ ४६ ॥

मुक्ताहारस्फुरच्चारुपीनोन्नतपयोधराम्। क्षीणमध्यां किङ्किणीजालमण्डिताम्॥ ४७॥ रत्नताटङ्ककेयूरमुद्रावलय-धारिणीम्। रणत्कटकमञ्जीररत्नपादाङ्गुलीयकाम्॥ ४८॥ लावण्यसारमुग्धाङ्गीं सर्व्वावयवसुन्दरीम्। आनन्दरससंमग्नां प्रसन्नां नवयौवनाम्॥ ४९॥ सख्यश्च तस्या विप्रेन्द्र तत्समानवयो-गुणाः। तत्सेवनपरा भाव्याश्चामरव्यजनादिभिः॥ ५०॥ अथ तुभ्यं प्रवक्ष्यामि मन्त्रार्थं शृणु नारद। बहिरङ्गैः प्रपञ्चस्य स्वांशैर्मायादि-शक्तिभिः॥ ५१॥ अन्तरङ्गैस्तथा नित्यविभूतैस्तैश्चिदादिभिः। गोपनादुच्यते गोपी राधिका कृष्णवल्लभा। देवी कृष्णमयी प्रोक्ता

पुष्ट और ऊँचे कुचोंपर सुन्दर मोतियोंका हार चमका रही हैं। उनकी कटि बड़ी क्षीण हैं, नितम्ब भारी हैं, उनपर करधनीका जाल शोभित हैं॥ ४७॥ वह रत्नके कर्णपूर, पहुँची, कङ्कण और मुद्रिकाको पहने हैं। पैरोंमें रत्नजटित छल्ला, घूंघरू, पायल और नूपुरोंकी झणत्कार है॥ ४८॥ वह सौन्दर्यकी सारमय अङ्गलतासे युक्त होके मोह उत्पन्न करती हैं, वह सर्व्वाङ्ग-सुन्दरी हैं। वह आनन्दके रसमें पूरी मग्न हैं, वह प्रसन्न रहती हैं॥ ४९॥ नये यौवनसे मण्डित हैं। हे द्विजोत्तम! उनकी सखियां भी अवस्था और गुणमें उन्हींके समान हैं। वे सुन्दरियां उन्हीं की सेवामें तत्पर होके चंवर, व्यजन आदिको धारण करती हैं॥ ५०॥ हे नारद! सुनो, अब तुमसे मैं मन्त्रका अर्थ कहता हूं। इस मन्त्रके प्रपञ्चके बाहरी स्वांशसे तथा माया आदि शक्तिसे॥ ५१॥ उसी भांति, नित्यविभवशाली भीतरी चित्-शक्तिसे छिपनेके कारण वह गोपी कहलाती है। वही राधिका

राधिका परदेवता ॥ ५२ ॥ सर्व्वलक्ष्मीस्वरूपा सा कृष्णाह्लाद-
स्वरूपिणी। ततः सा प्रोच्यते विप्र ह्लादिनीति मनीषिभिः ॥५३॥
तत्कलाकोटिकोट्यंशदुर्गाद्यास्त्रिगुणात्मिकाः। सा तु साक्षान्महा-
लक्ष्मीः कृष्णो नारायणः प्रभुः ॥५४॥ नैतयोर्विद्यते भेदः स्वल्पोऽपि
मुनिसत्तम। इयं दुर्गा हरो रुद्रः कृष्णः शक्र इयं शची ॥ ५५ ॥
सावित्रीयं हरिर्ब्रह्मा धूमोर्णासौ यमो हरिः बहुना किं मुनि-
श्रेष्ठ विना ताभ्यां न किञ्चन ॥ ५६ ॥ चिदचिल्लक्षणं सर्व्वं राधा-
कृष्णमयं जगत्। इत्थं सर्व्वं तयोरेव विभूतिं विद्धि नारद ॥ ५७ ॥
न शक्यते मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि। त्रैलोक्ये पृथिवी मान्या
जम्बूद्वीपं ततो वरम् ॥ ५८ ॥ तत्रापि भारतं वर्षं तत्रापि मथुरा

कृष्णकी प्यारी है। वही देवी कृष्णमयी कही गई है, राधिका
परम देवता हैं ॥ ५२ ॥ वही सर्व्वलक्ष्मी-स्वरूपिणी है, वह कृष्णके
लिये आह्लाद-स्वरूपिणी है, इसीसे बुद्धिमान उसे विप्रह्लादिनी कहते
हैं ॥ ५३ ॥ उसीकी कलाके कोटि कोटि अंशमें तीनों गुणोंसे मय दुर्गा
आदि हैं। वह साक्षात् महालक्ष्मी है, और कृष्ण ही नारायण प्रभु
हैं ॥ ५४ ॥ हे मुनियोंमें श्रेष्ठ! उन दोनोंका कोई भेद नहीं है।
यही राधा दुर्गा हैं, कृष्ण रुद्र हैं, कृष्ण इन्द्र है, राधा शची हैं ॥ ५५ ॥
राधा सावित्री हैं, कृष्ण ब्रह्मा हैं,—राधा धूमोर्णा (यमपत्नी) हैं,
कृष्ण यम हैं; हे मुनिवर! अधिक क्या है, उन दोनोंके विना कुछ भी
नहीं है ॥ ५६ ॥ यह जगत् चित् और अचित्के लक्षणोंसे युक्त राधा-
कृष्णमय है। हे नारद! इस प्रकार सबको तुम उन्हीं दोनोंकी
विभूति जानो ॥ ५७ ॥ मैं सौ करोड़ वर्षमें भी सब वृत्तान्त नहीं कह

पुरी। तत्र वृन्दावनं नाम तत्र गोपीकदम्बकम्॥ ५९॥ तत्र राधासखीवर्गस्तत्रापि राधिका वरा। सान्निध्याधिक्यतस्तस्या आधिक्यं स्याद्यथोत्तरम्॥ ६०॥ पृथिवीप्रभृतीनान्तु नान्यत् किञ्चिदिहोदितम्। सैषा हि राधिका गोपी जनस्तस्याः सखीगणाः॥ ६१॥ तस्याः सखीसमूहस्य वल्लभौ प्राणनायकौ। राधाकृष्णौ तयोः पादाः शरणं स्यादिहाश्रये॥ ६२॥ प्रपद्ये गतवानस्मि जीवोऽहं भृशदुःखितः। सोऽहं यः शरणं प्राप्तो मम तस्य यदस्ति च॥ ६३॥ सर्व्वं ताभ्यां तदर्थं हि तद्भोग्यं न ह्यहं मम। इत्यसौ कथितो विप्र मन्त्रस्यार्थः समासतः॥ ६४॥ युगलार्थस्तथा न्यासः

सक्ता। त्रिलोकमें पृथ्वी माननीय है, उसमें जम्बूद्वीप श्रेष्ठ है॥ ५८॥ उसमें भी भारतवर्ष धन्य है, उसमें मथुरापुरी, उसमें भी वृन्दावन सा वन, उसमें भी गोपियोंका समूह॥ ५९॥ उसमें भी राधाका सखी-समूह, उन सबमें राधिका श्रेष्ठ हैं। उसका जितना अधिक सामीप्य जिसको है, वह यथोत्तर क्रमसे उतनी ही श्रेष्ठ है॥ ६०॥ पृथिवी आदिकी सो अन्य बात यहां कुछ नहीं कहते। वही राधिका गोपी और उनके सखीसमूह ही "जन" हैं॥ ६१॥ उनके सखीसमूहके राधाकृष्ण दोनों "वल्लभ" प्यारे प्राणपति हैं। उन दोनोंके चरण-कमलोंके आसरेमें॥ ६२॥ मैं जीव अति दुःखित होके "प्रपद्ये" अर्थात् प्राप्त हुआ हूं। सो मैं जीव जिसके शरण गया हूं, मेरा जो कुछ है, सो उसीका है॥ ६३॥ सब उन्हींका है, उन्हींके अर्थ है, उन्हींका भोग्य है, मैं स्वयं अपना नहीं हूं। हे विप्र! संक्षेपसे इस प्रकार तुमसे इस मन्त्रका अर्थ कहा गया॥ ६४॥ युगल मन्त्र, अर्थ, न्यास, प्रपत्ति,

प्रपत्तिः शरणागतिः । आत्मार्पणादिके पञ्च पर्य्यायास्ते मयोदिताः ॥ ६५ ॥ अनन्यैश्चिन्तनीयो हि दिवानक्तमतन्द्रितैः ॥ ६६ ॥

इति द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

त्रयोदशोऽध्यायः ।

शिव उवाच । अथ दीक्षाविधिं वक्ष्ये शृणु नारद तत्त्वतः । श्रवणादेव मुच्येत विना तस्य विधानतः ॥१॥ आ विरञ्चाज्जगत् सर्व्वं विज्ञाय नश्वरं बुधः । आध्यात्मिकादि त्रिविधदुःखमेवानुभूय च ॥ २ ॥ अनित्यत्वाच्च सर्व्वेषां सुखानां मुनिसत्तम । दुःखपक्षे विनिक्षिप्य तानि तेभ्यो विवर्ज्जितः ॥ ३ ॥ विरज्य संसृतेर्हानौ साधनानि

शरणागति, भगवान्को आत्म-समर्पण तथा पांचो पदार्थ मैंने तुम्हें बता दिये ॥६५॥ विना ऊंघते हुए रातदिन इसीकी चिन्ता करो ॥ ६६ ॥

बारहवां अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

महादेव बोले, हे नारद ! अवमैं तत्त्वपूर्व्वक दीक्षाकी विधि कहता हूं । सुनो, उसके विधान विना करे भी केवल सुननेसे ही मुक्ति होती है ॥ १ ॥ बुद्धिमान ब्रह्मासे लेकर संपूर्ण जगत्को नाशवान् जानके और आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों प्रकारके दुःखोंका अनुभव करके ॥ २ ॥ और हे मुनिसत्तम ! सर्व्व प्राणियोंके सुखोंकी अनित्यतासे उनको दुःख पक्षमें डालके, उनसे विवर्जित हुए ॥ ३ ॥ विषम-दुःखकी हानि करके उसमें रहनेवाला बने और

विचिन्तयेत्। अनुत्तमसुखस्यापि सम्प्राप्तौ भृशनिर्व्वृतः ॥ ४ ॥ नराणां दुष्करत्वं हि विज्ञाय च महामतिः। भृशमार्त्तस्ततो विप्र मां गुरुं शरणं व्रजेत् ॥ ५ ॥ शान्तो विमत्सरः कृष्णे भक्तोऽनन्यप्रयोजनः। अनन्यसाधनः श्रीमान् कामलोभविवर्ज्जितः ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णरसतत्त्वज्ञः कृष्णमन्त्रविदांवरः। कृष्णमन्त्राश्रयो नित्यं मन्त्रभक्तः सदा शुचिः ॥ ७ ॥ सद्धर्म्मशासको नित्यं सदाचारनियोजकः। सम्प्रदायी कृपापूर्णो विरागी गुरुरुच्यते ॥ ८ ॥ एवमादिगुणः प्रायः शुश्रूषुर्गुरुपादयोः। गुरौ नितान्तभक्तश्च मुमुक्षुः शिष्य उच्यते ॥ ९ ॥ यत् साक्षात्सेवनं तस्य प्रेम्णा भागवतो भवेत्।

साधनाओंका चिन्तन करे। सबसे उत्तम सुखकी प्राप्तिसे अत्यन्त निर्वृत रहे ॥ ४ ॥ हे विप्र! सब मनुष्य आदिका दुष्करत्व जानके बुद्धिमान् जन जब अत्यन्त पीड़ित हो, तब मुझ गुरुके शरण आवे ॥५॥ सब वही श्रीमान् शान्तियुक्त, मत्सरहीन, काम-लोभरहित, अन्यसे प्रयोजन न रखनेवाला, अन्यकी साधना न करनेवाला केवल कृष्णका ही भक्त होता है ॥ ६ ॥ वही कृष्णके रसका तत्त्वज्ञ हैं, वही कृष्णके मन्त्र जाननेवालोंमें श्रेष्ठ है, उसीको नित्य कृष्णमन्त्रका आसरा है, वही कृष्णके मन्त्रका भक्त है, वह सदाशुद्ध है ॥ ७ ॥ और सत्धर्म्मका शासन करनेवाला, श्रेष्ठ आचारमें शिष्यको नियुक्त करनेवाला, रागसे रहित विरागी, गुरु कहता है ॥ ८ ॥ इसी भांति आदि सतोगुणसे युक्त सदा गुरु चरणोंमेंकी सेवा करनेवाला, गुरुका नितान्त भक्त, मोक्षकामी जन शिष्य कहाता है ॥ ९ ॥ उस श्रीकृष्णके प्रेमवश, साक्षात् रूपसें वैष्णवकी सेवा है, सो ही बुद्धिमान् वेद और वेदान्त

स मोक्षः प्रोच्यते प्राज्ञैर्वेदवेदाङ्गवेदिभिः ॥ १० ॥ आश्रित्य स्वगुरोः पादौ निजवृत्तं निवेदयेत् । स सन्देहानपाकृत्य बोधयित्वा पुनः-पुनः ॥ ११ ॥ स्वपादप्रणतं शान्तं शुश्रूषुं निजपादयोः । अतिहृष्टमनाः शिष्यं मनुमध्यापयेत् परम् ॥ १२ ॥ चन्दनेन मृदा वापि विलिखेद्बाहुमूलयोः । वामदक्षिणयोर्विप्र शङ्खचक्रे यथाक्रमम् ॥ १३ ॥ ऊर्द्ध्वपुण्ड्रं ततः कुर्य्याद्भालादिषु विधानतः । ततो मन्त्रद्वयं तस्य दक्षकर्णे विनिर्द्दिशेत् ॥ १४ ॥ मन्त्रार्थञ्च वदेत् तस्मै यथावदनुपूर्व्वशः । दासशब्दयुतं नाम धार्य्यं तस्य प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ ततोऽतिभक्त्या सस्नेहं वैष्णवान् भोजयेद्बुधः । श्रीगुरुं पूजयेच्चापि वस्त्रालङ्करणादिभिः ॥१६॥ सर्व्वस्वं गुरवे दद्यात् तदर्द्धं वा महामुने ।

जाननेवालोंसे मोक्ष कही गई है ॥ १० ॥ ऐसा शिष्य अपने गुरुके चरणोंका आसरा लेके अपने वृत्तान्तका निवेदन करे । वह गुरु उसके सन्देहको दूर करे और वारम्वार समझावे ॥ ११ ॥ तथा अपने पैरोंमें पड़े हुए, अपने पैरोंकी सेवा करनेवाले, शान्त शिष्यको प्रसन्नचित्त होके परम मनुमन्त्र पढ़ावे ॥ १२ ॥ हे विप्र! चन्दन अथवा मट्टीसे दाहिनी और बाईं दोनों भुजाओंके मूलमें यथाक्रम शङ्ख चक्र लिखे ॥ १३ ॥ तब विधानसे मस्तकके ऊपर ऊर्द्ध्वपुण्ड्र करे, फिर युगल मन्त्र उसके दाहिने वांए कानोंमें निर्देश करे ॥ १४ ॥ उससे फिर यथावत् पूर्व्वानुसार मन्त्रार्थ कहे और प्रयत्नसे उसका दास शब्द सहित नाम रखे ॥ १५ ॥ फिर अत्यन्त भक्तिसे स्नेहसहित बुद्धिमान् वैष्णवोंको भोजन करावे । फिर वस्त्रभूषण आदिसे श्रीगुरुको पूजे ॥१६॥ हे महामुनि ! गुरुको सर्व्वस्व दे दे अथवा न हो, उसका आधा दे ।

स्वदेहमपि निक्षिप्य गुरौ स्थेयमकिञ्चनैः ॥ १७ ॥ य एतैः पञ्चभि-
र्विद्वान् संस्कारैः संस्कृतो भवेत्। दास्यभागी स कृष्णस्य नान्यथा
कल्पकोटिभिः ॥ १८ ॥ अङ्कनञ्चोर्द्ध्वपुण्ड्रञ्च मन्त्रो नामविधारणम्।
पञ्चमो याग इत्युक्ताः संस्काराः पूर्व्वसूरिभिः ॥ १९ ॥ अङ्कनं शङ्ख-
चक्राद्यैः सच्छिद्रं पुण्ड्रमुच्यते। दासशब्दयुतं नाम मन्त्रो युगल-
संज्ञकः ॥ २० ॥ गुरुवैष्णवयोः पूजा याग इत्यभिधीयते। एते
परमसंस्कारा मया ते परिकीर्त्तिताः ॥ २१ ॥ अथ तुभ्यं प्रपन्नानां
धर्म्मान् वक्ष्यामि नारद। यानास्थाय गमिष्यन्ति हरिधाम नराः
कलौ ॥२२॥ इत्थं गुरोर्लब्धमन्त्रो गुरुभक्तिपरायणः। सेवमानो गुरुं
नित्यं तत्कृपां भावयेत् सुधीः ॥२३॥ सतां धर्म्मांस्ततः शिक्षेत् प्रपन्नानां

जिनके पास कुछ नहीं है, वे अपनी देहको भी दे डाले, पर गुरुमें
स्थित रहे ॥ १७ ॥ जो विद्वान् इन पाचों संस्कारोंसे संस्कृत होता है,
वही कृष्णका दास्यभागी है, अन्यथा कोई कोटिकल्पमें भी नहीं ॥१८॥
शङ्खचक्रसे अङ्कन, ऊर्द्ध्वपुण्ड्र तिलक, मन्त्र लेना, नाम धरना, अगाड़ीके
विद्वान् इन संस्कारोंको पञ्चम यज्ञ कह गये हैं ॥ १९ ॥ शङ्ख-चक्रका
लेखन, और छिद्र सहित तिलक जो पुण्ड्र कहाता है, दास शब्दसहित
नाम, युगल नामक मन्त्र ॥ २० ॥ और गुरु तथा वैष्णवकी पूजा यह
याग कहलाते है। मैंने तुमसे ये परम संस्कार कहे ॥ २१ ॥ हे
नारद! अब तुमसे प्रपन्नोंके धर्म्म कहता हूं। जिनमें श्रद्धा
रखके कलियुगमें मनुष्य हरिधामको जाते हैं ॥ २२ ॥ इस भांति
गुरुसे मंत्र पाके, गुरुकी भक्तिमें तत्पर रहे, गुरुकी नित्य सेवा करे,
बुद्धिमान् गुरुकी कृपा हीकी भावना करे ॥ २३ ॥ फिर साधुओंके,

विशेषतः। स्वेष्टदेवधिया नित्यं वैष्णवान् परितोषयेत् ॥ २४ ॥
ताड़नं भर्त्सनं कामिभोग्यत्वेन यथा स्त्रियः। गृह्णन्ति वैष्णवानाञ्च
तत्तद् ग्राह्यं तथा बुधैः ॥ २५ ॥ ऐहिक्यामुष्मिकी चिन्ता नैव कार्य्या
कदाचन। ऐहिकन्तु सदा भाव्यं पूर्व्वाचरितकर्म्मणा ॥ २६ ॥
आमुष्मिकं तथा कृष्णः स्वयमेव करिष्यति। अतो हि तत्कृते त्याज्यः
प्रयत्नः सर्व्वथा नरैः ॥ २७ ॥ सर्व्वोपायपरित्यागः कृष्णोयात्म-
तयार्च्चनम्। सुचिरं प्रोषिते कान्ते यथा पतिपरायणा ॥ २८ ॥
प्रियानुरागिणी दीना तस्य सङ्गैककांक्षिणी। तद्गुणान् भावयेन्नित्यं
गायत्यपि शृणोति च ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णगुणलीलादि स्मरणादि
तथा चरेत्। न पुनः साधनत्वेन कार्य्यं तत् तु कदाचन ॥ ३० ॥

विशेष करके कृष्ण-प्रपन्नोंके धर्म्मोंको सीखे। अपना इष्टदेव श्रीकृष्ण
ही जानके नित्य वैष्णवोंको सन्तुष्ट करे ॥ २४ ॥ जैसे स्त्रियां कामीके
भोग्यत्वके वश उसकी ताड़ना और भर्त्सना ग्रहण कर लेती हैं, वैसे
ही बुद्धिमान् जन वैष्णवोंकी शुश्रूषा करे ॥ २५ ॥ इस लोक और पर-
लोककी चिन्ता कभी न करे। पूर्व्वकृत कर्म्मसे इस लोककी बात तो
सदा होगी ॥ २६ ॥ और परलोककी व्यवस्था स्वयं कृष्ण ही करेंगे।
इसी लिये मनुष्य सर्व्वथा ऐसी चिन्ताओंको यत्नसे छोड़े रहे ॥ २७ ॥
सब उपायोंका त्यागना और कृष्णको ही आत्मा है, समझके अर्चना
करना। चिरकालके लिये पति परदेश गया है, तब जैसे पतिव्रता ॥
२८ ॥ और पतिमें अनुराग रखनेवाली विचारी स्त्री, केवल उसीके
सङ्गकी आकाङ्क्षा करती है, नित्य उसीके गुणों हीको सोचती, गाती
और सुनती है ॥ २९ ॥ वैसे ही श्रीकृष्णकी लीला, गुण आदिके

चिरं प्रोष्यागतं कान्तं प्राप्य कान्तधिया यथा । चुम्बन्तीवाश्लिष्यन्तीव नेत्रान्तेन पिबन्त्यपि ॥ ३१ ॥ ब्रह्मानन्दगतेवाशु द्रवते परया मुदा । श्रीमदर्चावतारेण तथा परिचरेद्धरिम् ॥ ३२ ॥ अनन्यशरणो नित्यं तथैवानन्यसाधनः । अनन्यसाधनार्थत्वात् स्यादनन्यप्रयोजनः ॥ ३३ ॥ नान्यञ्च पूजयेद्देवं न नमेत् तं स्मरेन्न च । न च पश्येन्न गायेच्च न च निन्देत् कदाचन ॥ ३४ ॥ नान्योच्छिष्टञ्च भुञ्जीत नान्यशेषञ्च धारजेत् । अवैष्णवानां संभाषावन्दनादि विवर्ज्जयेत् ॥ ३५ ॥ ईशवैष्णवयोर्निन्दां शृणुयान्न कदाचन । कर्णौ पिधाय गन्तव्यं शक्तो दण्डं समाचरेत् ॥ ३६ ॥ आश्रित्य

सरणका आचरण करे । फिर यह साधन आदिसे कभी न बाधे ॥३०॥ बहुत कालके गये हुए पतिको आता देख और प्यारा जान जैसे स्त्री चूमती है, चिपटाती है और नेत्रके कोणोंसे उसके दर्शनामृतका पान करती है ॥ ३१ ॥ वैसे ही हरिभक्ति ब्रह्मानन्दको प्राप्त होके शीघ्र ही परम प्रीतिसे श्रीमान् कृष्णकी अर्चा करते हैं, सेवाका अवतार लेके हरिकी शुश्रूषा करते हैं ॥ ३२ ॥ सदा उन्हींको शरण छोड़के दूसरेका शरण नहीं, दूसरेका साधन नहीं, दूसरेके साधनहीन होनेसे दूसरेसे प्रयोजन नहीं है ॥ ३३ ॥ दूसरे देवताको न पूजे, न नमस्कार करे, न उसे सुमिरे, न देखे, न उसका गान गाये, न कभी उसकी निन्दा करे ॥ ३४ ॥ न अन्य देवताका उच्छिष्ट खाय, न उसके चढ़े हुए पुष्पादिकको धारण करे । जो लोग वैष्णव नहीं है, उनसे सम्भाषण और नमस्कार-व्यवहार वर्ज दे ॥ ३५ ॥ परमेश्वर विष्णु तथा वैष्णव, दोनोंमेंसे एककी भी निन्दा कदापि न सुने । जहां होती हो,

चातकीं वृत्तिं देहपातावधि द्विज। युगस्यार्थं भावयित्वा स्थेय-मित्येव मे मतिः ॥३७॥ सरःसमुद्रनद्यादीन् विहाय चातको यथा। तृषितो म्रियते वापि याचते वा पयोधरम् ॥ ३८ ॥ एवमेव प्रयत्नेन साधनानि विचिन्तयेत्। इष्टदेवः सदा याच्यो गतिस्त्वं मे भवेरिति ॥३९॥ इष्टदेवतदीयानां गुरोरपि विशेषतः। आनुकूल्यं सदा ज्ञेयं प्रातिकूल्यं विवर्जयेत् ॥ ४० ॥ सकृत्प्रपन्नो वच्म्यामि कल्याणगुणतां तयोः। विचिन्त्य विश्वसेदेतौ मामित्युद्धरिष्यतः ॥ ४१ ॥ संसारसागरान्नाथ मित्रपुत्रगृहाकुलात्। गोप्तारौ मे

वहांसे कान मूंदके चला जाय, शक्ति हो, तो निन्दकोंको दण्ड दे ॥ ३६ ॥ हे द्विजवर! देहके नाश हो पड़नेतक चातक पक्षीकी वृत्तिका अव-लम्बन करे और युगल मंत्रका अर्थ सोचता हुआ ही स्थिर रहे, यही मेरी मति है ॥ ३७ ॥ जैसे सरोवर, नदी, समुद्र आदिको छोड़के चातक पक्षी पियाससे मरता है, पर मांगता है तो जलधर हीसे मांगता है ॥ ३८ ॥ इसी भांति बड़े यत्नसे केवल कृष्णकी साधनाओंका चिन्तन करे। अपना इष्टदेव ही सदा "संसारमें तुमही मेरी गति हो।" इस भांति मांगने योग्य है ॥ ३९ ॥ अपने इष्टदेवके जो तदीय हैं अर्थात् उन्हींके हो चुके हैं, उनकी और विशेष करके गुरुकी अनुकूलता हीमें सदा रहे, प्रतिकूलता छोड़ दे ॥ ४० ॥ एकबार प्रपन्न होके मैं राधाकृष्ण दोनोंकी कल्याण-गुणताको कहता हूं, ऐसा सोचके यह विश्वास करे, कि वही दोनों मेरा उद्धार करेंगे ॥ ४१ ॥ हे नाथ! मित्र, पुत्र घरबाररूपी भयानकतासे भरे हुए संसार-सागरसे आप ही दोनों मुझे बचानेवाले हो, आप ही दोनों प्रपन्न शरणागतके

युवामेव प्रपन्नभयभञ्जनौ ॥ ४१ ॥ योऽहं ममास्ति यत्किञ्चिदिह लोके परत्र च । तत्सर्वं भवतोरद्य चरणेषु समर्पितम् ॥ ४२ ॥ अहमस्म्यपराधानामालयस्त्यक्तसाधनः । अगतिश्च ततो नाथौ भवन्तावेव मे गतिः ॥ ४४ ॥ तवास्मि राधिकाकान्त कर्मणा मनसा गिरा । कृष्णाकान्ते तवैवास्मि युवामेव गतिर्मम ॥ ४५ ॥ शरणं वां प्रपन्नोऽस्मि करुणानिकराकरौ । प्रसादं कुरुतं दास्यं मयि दुष्टेऽपराधिनि ॥ ४६ ॥ इत्येवं जपता नित्यं स्थातव्यं पद्यपञ्चकम् । अचिरादेव तद्दास्यमिच्छता मुनिसत्तम ॥ ४७ ॥ बाह्यधर्मा मया ह्येते संक्षेपेणोपवर्णिताः । आन्तरः परमो धर्मः प्रपन्नानामथो-

---

भयके तोड़नेवाले हो ॥ ४१ ॥ जो मैं हूं, जो कुछ इस लोक परलोकमें मेरा है, सो सब आज आप दोनोंके चरणारविन्दोंकी अर्चनामें अर्पित करता हूं ॥ ४२ ॥ मैं संपूर्ण अपराधोंका घर हूं; मैंने सब साधनाओंको ही छोड़ दिया है, आप ही दोनों मेरे नाथ हो, हे राधाकृष्ण ! मेरी कहीं गति नहीं है, आप ही दोनों मेरी गति हो ॥ ४४ ॥ हे राधाके प्यारे कृष्ण ! कर्म्म, मन, वचनसे मैं तुम्हारा ही हूं, हे कृष्णकी प्यारी राधिके ! मैं तुम्हारा ही हूं । आप ही दोनों मेरी गति हो ॥ ४५ ॥ हे राधाकृष्ण ! आप दोनों करुणा-समूहकी खानि हो, मैं आप दोनोंकी शरणमें प्रपन्न हूं, मुझ दुष्ट अपराधीपर कृपा करो, मुझे दास्य भक्ति दो ॥ ४६ ॥ इस प्रकार इन्हीं पांचों श्लोकोंको नित्य जपता रहे । हे मुनिवर ! शीघ्र ही उनका दास्य चाहनेवाला ऐसा ही करे ॥ ४७ ॥ इतने बाहरी धर्म्म मैंने संक्षेपसे वर्णन करे । अब प्रपन्नोंका भीतरी परम धर्म्म कहता

च्छति ॥ ४८ ॥ कृष्णप्रियासखीभावं समाश्रित्य प्रयत्नतः । तयोः सेवां प्रकुर्व्वीत दिवानक्तमतन्द्रितः ॥ ४९ ॥ इत्तो मन्त्रस्तदङ्गानि तथा तस्याधिकारिणः । तद्धर्माश्च तथा तेभ्यः फलं मन्त्रस्य नारद ॥ ५० ॥ अनुतिष्ठ त्वमप्येतत् तयोर्दास्यमवाप्स्यसि । स्वाधिकारच्चये विप्र सन्देहो नात्र कश्चन ॥ ५१ ॥ सकृत्तावप्रपन्नाय तवास्मीति च याचते । निजदास्यं हरिर्दद्यान्न मेऽत्रास्ति विचारणा ॥ ५२ ॥ अत्र ते वर्णयिष्यामि रहस्यं परमाद्भुतम् । श्रुतपूर्व्वं मया कृष्णात् साक्षाद्भगवतः परम् ॥५३॥ एष ते कथितो धर्म्म आन्तरो मुनिसत्तम । गुह्यादपि गुह्यतमो गोपनीयः प्रयत्नतः ॥ ५४ ॥ मन्त्रराजमहं पूर्व्वं जपन् कैलासमूर्द्धनि । ध्यायन् नारायणं देवमवसं

हूं ॥ ४८ ॥ यत्नपूर्व्वक कृष्णकी प्यारी सखीका भाव अवलम्बन करके दिनरात, बिना आलस्य उन्हीं दोनोंकी सेवा करे ॥ ४९ ॥ हे नारद! मैंने तुमसे मंत्र, उसके अङ्ग, उसके अधिकारी, उसके धर्म्म, तथा उन अधिकारियोंको मंत्रका जो फल मिलेगा, सो सब वर्णन किया ॥ ५० ॥ हे विप्र! तुम भी इसका अनुष्ठान करो, स्वाधिकारके क्षय होनेपर तुम भी उन दोनोंका दास्य पाओगे, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥५१॥ एकबार भी "मैं तुम्हारा हूं" ऐसा कहके मांगनेवाले प्रपन्न शरणागतको हरि अपना दास्य देते हैं, इसमें मेरा कुछ भी तर्क-विचार नहीं ॥ ५२ ॥ यहां मैं तुमसे परम अद्भुत रहस्य वर्णन करता हूं। वह परम रहस्य पहले मैंने साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णसे सुना था ॥ ५३ हे मुनिसत्तम! यह तुमसे भीतरी धर्म्म कहा गया। यह गोप्यसे भी अधिक गोप्य: यत्नसे गोपनीय है ॥ ५४ ॥ पहले मैं कैलासके

गहने वने ॥५५॥ ततस्तु भगवांस्तुष्टः प्रादुरास ममाग्रतः । व्रियतां वर इत्युक्ते अथाप्युद्घाट्य लोचने ॥ ५६ ॥ दृष्टो देवः प्रियाशाङ्कं संस्थितो गरुड़ोपरि । प्रणिपत्यावोचमहं वरदं कमलापतिम् ॥ ५७ ॥ यद्रूपं ते कृपासिन्धो परमानन्ददायकम् । सर्व्वानन्दाश्रयं नित्यं मूर्त्तिमत् सर्व्वतोऽधिकम् ॥ ५८ ॥ निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं यद्-ब्रह्मेति विदुर्बुधाः । तदहं द्रष्टुमिच्छामि चक्षुर्भ्यां परमेश्वर ॥५९॥ ततो मामाह भगवान् प्रपन्नं कमलापतिः । तदद्य द्रक्ष्यसे रूपं यत् ते मनसि कांक्षितम् ॥ ६० ॥ यमुनापश्चिमे तीरे गच्छ वृन्दावनं मम । इत्युक्त्वान्तर्दधे देवः प्रियासाङ्कं जगत्पतिः ॥ ६१ ॥ अत्र-

---

शिखरपर घोर वनमें उक्त मंत्र-चिन्तामणि-रत्नको जपते हुए और नारायण देवका ध्यान करते हुए रहा ॥ ५५ ॥ तब भगवान् प्रसन्न होके मेरे आगे प्रकट हुए। उनके "वर मांगो" कहने पर मैंने भी दोनों आंखें खोलके ॥ ५६ ॥ गरुड़के ऊपर प्रिया लक्ष्मीके साथ बैठे हुए विष्णुदेवको देखा। प्रणाम करके मैंने वरदेनेवाले लक्ष्मी-नाथसे कहा ॥ ५७ ॥ हे कृपासिन्धो! तुम्हारा जो नित्यरूप मेरे सर्व्वस्वसे भी अधिक है, जो परम आनन्दका देनेवाला है, जो सर्वा-नन्दाश्रय, अविनाशी, मूर्त्तिमान्, सबसे गुरु, निर्गुण, क्रियाहीन, शान्त है, जिसे बुद्धिमान् ब्रह्म जानते हैं; हे परमेश्वर! मैं उसे अपनी आंखोंसे देखना चाहता हूं ॥ ५८ । ५९ ॥ तब भगवान् लक्ष्मी-नाथने मुझ प्रपन्नसे कहा, जो तुमने मनमें चाहा है, वह रूप आज देखोगे ॥ ६० ॥ तुम यमुनाके पश्चिम तीरपर मेरे वन वृन्दावनको जाओ। इतना कहके देव जगन्नाथ प्रियासहित अन्तर्द्धान हुए ॥६१॥

मयाऽऽगतस्तर्हि यमुनायास्तटं शुभम्। तत्र कृष्णमपश्यञ्च सर्व्वदेवेश्वरेश्वरम् ॥ ६२। गोपवेषधरं कान्तं किशोरवयसान्वितम्। प्रियास्कन्धे सुविन्यस्तवामहस्तं मनोहरम् ॥ ६३ ॥ हसन्तं हासयन्तं तां मध्ये गोपीकदम्बके। स्निग्धमेघसमाभासं कल्याणगुणमन्दिरम् ॥ ६४ ॥ प्रहस्य च ततः कृष्णो मामाहामृतभाषणः। अहं ते दर्शनं यातो ज्ञात्वा रुद्र तवेप्सितम् ॥ ६५ ॥ यदद्य मे त्वया दृष्टमिदं रूपमलौकिकम्। घनीभूतामलप्रेमसच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ ६६ ॥ नीरूपं निर्गुणं व्यापि क्रियाहीनं परात्परम्। वदन्त्युपनिषत्सङ्घा इदमेव ममानघम् ॥ ६७ ॥ प्रकृत्युत्थगुणाभावादनन्तत्वात् तथेश्वरम्। असिद्धत्वान्मद्गुणानां निर्गुणं मां वदन्ति हि ॥ ६८॥

मैं भी तब सुन्दर यमुनाके तटपर गया। वहां सब देवोंके ईश्वरोंके ईश्वर कृष्णको देखा ॥ ६२ ॥ वह गोप-वेषको धारण किये हुए थे; कैशोरावस्थासे युक्त थे, मनके हरनेवाले थे, प्रिया जीके कन्धे पर वांया हाथ धरे हुए थे ॥ ६३ ॥ गोपीगणके बीच वह हंस रहे थे और प्रियाजीको हंसा रहे थे, वह चिकने मेघकी नाईं नील आभाससे युक्त थे, कल्याण और गुणके मन्दिर थे ॥ ६४ ॥ अमृतकी नाईं मीठे वचन बोलनेवाले कृष्णने तब मुझसे हंसके कहा, "हे रुद्र ! मैंने तुम्हें देखा और तुम्हारा मनोवाञ्छित विचार जाना" ॥ ६५ ॥ निर्म्मल प्रेमके घन होनेसे युक्त सच्चिदानन्द मूर्त्ति मेरा अलौकिकरूप जो तुमने आज देखा ॥ ६६ ॥ मेरे इसी रूपको उपनिषत्समूह रूपहीन, निर्गुण, सर्व्वव्यापी, क्रियारहित, श्रेष्ठसे श्रेष्ठ, निष्काम कहते हैं ॥ ६७ ॥ प्रकृतिसे उठे हुए गुणोंके अभावसे मेरे गुणोंके असिद्ध

अदृश्यत्वान्ममैतस्य रूपस्य चर्म्मचक्षुषा। अरूपं मां वदन्त्येते वेदाः सर्व्वे महेश्वर ॥ ६९ ॥ व्यापकत्वाच्चिदंशेन ब्रह्मेति च विदुर्बुधाः। अकर्तृत्वात् प्रपञ्चस्य निष्क्रियं मां वदन्ति हि ॥ ७० ॥ मायागुणैर्यतो मेंऽशाः कुर्व्वन्ति सर्ज्जनादिकम्। न करोमि स्वयं किञ्चित् सृष्ट्यादिकमहं शिव ॥ ७१ ॥ अहमासां महादेव गोपीनां प्रेमविह्वलः। क्रियान्तरं न जानामि नात्मानमपि नारद ॥ ७२ ॥ विहराम्यनया नित्यमस्याः प्रेमवशीकृतः। इमान्तु मत्प्रियां विद्धि राधिकां परदेवताम् ॥ ७३ ॥ अस्याश्च परितः पश्य सख्यः शत-सहस्रशः। नित्याः सर्व्वा इमा रुद्र यथाहं नित्यविग्रहः ॥ ७४ ॥ गोपा गावो गोपिकाश्च सदा वृन्दावनं मम। सर्व्वमेतन्नित्यमेव

होनेके कारण मुझ ईश्वरको निर्गुण कहते हैं ॥ ६८ ॥ हे महेश्वर! मेरे इस रूपके चर्मचक्षुसे अदृश्य होनेके कारण मुझे सर्व्ववेद अरूप कहते हैं ॥ ६९ ॥ चित्के अंशसे सर्व्वत्र व्याप्त होनेसे मुझे बुद्धिमान् लोग ब्रह्मनामसे जानते हैं। इस प्रपञ्चका कर्त्ता न होनेसे मुझे क्रियाहीन कहते हैं ॥ ७० ॥ हे शिव! मेरे अंश मायाके गुणोंसे सृष्टिकी उत्पत्ति करते हैं, इसी लिये मैं आप कुछ भी सृष्टि आदिक नहीं करता ॥ ७१ ॥ हे महादेव! मैं इन गोपियोंके प्रेममें विकल हूं। महादेव कहने लगे, हे नारद! भगवान्ने तब कहा, मैं कोई दूसरा कर्म्म क्या अपनेको भी नहीं जानता ॥ ७२ ॥ इस परम देवीको तुम मेरी प्यारी राधिका जानो। मैं इसीके प्रेममें वशीभूत होके नित्य इसीके साथ विहार करता हूं ॥ ७३ ॥ इसकी चारों ओर लाखों सखियोंको देखो। हे रुद्र! जैसे मैं अविनाशी-स्वरूप हूं,

चिदानन्दरसात्मकम् ॥ ७५ ॥ इदमानन्दकन्दाख्यं विद्धि वृन्दावनं मम । यस्मिन् प्रवेशमात्रेण न पुनः संसृतिं विशेत् ॥ ७६ ॥ मद्वनं प्राप्य यो मूढः पुनरन्यत्र गच्छति । स आत्महा भवेदेव सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ ७७ ॥ वृन्दावनं परित्यज्य नैव गच्छाम्यहं क्वचित् । निवसाम्यनया सार्द्धमहमत्रैव सर्व्वदा ॥ ७८ ॥ इत्येवं सर्व्वमाख्यातं यत् ते रुद्र हृदि स्थितम् । कथयस्व ममेदानीं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ७९ ॥ ततस्तमब्रवं देवमहञ्च मुनिसत्तम । ईदृशस्त्वं कथं लभ्यस्तदुपायं वदस्व मे ॥ ८० ॥ ततो मामाह भगवान् साधु रुद्र त्वयोदितम् । अतिगुह्यतमं ह्येतद्गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ८१ ॥ सकृदावां प्रपन्नो यस्त्यक्तोपाय उपासते । गोपीभावेन देवेश

वैसे ही ये सब भी नित्य हैं ॥ ७४ ॥ ग्वाल, गोपियां, गायें और वृन्दावन, ये सदा मेरे ही हैं। ये सब नित्य और चित्के आनन्दरससे भरे हैं ॥ ७५ ॥ इस वृन्दावनको आनन्दस्थलके नामसे जान। जिसमें प्रवेशमात्र करके फिर संसार-दुःखमें न घुसे ॥ ७६ ॥ मेरे वनको पाके जो मूढ़ अन्यत्र जाता है, वह आत्मघाती होता है, यह मैं सत्य सत्य कहता हूं ॥ ७७ ॥ वृन्दावनको छोड़के मैं कहीं भी नहीं जाता। सर्व्वदा मैं यहीं राधिकाके साथ रहता हूं ॥ ७८ ॥ हे रुद्र! जो कुछ तुम्हारे हृदयमें स्थित था, सो सब इस प्रकार वर्णन किया। अब मेरा अन्य क्या (रहस्य) सुनना चाहते हो, सो कहो ॥ ७९ ॥ हे मुनिवर! तब उन श्रीकृष्णदेवसे मैंने कहा, इस रूपमें तुम कैसे मिल सकते हो, वही उपाय मुझसे कहो ॥ ८० ॥ तब मुझसे भगवान्ने कहा, हे रुद्र! तुमने भला पूछा। यह अति अधिक गुप्त है, इसे यत्नसे गुप्त

स मामेति न चेतरः ॥८२॥ सकृद्वावां प्रपन्नो वा मत्प्रियामेकिकामुत । सेवतेऽनन्यभावेन स मामेति न संशयः ॥ ८३ ॥ यो मामेव प्रपन्नश्च मत्प्रियां न महेश्वर । न कदापि स चाप्नोति मामेवं ते मयो-दितम् ॥ ८४ ॥ सकृदेव प्रपन्नो यस्तवास्मीति वदेदपि । साध-नेन विनाप्येव मामाप्नोति न संशयः ॥ ८५ ॥ तस्मात् सर्व्वप्रयत्नेन मत्प्रियां शरणं व्रजेत् । आश्रित्य मत्प्रियां रुद्र मां वशीकर्त्तुमर्हसि ॥ ८६ ॥ इदं रहस्यं परमं मया ते परिकीर्त्तितम् । त्वयाप्येतन्महा-देव गोपनीयं प्रयत्नतः ॥ ८७ ॥ त्वमप्येनां समाश्रित्य राधिकां

रखना ॥ ८१ ॥ हे देवदेव, महादेव ! एकबार भी जो हम दोनोंका प्रपन्न शरणागत होके अन्य उपाय छोड़ता है और सखीभावसे मेरी उपासना करता है, वही मुझे पाता है, अन्य नहीं ॥ ८२ ॥ एकबार भी जो हम दोनोंका प्रपन्न होता है अथवा अनन्य भावसे अकेली मेरी प्रिया हीकी सेवा करता है, वही मुझे पाता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ८३ ॥ हे महेश्वर ! जो एक मेरा ही प्रपन्न है और मेरी प्यारी राधिकाका नहीं है, सो मुझे कभी नहीं पाता है, मैं तुमसे ऐसे ही कहता हूं ॥ ८४ ॥ जो प्रपन्न है, सो विना किसी साधनाके केवल एकबार "मैं तुम्हारा ही हूं" ऐसा कहे, तो मुझे पाता है, इसमें संशय नहीं ॥ ८५ ॥ इस लिये सब प्रयत्नसे मेरी प्यारी राधिकाकी शरण जाय। हे रुद्र ! तुम मेरी प्रियाका आसरा लेके मुझे भी वश करने योग्य हो ॥ ८६ ॥ यह परम रहस्य मैंने तुमसे परिकीर्त्तित किया। हे महादेव ! तुम भी इसे प्रयत्नसे छिपाना ॥ ८७ ॥ तुम भी इस मेरी प्यारी राधिकाका आसरा लेके

मम वल्लभाम्। जपन् मे युगलं मन्त्रं सदा तिष्ठ मदालये॥ ८८॥
शिव उवाच। इत्युक्त्वा दक्षिणे कर्णे मम कृष्णो दयानिधिः।
उपदिश्य परं मन्त्रं संस्कारांश्च विधाय हि॥ ८९॥ सगणोऽन्तर्द्दधे
विप्र तत्रैव मम पश्यतः। अहमप्यत्र तिष्ठामि तदारभ्य निरन्तरम्॥
९०॥ सर्व्वमेतन्मया तुभ्यं साङ्गमेव प्रकीर्त्तितम्। अधुना वद
विप्रेन्द्र किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥ ९१॥

इति त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥

चतुर्द्दशोऽध्यायः।

नारद उवाच। भगवन् सर्व्वमाख्यातं यद्यत् पृष्टं मया गुरो।
अधुना श्रोतुमिच्छामि भाववमार्गमनुत्तमम्॥ १॥ शिव उवाच।

मेरा युगल मंत्र जपते हुए सदा मेरे धाममें रहो॥ ८८॥ महादेव बोले, ऐसा कहके दयासमुद्र कृष्णने मेरे दाहिने कानमें युगलमंत्रका उपदेश दिया और संस्कारोंका भी विधान कहा॥ ८९॥ हे विप्र! वहीं मेरे देखते देखते वह अपने गोपीगोप आदि गणोंके साथ अन्तर्धान हुए। तबसे मैं भी यहां निरन्तर बैठा रहता हूं॥ ९०॥ मैंने तुमसे यह सब साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया। हे विप्रेन्द्र! अब कहो, अधिक क्या सुनना चाहते हो॥ ९१॥

तेरहवां अध्याय समाप्त॥ १३॥

नारद बोले, हे भगवन्! हे गुरो! जो जो मैंने पूछा, सो सब आपने कहा। अब मैं सखी-भावका मार्ग सुनना चाहता हूं, उससे

साधु विप्र त्वया पृष्टं सर्व्वलोकहितैषिणा । रहस्यमपि वच्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २ ॥ दास्यः सखायः पितरौ प्रेयस्यश्च हरेरिह । सर्व्वे नित्या मुनिश्रेष्ठ वसन्ति गुणशालिनः ॥ ३ ॥ यथा प्रकटलीलायां पुराणेषु प्रकीर्त्तिताः । तथा ते नित्यलीलायां सन्ति वृन्दावने भुवि ॥ ४ ॥ गमनागमने नित्यं करोति वनगोष्ठयोः । गोचारणं वयस्यैश्च विनाऽसुरविघातनम् ॥ ५ ॥ परकीयाभिमानिन्यस्तथा तस्य प्रिया जनाः । प्रच्छन्नेनैव भावेन रमयन्ति निजप्रियम् ॥६। आत्मानं चिन्तयेत् तत्र तासां मध्ये मनोरमाम् । रूपयौवनसम्पन्नां किशोरीं प्रमदाकृतिम् ॥ ७ ॥ नानाशिल्पकलाभिज्ञां कृष्णभोगानुरूपिणीम् । प्रार्थितामपि कृष्णेन

उत्तम कुछ नहीं ॥ १ ॥ शिव बोले, हे विप्र ! सर्व्वलोकके हित चाहनेवाले तुमने भला पूछा, मैं तुमसे गुप्त रहस्य भी कहूंगा, मुझ कहनेवालेसे सखीभाव सुन ॥ २ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णके दास-दासी, सखा-सखी, माता-पिता और गोपिकायें सब अविनाशी, गुणशाली होके स्थित हैं ॥ ३ ॥ पुराणोंमें जैसी प्रकट लीला वर्णित है, वैसी ही नित्य-लीलामें वे वृन्दावन भूमिके भीतर हैं ॥ ४ ॥ नित्य वन और गोठ, दोनोंसे गमन और आगमन होता है। सखाओंके साथ बिना राक्षसोंके मारे, नित्य गायें चराई जाती हैं ॥ ५ ॥ उन श्रीकृष्णकी प्यारी गोपियां परकीया नायिका हैं, सब मानिनी हैं, वे अपने प्यारे नायकसे गुप्त भावसे छिपके रमण करती हैं ॥ ६ ॥ सखी-भावयुक्त जन अपनेको उन गोपियोंके बीचमें मनोरमा, रूपयौवनसे युक्त, किशोरी, तरुणीके रूपमें ध्यान करे ॥ ७ ॥

तत्र भोगपराङ्मुखीम् ॥ ८ ॥ राधिकानुचरीं नित्यं तत्सेवनपरायणाम्। कृष्णादप्यधिकं प्रेम राधिकायां प्रकुर्व्वतीम् ॥ ९ ॥ प्रीत्यानुदिवसं यत्नात् तयोः सङ्गमकारिणीम्। तत्सेवनसुखाह्लादभावेनातिसुनिर्वृताम् ॥१०॥ इत्यात्मानं विचिन्त्यैव तत्र सेवां समाचरेत्। ब्राह्मं मुहूर्त्तमारभ्य यावत् स्यात् तु महानिशा ॥ ११ ॥ नारद उवाच। हरेर्दैनन्दिनीं लीलां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः। लीलामजानता सेव्यो मनसा तु कथं हरिः ॥१२॥ शिव उवाच। नाहं जानामि तां लीलां हरेर्नारद तत्त्वतः। वृन्दादेवीमितो गच्छ सा ते लीलां प्रवक्ष्यति ॥१३॥ अविदूर इतः स्थानात् केशीतीर्थसमीपतः।

अपनेको नाना भांतिकी शिल्प-कलाओंकी जाननेवाली, कृष्णसे अनुराग रखनेवाली, कृष्णके रतिके लिये प्रार्थित होके "नहीं नहीं" करके भोगसे मुख मोड़नेवाली, गोपीके वेषमें ध्यान करे ॥ ८ ॥ अपनेको राधिकाकी अनुचरी, उन्हीं सेवामें परायण कृष्णसे भी राधिकामें अधिक प्रेम करनेवाली ध्यावे ॥ ९ ॥ अपनेको प्रतिदिन प्रीतिवश राधाकृष्ण दोनोंका सङ्गम करानेवाली, उनके सेवनके सुख और आनन्द-भावसे बहुत सुनिर्वृत रूपमें ध्यावे ॥ १० ॥ इस भांति अपनेको ध्यान करके वहां ब्राह्म मुहूर्त्तसे आरम्भ करके महानिशाके होने तक सेवाका आचरण करे, वही सखीभाव है ॥ ११ ॥ नारद बोले, श्रीकृष्णकी दिन दिन लीला मैं तत्त्वपूर्व्वक सुनना चाहता हूं, लीलाका न जाननेवाला मनसे हरिकी सेवा कैसे करेगा ॥ १२ ॥ महादेव बोले, हे नारद ! हरिकी उस लीलाको मैं तत्त्वपूर्व्वक नहीं जानता। सो तुम वृन्दावनकी अधिष्ठात्री वृन्दादेवीके पास जाओ, वह तुमसे लीला कहेगी ॥ १३ ॥ इस

सखीसङ्घवृता आस्ते गोविन्दपरिचारिका ॥ १४ ॥ सूत उवाच। इत्युक्तास्तं परिक्रम्य हृष्टो नत्वा पुनःपुनः। वृन्दाश्रमं जगामाथ नारदो मुनिसत्तमः ॥ १५ ॥ वृन्दापि नारदं दृष्ट्वा प्रणम्य च पुनः-पुनः। उवाच च मुनिश्रेष्ठ कथमत्रागतिस्तव ॥ १६ ॥ नारद उवाच। त्वत्तो वेदितुमिच्छामि नैत्यकं चरितं हरेः। तदादितो मम ब्रूहि यदि योग्योऽस्मि शोभने ॥ १७ ॥ वृन्दोवाच। रहस्यमपि वक्ष्यामि कृष्णभक्तोऽसि नारद। न प्रकाश्यं त्वयाप्येतद् गुह्याद्गुह्यतरं महत् ॥ १८ ॥ मध्ये वृन्दावने रम्ये पञ्चाशत्कुञ्जमण्डिते। कल्पवृक्ष-निकुञ्जे तु दिव्यरत्नमये गृहे ॥ १९ ॥ निद्रितौ तिष्ठतस्तल्पे निविडालिङ्गितौ मिथः। मदाज्ञाकारिभिः पश्चात् पक्षिभिर्बोधिता-

---

स्थानसे केशीघाट दूर नहीं है, उसी तीर्थके पास, वह गोविन्दकी दासी, सखियोंके समूहसे घिरी हुई रहती है ॥ १४ ॥ सूत बोले, शिवसे ऐसा कहा जाते हुए, मुनिवर नारदने प्रसन्न होके उनकी बारम्बार परिक्रमा की और प्रसन्न होके फिर वृन्दाके आश्रमको गये ॥ १५ ॥ वृन्दाने भी नारदको देखके बारम्बार प्रणाम किया और कहा, हे मुनिवर! तुम यहां कैसे आये ॥ १६ ॥ नारद बोले, हे शोभने! तुमसे मैं श्रीकृष्णकी दिन दिनकी लीला सुनना चाहता हूं, जो मैं योग्य हूं, तो उसे आरम्भसे मुझे बताओ ॥ १७ ॥ वृन्दा बोली, हे नारद! तुम कृष्णके भक्त हो, तुमसे मैं रहस्यतक कहूंगी, पर तुम उस गुह्यसे भी अधिकतर गोप्य बातको प्रकाश मत करना ॥ १८ ॥ पचास कुञ्जोंसे मण्डित रमणीय वृन्दावनमें, कल्पवृक्ष-निकुञ्ज-स्थित दिव्य रत्नोंसे शोभित घरके भीतर ॥ १९ ॥ पलङ्गके ऊपर

इति ॥ २० ॥ गाढालिङ्गनजानन्दमाप्तौ तद्भङ्गकातरौ। न मनः कुरुतस्तल्पात् समुत्थातुं मनागपि ॥ २१ ॥ ततश्च शारिकावृन्दैः शुकाद्यैः परितो मुहुः। बोधितौ विविधैर्वाक्यैः स्वतल्पादुदतिष्ठताम् ॥ २२ ॥ उपविष्टौ ततो दृष्ट्वा सख्यस्तल्पे मुदान्वितौ। प्रविश्य चक्रुः सेवां कुर्वन्ति तत्काले ह्युचितां तयोः ॥ २३ ॥ पुनश्च शारिकावाक्यैस्तावुत्थाय स्वतल्पतः। गच्छतः स्वस्वभवनं भीत्युत्कण्ठाकुलौ ततः ॥ २४ ॥ प्रातश्च बोधितो मात्रा तल्पादुत्थाय सत्वरः। कृत्वा कृष्णो दन्तकाष्ठं बलदेवसमन्वितः ॥ २५ ॥ मात्रानुमोदितो याति गोशालां सखिभिर्वृतः। राधापि बोधिता विप्र वयस्याभिः

प्रगाढ़ आलिङ्गन करके राधाकृष्ण दोनों शयन करते रहते हैं। पीछे मेरे आज्ञाकारी पक्षियोंके जगाने पर भी ॥ २० ॥ गाढ़े आलिङ्गनसे उत्पन्न सुखको पाते हुए, राधाकृष्ण उस सुखके नष्ट होनेके डरसे तनिक भी पलङ्गपरसे उठनेका मन नहीं करते ॥ २१ ॥ फिर मैना, सुआ आदि सुन्दर पक्षियोंके समूहके चारो ओरसे बारम्बार "सेजपरसे उठिये" आदि विविध वाक्योंके कहने पर प्रिया प्रियतम दोनों जागते हैं ॥ २२ ॥ हर्षसे युक्त उन दोनोंको सेजपर बैठा हुआ देखके सब सखियां निकुञ्जमें प्रवेश करके उन दोनोंकी तत्कालोचित सेवा करती हैं ॥ २३ ॥ फिर मैनाओंके बोलनेपर दोनों अपनी सेज परसे उठते हैं और रातमें देर होनेके कारण बड़े बूढ़ोंके डर तथा पुनः मिलनकी उत्कण्ठाके वश अपने अपने घर जाते हैं ॥ २४ ॥ सवेरे यशोदा माताके जगानेसे कृष्ण खाटपरसे उठके बलदेवके साथ दन्तधावन करते हैं ॥ २५ ॥ फिर माताके अनुमोदनसे सखाओं द्वारा

स्वतन्त्रतः ॥ २६ ॥ उत्थाय दन्तकाष्ठादि कृत्वाभ्यङ्गं समाचरेत्। स्नानवेद्यां ततो गत्वा स्नापिता सा निजालिभिः ॥ २७ ॥ भूषा-गृहे व्रजेत् तत्र वयस्या भूषयन्त्यपि। भूषणैर्विविधैर्दिव्यैर्गन्ध-माल्यानुलेपनैः ॥ २८ ॥ ततः सखीजनैस्तस्याः श्वश्रूं सम्प्रार्थ्य यत्नतः। कर्तुमाह्वयते स्वन्नं ससखी सा यशोदया ॥ २९ ॥ नारद उवाच। कथमाह्वयते देवि पाकार्थन्तु यशोदया। सतीषु पाक-कर्त्रीषु रोहिणीप्रमुखास्वपि ॥ ३० ॥ वृन्दोवाच। पूर्वं दुर्वा-ससा दत्तो वरस्तस्य महामुने। इति कात्यायनीवक्त्रात् श्रुतमासी-न्मया पुरा ॥ ३१ ॥ त्वया यत् पच्यते देवि तदन्नं मदनुग्रहात्।

वेष्टित होके गोशालाको जाते हैं। हे विप्र! इधर राधा भी सखियों द्वारा अपनी खाट परसे उठाई जाती हैं ॥ २६ ॥ राधा जी उठके दंतून करती हैं, फिर सुन्दर तेल मलती हैं, फिर स्नानके चौतरेपर जाके अपनी सखियोंसे स्नान कराई जाती हैं ॥ २७ ॥ फिर भूषणोंके घरमें जाके सखियां उन्हें विविध प्रकारके दिव्य भूषण और मालाएं पहनाती हैं, तथा सुन्दर गन्ध आदिका अनुलेपन करती हैं ॥ २८ ॥ फिर यशोदा उन्हें सहेलियों सहित अपनी रसोई करने बुलाती हैं, सो सखियां उनकी सासुसे यत्नपूर्वक जानेकी आज्ञा मांगती हैं ॥ २९ ॥ नारद बोले, हे वृन्दे! सती रोहिणी आदिके रसोई बनानेवाली होनेपर भी राधा जी क्यों रसोईके लिये बुलाई जाती हैं ॥ ३० ॥ वृन्दा बोली, हे महामुनि! पहले मैंने कात्यायनी देवीके मुहसे ऐसा सुना है, कि आगे दुर्वासाने राधा जीको यह वर दिया था ॥ ३१ ॥ हे देवि, राधे! तुम जो कुछ रांधो, सो मेरे अनुग्रहसे

मिष्टं स्वाद्वमृतस्पर्द्धि भोक्तुरायुष्करं तथा ॥ ३२ ॥ इत्याशिषति तां नित्यं यशोदा पुत्रवत्सला । आयुष्मान् मे भवेत् पुत्रः स्वादुलोभात् तथा सती ॥ ३३ ॥ श्वश्र्वानुमोदिता हृष्टा चापि नन्दालयं व्रजेत् । ससखीप्रकरा तत्र गत्वा पाकं करोति च ॥ ३४ ॥ कृष्णोऽपि दुग्ध्वा गाः काश्चिद्दोहयित्वा जनैः पराः । आगच्छति पितुर्वाक्यात् स्वगृहं सखिभिर्वृतः ॥ ३५ ॥ अभ्यङ्गमर्दनं कृत्वा दासैः संस्नापितो मुदा । धौतवस्त्रधरः स्रग्वी चन्दनाक्तकलेवरः ॥ ३६ ॥ द्विपार्श्ववलच्चिकुरैर्ग्रीवाभालोपरिस्फुरत् । चन्द्राकारस्फुरद्भाल-तिलकालकरञ्जितः ॥ ३७ ॥ कङ्कणाङ्गदकेयूररत्नमुद्रालसत्करः ।

अमृतको परास्त करनेवाला तथा खानेवालेकी आयुको बढ़ानेवाला हो ॥ ३२ ॥ ऐसा सासके पुत्रवत्सला यशोदा सती नित्य उनको बुलाती है, जिससे स्वादुके लोभसे मेरा पुत्र दीर्घायु हो ॥ ३३ ॥ सासकी आज्ञा लेके वह भी प्रसन्न होके नन्दके घर जाती हैं। और सखीवृन्दके साथ वहां जाके भोजन सिद्ध करती हैं ॥ ३४ ॥ कृष्ण भी सुन्दर गायोंको दुहके अथवा किसी किसीको दासोंसे दुहाके, पिताके वाक्यपर सखागणसे वेष्टित होके अपने घर आते हैं ॥ ३५ ॥ तेल मलके और प्रसन्नता-पूर्व्वक दासोंसे न्हवाये जाके, वह धुला हुआ वस्त्र पहनते हैं, माला धारण करते हैं, शरीरको चन्दनसे लिप्त करते हैं ॥ ३६ ॥ उनकी गुही हुई अलकें दोनों ओर लटकती हैं, उनमें कण्ठ और मस्तक चमकता है। मस्तक, तिलक और अलकसे रञ्जित होके चन्द्रमाके आकारकी शोभाको पाता है ॥ ३७ ॥ कङ्कण, भुजबन्ध, पहुंची और मुद्रिकासे उनका हाथ

मुक्ताहारस्फुरद्वक्षा मकराकृतिकुण्डलः॥ ३८॥ गृहद्वा-
रागते माता प्रविशेद्भोजनालयम्। अवलम्ब्य करं सख्युः
र्बलदेवमनुव्रतः॥ ३९॥ भुङ्क्तेऽथ विविधान्नानि भ्राता च सखिभि-
र्वृतः। हासयन् विविधैर्हास्यैः सखींस्तैर्हसति स्वयम्॥ ४०॥ इत्थं
भुक्त्वा तथाचम्य दिव्यखट्वोपरि क्षणम्। विश्रम्य सेवकैर्दत्तताम्बूलं
विभजन्नदन्॥ ४१॥ गोपवेशधरः कृष्णो धेनुवृन्दपुरःसरः। व्रज-
वासिजनैः प्रीत्या सर्वैरनुगतः पथि॥ ४२॥ पितरं मातरं नत्वा
नेत्रान्तेनापि तं गणम्। यथायोग्यं तथा चान्यान् विनिवर्त्य वनं
व्रजेत्॥ ४३॥ वनं प्रविश्य सखिभिः क्रीड़यित्वा क्षणं ततः।

शोभित होता है, वक्षःस्थलमें मोतियोंका हार चमकता है और कानोंमें मकराकृत कुण्डल विराजित होते हैं॥ ३७॥ माताके बारम्बार कहनेपर वह रसोईमें प्रवेश करते हैं। सखाका हाथ पकड़के बलदेवके साथ॥ ३८॥ भाई और सखाओंसे घिरके वह विविध प्रकारके भोजन करते हैं। विविध प्रकारके हास्योंसे सखाओंको हंसाते हैं, और वह इनको हंसाते हैं॥ ४०॥ इस प्रकार भोजन करके आचमन आदि करते हैं, फिर क्षण भर दिव्य खाटके ऊपर विश्राम करके सेवकोंका दिया हुआ पान चबाते हुए खाते हैं॥ ४१॥ ग्वाल-वेश धारण करनेवाले कृष्ण, धेनुसमूहको आगे हांकते हुए, प्रीतिपूर्व्वक सब व्रजवासी जनोंसे पीछा किये जाते हैं॥ ४२॥ पिता-माताको नमस्कार करके तथा नेत्रकोणके इशारेसे सब यथायोग्य सखा-गणको साथ लेके और अन्य मनुष्योंको पीछे लौटाके वनको जाते हैं॥ ४३॥ तब वनमें प्रवेश करके सखियोंके साथ क्रीड़ा करते हैं। फिर

विहारैर्विविधैस्तत्र वने विक्रीडते मुदा ॥ ४४ ॥ वञ्चयित्वा ततः सर्वान् द्वित्रैः प्रियसखैर्वृतः । सङ्केतकं व्रजेद्धर्षात् प्रियासन्दर्शनोत्सुकः ॥ ४५ ॥ राधापि कृष्णं वनं यातं दृष्ट्वा स्वं गृहमागता । सूर्यादिपूजाव्याजेन कुसुमाहृतये तथा ॥ ४६ ॥ वञ्चयित्वा गुरून् याति प्रियसङ्गेच्छया वनम् । इत्थं तौ बहुयत्नेन मिलितौ कानने ततः ॥ ४७ ॥ विहारैर्विविधैस्तत्र दिनं विक्रीडतो मुदा । दोलायां तु समारूढौ सखीभिर्दोलितौ क्वचित् ॥ ४८ ॥ क्वापि वेणुं करस्रस्तं प्रिययापहृतं हरिः । अन्वेषयन्नुपालब्धो विप्रलब्धप्रियागणैः ॥ ४९ ॥ हसितैर्बहुधा ताभिर्हासितस्तत्र तिष्ठति । वसन्तवायुना जुष्टं वनखण्डं मुदा क्वचित् ॥ ५० ॥ प्रविश्य चन्दना-

---

वनमें हर्षपूर्वक विविध विहार और लीला करते हैं ॥ ४४ ॥ फिर सब सखाओंको छलके दो तीन प्यारे सखाओंके साथ राधाजीके दर्शनोंकी उत्कण्ठासे हर्षपूर्वक सङ्केत-गृहको जाते हैं ॥ ४५ ॥ राधाजी श्री कृष्णको वनमें गया हुआ देख अपने घर आती हैं, और सूर्य आदिकी पूजा तथा फूल तोड़नेके बहाने ॥ ४६ ॥ बड़े बूढ़ोंको छलके प्रियतमके सङ्गकी इच्छासे वनको जाती है। तब इस प्रकार बहुत यत्नसे वे दोनों वनमें मिलते हैं ॥ ४७ ॥ वहां दिनमें हर्षपूर्वक बहुतसे विहारोंसे क्रीड़ा करते हैं। कहीं झूलेपर बैठके दोनों सखियों द्वारा झुलाये जाते हैं ॥ ४८ ॥ कहीं हाथसे छूटी हुई वंशीको प्रियाजू छिपाके रख देती हैं, श्रीकृष्ण उसे ढूंढ़नेमें लगके सहेलियोंसे छले जाते हैं ॥ ४९ ॥ वहां सहेलियोंसे विविध प्रकार हंसाये हुए श्रीकृष्ण हंसते हुए बैठे रहते हैं। कहीं हर्षपूर्वक वसन्ती वायुसे जुए हुए वनखण्डमें ॥ ५० ॥

स्त्रीभिः कुङ्कुमादिजलैरपि। निषिञ्चतो यन्त्रमुक्तैस्तत्पङ्कैर्लिम्पतो मिथः॥५१॥ सख्योऽप्येवं निषिञ्चन्ति तांश्च तौ सिञ्चतः पुनः। वसन्तवायुजुष्टेषु वनखण्डेषु सर्वतः॥५२॥ तत्तत्कालोचितैर्नानाविहारैः सगणौ द्विज। श्रान्तौ क्वचिद् वृक्षमूलमासाद्य मुनिसत्तम॥५३॥ उपविश्यासने दिव्ये मधुपानं प्रचक्रतुः। ततो मधुमदोन्मत्तौ निद्रया मीलितेक्षणौ॥५४॥ मिथः पाणी समालम्ब्य कामबाणवशं गतौ। रिरंसू विशतः कुञ्जं स्खलदङ्घ्रिमनसौ पथि॥५५॥ क्रीडतश्च ततस्तत्र करिणीयूथपौ यथा। सख्योऽपि मधुभिर्मत्ता निद्रया पीड़ितेक्षणाः॥५६॥ अभितो मञ्जुकुञ्जेषु सर्वा

प्रवेश करके चन्दनजल, केशरघोल आदि उनके ऊपर यन्त्रोंसे छूट छूटके आपसे आप गिरते हैं, इस प्रकार सिञ्चित होके प्रियाप्रियतम उसकी सुगन्धित मट्टीका लेपन करते हैं॥५१॥ इस प्रकार सखियाँ भी सिञ्चित होती हैं, वे दोनों फिर सींचते हैं। चारों ओर वासन्ती वायुसे छुए हुए वनखण्डमें॥५२॥ सखीगण सहित दोनों जैसा काल हो, वैसे ही उचित नाना विहार करते हैं। हे द्विज! हे मुनिवर! कहीं दोनों थकके वृक्षमूलसे लगके॥५३॥ और दिव्य आसनपर बैठके मधुपान करते हैं। तब दोनों मधुके मदसे उन्मत्त होते हैं, दोनोंकी आंखें निद्रासे झपकती हैं॥५४॥ दोनोंकी वाणी और मन लड़खड़ाने लगते हैं; दोनों कामके वाणोंके वशीभूत होते हैं, तब रमणकी इच्छासे एक दूसरेका हाथ पकड़के कुञ्जमें घुसते हैं॥५५॥ तब दोनों करिणी और करियूथपतिकी नाईं वहां रमण करते हैं। सखियाँ भी मधुसे मत्त और निद्रासे पीड़ित नेत्रोंवाली होके॥५६॥

एवापि विधिरे । पृथगेकेन वपुषा कृष्णोऽपि युगपद्विभुः ॥ ५७ ॥ सर्व्वासां सन्निधिं गच्छेत् प्रियया प्रेरितो मुहुः । रमयित्वा च ताः सर्व्वाः करिणीर्गजराडिव ॥ ५८ ॥ प्रियया च तया ताभिः क्रीड़ार्थञ्च सरो व्रजेत् । जलसेकैर्मिथस्तत्र क्रीड़तः सगणौ ततः ॥ ५९ ॥ वासःस्रक्चन्दनैर्दिव्यैर्भूषणैरपि भूषितौ । तत्रैव सरस-स्तीरे दिव्यरत्नमये गृहे ॥ ६० ॥ प्रागेव फलमूलानि कल्पितानि मया मुने । हरिस्तु प्रथमं भुक्त्वा कान्तया परिवेष्टितः ॥ ६१ ॥ द्वित्राभिः सेवितो गच्छेच्छय्यां पुष्पविनिर्मितम् । ताम्बूलै-र्व्यजनैस्तत्र पादसंवाहनादिभिः ॥६२॥ सेव्यमानो हसंस्ताभिर्नन्दति प्रेयसीं स्मरन् । राधिकापि हरौ सुप्ते सगणा मुदितान्तरा ॥६३॥

चारों ओर सुन्दर कुञ्जोंमें सब सो जाती हैं ॥ कृष्ण प्रभु भी एक ही शरीरसे पृथक् पृथक् पर साथ ही ॥ ५७ ॥ राधाजीसे प्रेरित होके सबके पास जाते हैं, और बारम्बार उनके साथ रमण करते हैं, जैसे गजराज हस्तिनियोंके साथ ॥ ५८ ॥ फिर प्रियाजू तथा सखियोंके साथ क्रीड़ाके अर्थ सरोवरको जाते हैं । वहां राधाकृष्ण जल-क्रीड़ा करते हैं ॥ ५९ ॥ वस्त्र, माला, चन्दन, दिव्य भूषणसे दोनों भूषित होके वहीं सरोवरके तीर रत्नमय गृहमें जाते हैं ॥ ६० ॥ पहले होसे मैं फलमूल बनाके रख देती हूं । हे महामुने ! राधाजीको साथ लेके पहले हरि भोजन करते हैं ॥ ६१ ॥ फिर दो तीन सखियोंसे सेवित होके फूलोंकी सेजपर जाते हैं । वहां पान, व्यजन, पैर दावने आदिसे ॥ ६२ ॥ सेवा किये जाते हैं, कुछ उनके साथ हंसते और प्रियाजूका ध्यान करते हुए आनन्दित होते हैं । राधा भी हरिके

अपि तत्रगताप्राणा तदुच्छिष्टं भुञ्जन्ति च । किञ्चिदेव ततो भुक्त्वा प्रविशन्त्यालिनिकेतनम् ॥ ६४ ॥ द्रष्टुं कान्तमुखाम्भोजं चकोरीव निशाकरम् । ताम्बूलं चर्वितं तस्य तत्रत्याभिर्निवेदितम् ॥ ६५ ॥ ताम्बूलान्यपि चाश्नाति विभजन्ती प्रियालिषु । कृष्णोऽपि तास्तां शुश्रूषुः स्वच्छन्दं भाषितं मिथः ॥ ६६ ॥ प्राप्तनिद्र इवाभाति विनिद्रोऽपि पटावृतः । ताश्च क्ष्वेलोत्सवं कृत्वा कुतश्चिदनुमानतः ॥६७॥ विदश्य रसनां दद्भिः पश्यन्त्योऽन्योन्यमाननम् । विलीना इव लज्जाब्धौ क्षणमूचुर्न किञ्चन ॥ ६८ ॥ क्षणादेव ततो वस्त्रं दूरीकृत्य तदङ्गतः । साधु निद्रां गतोऽसीति हासयन्त्यो हसन्ति च ॥६९॥

सोनेपर सहर्ष-हृदय होके सखीगणके साथ ॥ ६३ ॥ वहीं प्राण लगाये हुए रहती हैं, जाके फिर उनका उच्छिष्ट खाती हैं। थोड़ा सा ही खाके फिर सेजघरमें जाती हैं ॥ ६४ ॥ राधाजी अपने प्यारेके मुख-कमल देखनेको ऐसे उत्सुक रहती हैं, जैसे चकोरी चन्द्रमाको। फिर वहांवालीं श्रीकृष्णके पानका उगाल देती हैं ॥ ६५ ॥ फिर राधाजी पान खाती है और प्यारी सखियोंको बांटती हैं। कृष्ण भी उनकी सेवामें स्वच्छन्द होके आपसमें राधासे बात करते हैं ॥ ६६ ॥ फिर कपड़ेकी आड़में जागते हुए भी सोनेका बहाना करते हैं। वे सखियां भी किसी अनुमानसे क्षणभर खेल करके ॥ ६७ ॥ और दांतोंसे जीभ काटके एक दूसरेका मुंह देखने लगती हैं। मानों लज्जाके समुद्रमें मग्न होके क्षणभर कुछ नहीं कहतीं ॥ ६८ ॥ क्षण-भरमें फिर वे श्रीकृष्णके अङ्गका वस्त्र हटा देती हैं और कहती हैं, "वाह ! अबे सोते हो।" इस भांति हंसाती हैं और हंसती हैं ॥ ६९ ॥

एवं तैर्विविधैर्हास्यै रममाणौ गणैः सह। अनुभूय क्षणं निद्रा-
सुखञ्च मुनिसत्तम ॥७०॥ उपविश्यासने दिव्ये सगणौ विलसते मुदा।
पणीकृत्य मिथो हारचुम्बाश्लेषपरिच्छदान् ॥७१॥ अक्षैर्विक्रीडतः
प्रेम्णा नर्मालापपुरःसरम्। पराजितोऽपि प्रियया जितोऽहमिति
वै ब्रुवन् ॥ ७२ ॥ हारादिग्रहणे तस्याः प्रवृत्तस्ताड्यते तया।
तथैवं ताड़ितः कृष्णः करेणाम्बुजरोरुहे ॥ ७३ ॥ विषण्णमानसो
भूत्वा गन्तुं प्रकुरुते मतिम्। जितोऽसि चेद् तदा देहि पणितं यत्
पणीकृतम् ॥ ७४ ॥ चुम्बनादि मया दत्तमित्युक्त्वा सा तथा चरेत्।
कौटिल्यं तद्भ्रुवोर्द्रष्टुं श्रोतुं तद्भर्त्सनं वचः ॥७५॥ ततः शारीशुकानाञ्च
श्रुत्वा वागाहवं प्रियः। निर्गच्छतस्ततः स्थानाद्गन्तुकामौ गृहं

एव प्रकार उन सखियोंकी विविध भांतिकी हंसीसे प्रिया-प्रियतम रमण करते हैं। हे मुनिसत्तम! क्षणभर निद्राके सुखका अनुभव करके ॥ ७० ॥ हर्षपूर्वक दोनों दिव्य आसनपर सखीगण सहित बैठते हैं। फिर दोनों हार, वस्त्र, चुम्बन, आलिङ्गनका लेन देन करते हैं ॥ ७१ ॥ मीठी मीठी बातें करते हुए दोनों पांसे खेलते हैं। प्रियाजूसे हारके भी कृष्ण "मैं जीता हूं" ऐसा कहते हैं ॥ ७२ ॥ जब श्रीकृष्ण उनके हार आदि लेनेमें प्रवृत्त होते हैं, तब प्रियाजूसे ताड़ित होते हैं। उनके करकमलसे ताड़ित होके श्रीकृष्ण ॥७३॥ जब खिन्नके चले जानेका मन करते हैं, तब कहते हैं, "राधे! जो तुमने मुझे जीता है, तो दांव दो, सो ले लो" ॥ ७४ ॥ "चुम्बन आदि मैंने दिये हैं" ऐसे कहके उनकी भंवोंकी कुटिलता देखनेको और उनके तिरस्कार-वचन सुननेको राधाजी वही आचरण करती हैं ॥ ७५ ॥

प्रति ॥ ७६ ॥ कृष्णः कान्तामनुज्ञाप्य गवामभिमुखं व्रजेत्। सा तु सूर्य्यगृहं गच्छेत् सखीमण्डलसंयुता ॥ ७७ ॥ कियद्दूरं ततो गत्वा परावृत्य हरिं पुनः। विप्रवेषं समास्थाय याति सूर्य्यगृहं प्रति ॥ ७८ ॥ सूर्यं प्रपूजयेत् तत्र प्रार्थितस्तत्सखीजनैः। तदैव कल्पितैर्वेदैः परिहासविगर्भितैः ॥ ७९ ॥ ततस्ता ज्ञापितं कान्तं परिज्ञाय विचक्षणाः। आनन्दसागरे मग्ना न विदुः स्वं न चापरम् ॥ ८० ॥ विहारैर्विविधैरेवं सार्द्धयामद्वयं मुने। नीत्वा गृहं व्रजेयुस्ताः स च कृष्णो गवां व्रजेत् ॥ ८१ ॥ सङ्गम्य सखीन् कृष्णो गृहीत्वा गाः समन्ततः। आगच्छति व्रजं हर्षान्नादयन् मुरलीं

फिर दम्पति मैना और शुकोंकी वाणीको सुनके, उस स्थानसे निकलके घर जानेकी इच्छा करते हैं ॥ ७६ ॥ कृष्ण राधासे कहके गायोंकी ओर चले जाते हैं और राधाजी सखीमण्डलसे युक्त होके सूर्यके मन्दिरको जाती हैं ॥ ७७ ॥ थोड़ी दूर जाके तब फिर राधाजी कृष्णको लौटा लाती हैं। पर वह तबतक ब्राह्मणका वेष धरके सूर्य-मन्दिरमें पहुंच जाते हैं ॥ ७८ ॥ सखियोंके प्रार्थना करनेपर वह वहां सूर्यको पुजाते हैं। तब ब्राह्मणरूपी कृष्ण परिहासपूर्ण कल्पित वेद पढ़ते हैं ॥ ७९ ॥ बुद्धिमती सखियां जब उस ब्राह्मणको अपना प्यारा कृष्ण ही जानती हैं, तब आनन्द-सागरमें मग्न होके अपने परायेको भूल जाती हैं ॥ ८० ॥ इस प्रकार विविध प्रकारके विहारोंमें वहां अढ़ाई पहर काटके, वे सब अपने घर चली जाती हैं, कृष्ण गायोंकी ओर जाते हैं ॥ ८१ ॥ हे मुनि ! कृष्ण अपने सखाओंके पास जाके और चारो ओरसे गायोंको समेटके हर्षपूर्वक मुरली

सुने ॥ ८२ ॥ ततो नन्दादयः सर्व्वे श्रुत्वा वेणुरवं हरेः। गोधूलि-पटलव्याप्तं दृष्ट्वा चापि नभस्तलम् ॥ ८३ ॥ विसृज्य सर्व्वकर्म्माणि स्त्रियो बालादयोऽपि च। कृष्णस्याभिमुखं यान्ति तद्दर्शनसमुत्सुकाः ॥८४॥ राजमार्गे व्रजद्वारि यत्र सर्व्वे व्रजौकसः। कृष्णोऽपि तान् समागम्य यथावदनुपूर्व्वशः ॥ ८५ ॥ दर्शनस्पर्शनैर्वाचा स्मित-पूर्व्वावलोकनैः। गोपवृद्धान् नमस्कारैः कायिकैर्वाचिकैरपि ॥८६॥ अष्टाङ्गपातैः पितरौ रोहिणीमपि नारद। नेत्रान्तसूचितेनैव विनयेन प्रियां तथा ॥ ८७ ॥ एवं तैस्तद्यथायोग्यं व्रजौकोभिः प्रपूजितः। गवालये तथा गाश्च संप्रवेश्य समन्ततः ॥ ८८ ॥ पितृभ्यामर्थितो याति भ्रात्रा सह निजालयम्। स्नात्वा पीत्वा तत्र किञ्चिद्भुक्त्वा मात्रानुमोदितः ॥ ८९ ॥ गवालयं

बजाते हुए व्रजको आते हैं ॥ ८२ ॥ तब नन्द आदि सब हरिकी वंशीनाद सुनके और आकाशतलको गोधूलिके आटोपसे व्याप्त देखके ॥ ८३ ॥ सब काम आदि छोड़ देते हैं, आबाल-वृद्धवनिता सब श्रीकृष्णके दर्शनोंके उत्सुक होके कृष्णकी ओर चलते हैं ॥ ८४ ॥ राजमार्गमें, गोठके द्वारोंपर, जहां सब व्रजवासी हैं, कृष्ण भी उनके पास पहुंचके, पूर्व्व क्रमानुसार ॥ ८५ ॥ दर्शनसे, स्पर्शनसे, वचनसे, मुस्कराहट-युक्त दृष्टिसे। बूढ़े गोपोंको कायिक वाचिक नमस्कारसे ॥ ८६ ॥ हे नारद! नन्द, यशोदा और रोहिणीको साष्टाङ्ग दण्डवत्‌से, नेत्रकोणकी सूचना और विनयसे प्रियाको ॥ ८७ ॥ जैसा जिसको योग्य हो, वैसे ही उसे प्रसन्न करके तथा व्यवहारमें व्रजवासियोंसे पूजित होके एवं चारो ओरसे गायोंको गोठमें प्रवेश कराके ॥ ८८ ॥ मातापिताके

सर्वैः। सार्द्धयाममहर्यं लीला रात्रेरेवं विहारतः॥ १०३॥ सुषुप्सू विशतः कुञ्जं पक्षिणोभिरलक्षितौ। एकान्ते कुसुमैः क्लृप्ते कोलितल्पे मनोहरे॥ १०४॥ सुप्तावातिष्ठतस्तत्र सेव्यमानौ निजालिभिः। इति ते सर्व्वमाख्यातं नैत्यकं चरितं हरेः॥ १०५॥ पापिनोऽपि विमुच्यन्ते श्रवणादस्य नारद। नारद उवाच। धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि त्वया देवि न संशयः॥ १०६॥ हरेर्दैनन्दिनी लीला यतो मेऽद्य प्रकाशिता। सूत उवाच। इत्युक्त्वा तां परिक्रम्य तया चापि प्रपूजितः॥१०७॥ अन्तर्द्धानं गतो ब्रह्मन् नारदो मुनिसत्तमः। मयाप्येतच्चानुपूर्व्व्यात् सर्व्वमेव प्रकीर्त्तितम्॥१०८॥ जपेन्नित्यं प्रयत्नेन मन्त्रयुग्ममनुत्तमम्। कृष्णावक्त्रादिदं सर्व्वं पुरा

क्रीड़ा करेंगे॥ १०२॥ विविध विहार, भाव लास्य हास्यके सङ्ग, यहां क्रीड़ामें उन्हें अढ़ाई पहर लगते हैं॥ १०३॥ निद्रालु होके उन दोनोंको कुञ्जमें घुसते हुए चिड़िया भी नहीं देखती। एकान्तमें पुष्पसज्जित मनोहर सेजपर॥ १०४॥ वहां सोते हुए रहते हैं और दोनों अपनी सखियोंसे सेवित रहते हैं। इस प्रकार तुमसे श्रीकृष्णका चरित्र कहा॥ १०५॥ हे नारद! इसके सुननेसे पापी भी मुक्त होते हैं। नारद बोले, हे देवि! मैं धन्य हूं, मुझपर तुमने कृपा की इसमें सन्देह नहीं॥ १०६॥ हरिकी दिन दिनकी लीला जो तुमने मेरे आगे आज प्रकाशित की। सूत बोले, इतना कहके उस वृन्दादेवीको मुनिने प्रदक्षिणाकी और उससे पूजित हुए॥ १०७॥ हे ब्रह्मन्! फिर मुनिश्रेष्ठ नारद अन्तर्धान हो गये॥ मैंने भी आरम्भके क्रमसे इसे सब वर्णन किया॥ १०८॥ नित्य प्रयत्नसे सर्व्वोत्तम युगलमन्त्र जपे।

रुद्रेण यत्नतः ॥ १०९ ॥ तेनोक्तं नारदायापि नारदेन ममो-
दितम् । संस्कारांश्च विधायैव मयाप्येतत् तवोदितम् ॥११०॥ त्वया-
प्येतद्गोपनीयं रहस्यं परमाद्भुतम् । शौनक उवाच । कृतकृत्यो-
ऽभवं साक्षात् त्वत्प्रसादादहं गुरो ॥ १११ ॥ रहस्यानां रहस्यं यत्
त्वया मह्यं प्रकाशितम् । सूत उवाच । धर्मानेतानुपातिष्ठन् जल्पन्
मन्त्रमहर्निशम् ॥ ११२ ॥ अचिरादेव तद्दास्यमवाप्स्यसि न संशयः ।
मयापि गम्यते ब्रह्मन् नित्यमायतनं विभोः ॥११३॥ गुरोर्गुरोर्भानु-
जायाः कूले गोपीश्वरस्य च ॥ ११४ ॥ इदं चरित्रं परमं पवित्रं
प्रोक्तं महेशेन महानुभावम् । शृण्वन्ति ये भक्तियुता मनुष्यास्ते
यान्ति नित्यं पदमच्युतस्य ॥ ११५ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यमारोग्या-

---

पहले बड़ी चेष्टाओं रुद्रने इसे कृष्णसे पाया था ॥ १०९ ॥ उन्होंने
नारदसे कहा, नारदने मुझसे कहा । संस्कारोंकी विधि तथा मैंने
यह आप लोगोंसे कहा ॥ ११० ॥ तुम भी इस परम अद्भुत रहस्यको
छिपाना । शौनकादि ऋषिगण बोले, हे गुरो ! तुम्हारे प्रसादसे हम
लोग कृतकृत्य हुए ॥ १११ ॥ रहस्योंका भी रहस्य जो आपने हमसे
कहा । सूत बोले, इन धर्मोंका अनुष्ठान करते हुए रातदिन युगल-
मन्त्रको रटते रहनेसे ॥ ११२ ॥ शीघ्र ही श्रीकृष्णका दास्य मिलता है,
इसमें संशय नहीं । हे ब्रह्मन् ! मैं भी श्रीकृष्णके नित्य धामको जाता
हूं ॥ ११३ ॥ मैं गुरुओंके गुरु महादेव गोपीश्वर (पाठान्तरमें
वागीश्वर) के पास यमुनाके तीरपर जाता हूं । ११४ ॥ यह परम
पवित्र, महानुभव चरित्र महादेवने कहा है, जो भक्तियुक्त मनुष्य इसे
सुनते हैं, वे अच्युतके अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं ॥ ११५ ॥ यह

भीष्टसिद्धिदम् । स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारणं पापनाशनम् ॥ ११६ ॥
भक्त्या पठन्ति ये नित्यं मानवा विष्णुतत्पराः । न तेषां पुनरावृत्ति-
र्विष्णुलोकात् कथञ्चन ॥ ११७ ॥

इति चतुर्द्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ *

समाप्तञ्चेदं श्रीवृन्दावन-माहात्म्यम् ।

चरित धन्य है, यश देता है, आयु देता है, आरोग्य देता है, अभीष्ट देता है, सिद्धि देता है, स्वर्ग और अपवर्गकी सम्पत्तिका कारण है, पापका नाश करनेवाला है ॥ ११६ ॥ जो विष्णुपरायण मनुष्य इसे भक्तिपूर्व्वक नित्य पढ़ते हैं, उनका विष्णुलोकसे किसी भांति फिर लौटना नहीं होता ॥ ११७ ॥

चौदहवां अध्याय समाप्त ॥ १४ ॥

श्रीवृन्दावन-माहात्म्य समाप्त ।

---

* इति श्रीपद्मपुराणे पातालखण्डे श्रीकृष्णचरिते वृन्दावन-माहात्म्ये चतुर्द्दशोऽध्यायः ।

जो लोग वृन्दावन-माहात्म्यका पाठ करें, वह इसी रीतिसे अध्यायके शेषका नाम लिया करें ।

कागजकी दुकान।

विलायती और हिन्दुस्थानकी बाली तथा टीटागढ़ कलोंमें जितने किस्मके कागज बनते हैं, सब इस दुकानमें बिकते हैं, ग्लेज, घटिया, रङ्गीन, महीन, दबीज, बदामी, तरह तरहके चिट्ठी लिखनेके कागज, लिफाफे, ब्लटिङ्गपेपर, डिमाई, रायल, सुपररायल—छोटे बड़े सब ढांचेके कागज यानी मोटी बातमें जिन्हें जैसे कागजकी जरूरत है, सब हमारे यहां मिलते हैं। हम थोकबन्द ग्राहकोंको बेचते हैं; फुटकल नहीं, छापनेके लिये तरह तरहकी रङ्ग बरङ्गी स्याही रहती हैं। दुकानके मालिक बङ्गवासी समाचार पत्रके मनेजर ब्रजराज बन्द्योपाध्याय हैं।

चिट्ठी पत्री, रुपया सुपया सब कुछ श्रीयुक्त भुवन मोहन मुखोपाध्यायके नामसे दुकान पर यानी १०२ नं० पुराने चीना-बजार, कलकत्तेके पतेसे भेजना होगा।